पुराणों में इतिहास

(एक क्रान्तिकारी विवेचन)

लेखक :

डा० कुंवरलाल व्यासशिष्य

इतिहासविद्याप्रकाशन

दिल्ली

प्रकाशक :

इतिहासविद्याप्रकाशन
बी-२६ धर्मकोलोनी.
नांगलोई, दिल्ली-४१

प्रकाशनवर्ष : १९८८
मूल्य : पिचहत्तर रुपये मात्र (७५-००)

मुद्रण :
नवीन प्रिन्टर्स
ई-१५० कृष्ण विहार, दिल्ली-४१

(प्राक्कथन)

राष्ट्रीय एकताहेतु एव सत्यज्ञानपिपासाशान्तिहेतु भारत का इतिहास पुनर्लेखन, न केवल आवश्यक, वरन् अनिवार्य ही है। इस सम्बन्ध में लेखक, पिछले ३५ वर्षों से साधनों के अत्यन्त अभाव में भी इतिहासपुनर्लेखन पर परिश्रमपूर्वक अनुसन्धान कर रहा है और यह प्रथम पुष्प उसी सत्यानुसन्धान का प्रतिफल है।

स्वतन्त्रता से पूर्व एवं पश्चात एकमात्र अनुसन्धाता स्व० श्रद्धेय पं० भगवद्दत्त ने भारतवर्ष का इतिहास लिखने का महान् प्रयत्न किया। लेखक ने प० भगवद्दत्त की खोजो से प्रेरणा लेकर संस्कृतवाङ्मय के मूलग्रन्थों का आलोडन किया और अनेक, सर्वथा नवीन, मौलिक एवं क्रान्तिकारी तथ्य प्रकाश मे लाये हैं। लेखक, प० भगवद्दत्त के अधिकांश विचारों एवं खोजों से सहमत है, परन्तु अनेक बातों से असहमति भी है, यथा वेदमंत्रों में इतिहास एवं परशुराम, प्रतर्दन, दिवोदास आदि का समय इत्यादि, ग्रन्थ,-परायण से ही ज्ञात होंगे।

पाश्चात्यलेखकों ने अपने साम्राज्यकाल में भारतीयग्रथों, विशेषत: इतिहास-पुराणों मे अश्रद्धा उत्पन्न की जो भारतीयजन मे आज भी नही जम पाई है। पुराण अपनी अनेक कमियो के बावजूद, आज भी भारतीय इतिहास (स्वायम्भुवमनु से यशोधर्मा तक) के मूलस्रोत है। लेखक ने पुराणों के आधार पर भारतीय इतिहास के अनेक मूल सत्यों की खोज की है जिसमें मुख्य हैं— भारतीय इतिहास के मौलिक कालक्रम (Chronology) का अनुसन्धान एवं निर्धारण।

लेखक ने पुराणों के आधार पर मुख्यत: निम्न तथ्यों की खोज की है, जिनका परिगणन द्रष्टव्य है—

१. **विकासवाद**—भारतीयवाङ्मय एवं आधुनिक वैज्ञानिकपरीक्षण से सिद्ध किया गया है कि डार्विनप्रतिपादित विकासमत घोर अवैज्ञानिक एवं एक अतथ्य है, यह आत्मा, ईश्वर और मनुष्य की प्रगति का विरोधी है।

२. भारतीय इतिहास के प्रति प्रथमबार मैकालेयोजना के अन्तर्गत पाश्चात्य षड्यंत्र का भण्डाभोड़ किया गया है।

३. पाश्चात्यमिथ्याभाषामत का खोखलापन प्रदर्शित किया गया है और आर्यपद का यथार्थ लिखा गया है।

४. भारतीयदैत्यों ने ही योरोप, अमेरिका और अफ्रीका को बसाया, यह तथ्य वहां के भौगोलिक नामों विशेषतः देशनामों से सिद्ध किया गया है।

५. मिथ्याकालविभाग यथा वैदिकयुग, उत्तरवैदिकयुग जैसे मिथ्यायुगों का सप्रमाण खण्डन किया गया है।

६. द्वितीय अध्याय मे विस्तार से भारतीय इतिहास की विकृतियों के प्राचीन कारणों—पुराणभ्रष्टता, वैदिकविभ्रम, नामसाम्यभ्रम, नक्षत्रमनुष्य-नामभ्रम, योनिसमस्या आदि का स्पष्टीकरण किया गया है।

७. लेखक अपनी एकदम नई मौलिक एवं क्रान्तिकारी खोज मानता है—परिवर्तयुगमानविवेक—व्यासपरम्परा के आधार पर पुराणप्रामाण्य से मनु से युधिष्ठिरपर्यन्त ३० युग व्यतीत हुए जिनमे युग या परिवर्त का मान था—३६० वर्ष। इस आधार पर मनु से युधिष्ठिर पर्यन्त १०८०० वर्ष व्यतीत हुए, यह सिद्ध किया गया है।

८. चतुर्थ अध्याय मे प्रमाणों द्वारा भारतयुद्धतिथि, कलिसंवत्, कल्कि कलिवर्षमान, बुद्धनिर्वाणतिथि, शूद्रकादि पर नवीन प्रकाश डाला गया है। कल्कि की ऐतिहासिकता प्रथम बार सिद्ध की गई है।

९. पंचम अध्याय में दश ब्रह्मा या २१ प्रजापतियों का विवरण है।

१०. इसी अध्याय में अनेक दीर्घजीवीपुरुषों के दीर्घायुष्ट्व को प्रथम बार सिद्ध किया गया है।

७-३-१९८८

डा० कुंवरलाल व्यासशिष्य

विषयसूची

पृष्ठ संख्या

अध्याय क्रम

अध्याय क्रम

१

भारतीय इतिहास की विकृति के कारण

इतिहास पुनर्लेखन की आवश्यकता—जब से भारतभूमि बाह्य दास्यभाव अर्थात् १९४७ मे जब से अंग्रेजो की परतन्त्रता से स्वतत्र हुई है, तब से अब तक शासकवर्ग एव विद्वन्वर्ग मे बहुधा वीर घोषणायें होती रहती हैं कि भारतीय-इतिहासपुनर्लेखन की महती आवश्यकता है, परन्तु अद्यपर्यन्त, ४० वर्ष व्यतीत होने पर भी किसी वर्ग की ओर से गम्भीर प्रयत्न तो क्या, इतिहासपुनर्लेखन का साधारण या हल्का प्रयत्न तक भी नही हुआ। विद्वद्वर्ग मे केवल एक व्यक्तिगत लघु, परन्तु गभीर प्रयत्न भारतीय स्वतन्त्रता से पूर्व ही किया था, जबकि सन् १९४० मे लाहौर से पण्डित भगवद्दत्त ने 'भारतवर्ष का इतिहास' प्रथम बार बडी कठिनाई मे प्रकाशित किया। पण्डितजी के प्रयत्न स्वतन्त्रता के पश्चात् भी लगभग २३ वर्ष पर्यन्त अर्थात् १९६८ तक, जब तक वे जीवित रहे, चलते रहे। इसमे कोई सन्देह नही कि पण्डित भगवद्दत्तजी के इतिहासपुनर्लेखन के प्रयत्न महान् अन्धकारसागर मे प्रकाशस्तम्भ के समान मार्गदर्शक है परन्तु एकाकी हैं। उनके समानधर्मा सर्वश्री युधिष्ठिर मीमासक (सस्कृतव्याकरणशास्त्र का इतिहास), उदयवीरशास्त्री (साख्यदर्शन का इतिहास), सूरमचन्द्रकृत आयुर्वेद का इतिहास इत्यादि प्रयत्न भी एकाकी या अपूर्ण ही है, फिर भी सत्यशोधको के परमसहायक है, जबकि आगलप्रभुओ के तदनुयायी भारतीय कृष्णप्रभुओ ने इतिहास मे घोर मिथ्यावादो की कर्दम (कीचड) की दलदल उत्पन्न कर रखी है। इस घोर कीचड मे निकलना सामान्यबुद्धि का काम नही, जिसमे डॉ० मगलदेव शास्त्री, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल और पण्डित बलदेव उपाध्याय जैसे प्राच्यविद्याविशारद भी फँसकर नही निकल सके।

भारतीय इतिहासपुनर्लेखन की महती आवश्यकता क्यो है, इस तथ्य को प्राय. प्रत्येक विद्वान् समझ सकता है, फिर भी संक्षेप मे हम इस आवश्यकता पर विचारमथन करेंगे।

आगलप्रभुओ ने अपनी षड्यन्त्रपूर्ण—मैकालेयोजना के अन्तर्गत ऐसे समय मे भारत का इतिहास लिखना प्रारम्भ किया जबकि भारतदेश अपने अतीत

गौरव एवं प्राचीनतम इतिहास को अन्धतम अज्ञानावर्त में डाल चुका था। आंग्लप्रभुओं ने अपने मिथ्याज्ञान के द्वारा उस अन्धतम अज्ञानावर्त पर और मर्त चढ़ाई। इसमें कोई सन्देह नही कि भेद (फूट) और अज्ञान के बीज भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीनकाल से थे और अब भी हैं, विदेशी शासकों द्वारा भारतीय भेदमूलक तत्त्वों यथा जातिवाद, भाषावाद, सम्प्रदायवाद और अज्ञान का लाभ उठाना स्वाभाविक था, अत: उन्होंने भेदमूलक एवं अज्ञानमूलक उपादानों का उपबृंहण अथवा विस्तार किया। अतः अंग्रेजों ने आर्य-अनार्य या आर्य-दस्यु या आर्य-द्रविड़ समस्या खड़ी करके यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि भारतवर्ष सदा से ही विदेशी जातियो का उपनिवेश या अड्डा रहा है, इसके द्वारा प्रत्यक्ष या प्रच्छन्नरूप से वे सिद्ध करना चाहते थे कि भारतवर्ष मे अंग्रेजों का राज्य या शासन सर्वथा वैध या न्यायपूर्ण है, जबकि आर्य-द्रविड या उनसे भी पूर्व शबर, मुण्ड, आन्ध्र, पुलिन्द आदि जातियाँ यहाँ बाहर से आकर बसती रही और भारतभूमि पर आधिपत्य करती रही।

अंग्रेजों ने भारतीय एकता के उपादानों या घटनाओ का अपने इतिहासग्रन्थों मे कोई उल्लेख नहीं किया, यथा अगस्त्य या पुलस्त्य, राम या हनुमान् या व्यास को उन्होंने ऐतिहासिक पुरुष ही नही माना, इनकी ऐतिहासिकता की उन्होंने पूर्ण उपेक्षा ही की। अगस्त्य-पुलस्त्य के दक्षिण अभियान की उन्होंने चर्चा ही नही की, जो उत्तर-दक्षिण-भारतीय एकता का महान् प्रतीकात्मक उपक्रम था। प्रायः स्वय सिद्ध एकता-मूलक तथ्यो मे भी उन्होंने भेद के बीज देखे। वेद, जो न केवल भारतवर्ष वरन् विश्वसंस्कृति का मूल है, उसे केवल उत्तरभारतीय या पंजाब या पांचाल (उत्तर प्रदेश) की सम्पत्ति सिद्ध किया गया। संस्कृतभाषा, जो मानवजाति की आदिभाषा या मूलभाषा है, उसका उद्‌गम एक काल्पनिक एवं बाह्य इण्डो-यूरोपियन भाषा से माना गया।

अंग्रेज या पाश्चात्यमिथ्याभिमानी लेखको द्वारा प्रत्येक प्राचीनभारतीय विद्या या श्रेष्ठज्ञानविज्ञान को विदेशी मूल का सिद्ध करने का प्रयत्न किया। यहाँ पर प्रत्येक विषय या शीर्षक के विस्तार मे जाने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु अतिसंक्षेप मे कथन करेंगे। जब पाश्चात्यों ने यहाँ की प्राचीनजातियों, भाषाओं और धर्मों को विदेशी बताया तो उन्होंने प्रत्येक प्राचीन एवं श्रेष्ठविद्या का मूल भी बाह्यदेश को बताना आरम्भ किया। यथा पाश्चात्यों के अनुसार प्राचीनतमकाल मे भारतीयों ने ज्योतिषविद्या या नक्षत्रविद्या बैबीलन या कालडियावासी असुरों से सीखी, द्वादश राशियों का ज्ञान या सप्ताह के वारों के नामादि यूनानियो से सीखे। पाणिनिव्याकरण सूत्र में एक 'यवनानी' लिपि का उल्लेख है; इस आधार पर पाश्चात्यों ने कल्पना की कि भारतीयों

ने लिपि या लिखना, सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् यूनानियों से सीखा। इसी प्रकार भारतीयनाट्यकला का उद्गम ग्रीकनाटकों में देखा गया। पाश्चात्यों ने यह भी सिद्ध करने की चेष्टा की कि भारतीयों ने नगरनिर्माण-कला, स्थापत्यकला (भवनशिल्प), शासनव्यवस्था आदि सभी कुछ यूनानियों से सीखे। उनके अनुसार आर्यजाति तो यायावर या घुमक्कड़ थी, उन्हें न तो नगर बसाना आता था न खेती करना और न शासन करना और न उन्हें धातुज्ञान था, न समुद्र से उनका परिचय था। आर्यों ने धर्म के उपादान उपासनापद्धति आदि यहाँ के वनवासियों या द्रविड़ादि जातियों से सीखे। आर्य तो कूपमण्डूक जाति थी, समुद्रयात्रा या नाव बनाना उन्होंने द्रविड़ों से सीखा। मैक्समूलर, विन्टरनीत्स कीथ मैकडानल आदि को वेदमन्त्रों में समुद्र का उल्लेख ही दिखाई नहीं दिया, फिर आर्य समुद्रयात्रा कैसे करते, उनके अनुसार प्राचीनभारतीय आर्य भेड़ बकरी चराने वाले गड़रिये थे, वेदमन्त्र इन्हीं गड़रियों के गीत हैं, जो ऋषिमुनियों द्वारा भेड़-बकरी चराते समय गाये जाते थे।

पाश्चात्यों का षड्यन्त्र और मिथ्याज्ञान स्वाभाविक ही था, परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् भी उसी पाश्चात्य आंग्लविद्या का गुणानुवाद और पठन-पाठन सचेता भारतीय के लिए बुद्धिगम्य नही है। भारत के राजनीतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक इतिहास के पुनर्लेखन की महती आवश्यकता है, परन्तु आज भी स्वतन्त्रता के ४० वर्ष पश्चात् हमारे विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में भारतीय इतिहास एवं संस्कृतसम्बन्धी पाश्चात्यलेखकों (यथा कीथ, वेबर, मैकडानल, विन्टरनीत्स, मैक्समूलर आदि) के ग्रन्थ परम-प्रामाणिकग्रन्थों के रूप मे पढ़ाये जा रहे हैं, वे ही संस्कृतसाहित्य के इतिहासग्रन्थ, जो पाश्चात्यो ने भारतवर्ष पर शासन करने की दृष्टि से लिखे थे। हमारे विद्याकेन्द्रों में ज्यों-की-त्यों लगभग सौ वर्ष से पढ़ाये जा रहे हैं। हमारे विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों में वे ही अंग्रेजीकाल के सड़े-गले विचार भरे हुए हैं वे उन्ही भ्रष्ट एवं मिथ्यापाश्चात्यग्रन्थों को पढ़ते हैं और उन्ही के आधार पर पढ़ाते हैं। न केवल इतिहास के क्षेत्र में वरन् राजनीतिक, मनोविज्ञान, गणित, ज्यामिति, शिल्प या यन्त्रविज्ञान (इंजीनियरिंग) या दर्शन या चिकित्साविज्ञान आदि के क्षेत्र में अभी तक परमप्रामाणिक भारतीयलेखकों या ग्रन्थों का प्रवेश तो क्या स्पर्श तक भी नहीं है। पाठ्यक्रमों के राजनीतिशास्त्र ग्रन्थों में अरस्तू या प्लेटो की बहुधा चर्चा होती है, परन्तु शुक्राचार्य, विशालाक्ष, बृहस्पति, व्यास या चाणक्य का नाममात्र भी नहीं मिलेगा, इसी प्रकार प्राचीनभारतीयगणित, दर्शन या शिल्प-विज्ञान कितना ही श्रेष्ठ या उच्चकोटि का हो उसका स्पर्शमात्र भी पाठ्यग्रन्थों

में नहीं मिलेगा। इतिहास के क्षेत्र में रामायण, महाभारत और पुराणों को तो कीथादि की कृपा से अछूत ही बना दिया गया है। हमारा मत यह है कि प्राचीनभारत का मूल इतिहासपुराणों में ही लिखा मिलता है। मूल इतिहास पुराणों को स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में अनिवार्य बनाना चाहिए, शासन या शिक्षणसंस्थानों द्वारा इतिहासपुराणों के इतिहाससम्बन्धी संशोधित भाग प्रकाशित होने चाहिएं। पाश्चात्यों के मिथ्याग्रन्थों का पूर्ण बहिष्कार होना चाहिए।

अब हम संक्षेप में भारतीय इतिहास की विकृतियों के कारणों का सिंहावलोकन करेंगे। विकृति के कारणों के परिचय के साथ-साथ ही मुख्य विकृतियों का ज्ञान भी हो जाएगा, फिर भी यह जान लेना चाहिए कि भारतवर्ष तो क्या, विश्व के इतिहास में मुख्यविकृति कालक्रम (Chronology) सम्बन्धी है, यही इतिहासविकृति की नाभि या केन्द्र है। इस ग्रन्थ में मुख्यतः इसी विकृति का निराकरण किया जाएगा, अन्य विकृतियाँ तो आनुषंगिक या इस विकृति की अंगमात्र हैं, अतः प्रधानविकृति के निराकरण से उपांगभूत विकृतियाँ स्वयं निराकृत हो जाएंगी, जैसाकि पतञ्जलिमुनि ने महाभाष्य मे लिखा है—

"प्रधाने कृतो यत्नः फलवान् भवति।"

पाश्चात्य षड्यन्त्र

मैकालेयोजना के अन्तर्गत पाश्चात्यों द्वारा इतिहासलेखन का उद्देश्य— (पूर्वाभास)—प्रायेण संसार में सदा से ही यह परम्परा या नियम रहा है कि विजेता (व्यक्ति या जाति) विजित की परम्परा (इतिहास) और गौरव को या तो पूर्णतः नष्ट-भ्रष्ट कर देता है या उसमें तोड़-मरोड़ करता है, क्योंकि इसी में उसका स्वार्थ निहित होता है। इस नियम का उदाहरण स्वयं भारतीय इतिहास के प्राचीनतम अध्याय—देवासुरसंघर्ष से दिया जा सकता है। देवों के अग्रज—हिरण्यकशिपु, विप्रचित्ति, प्रह्लाद, बलि आदि की सभ्यता और संस्कृति इन्द्रविष्णुविवस्वानादि देवों के तुल्य और कुछ अर्थों में देवों से भी बढ़कर थी, यथा वेदों का विस्तार, देवों की अपेक्षा असुरों में अधिक ही था—स्वयं देवपूजक ब्राह्मणों ने लिखा है—'कनीयांसि वै देवेषु छन्दांस्यासन् ज्यायांस्यसुरेषु (तैतिरीयसंहिता ६/६११)। असुरों की मायाशक्ति (विज्ञान या शिल्प) अत्यन्त उच्चकोटि का था—

तबैतया मायया ऽप्यापि सर्वे मायाविनोऽसुराः।
वर्तयन्त्यमितप्रज्ञास्तदेषाममितं बलम्॥ (हरिवंश ६।३१)

देवपुरोहित बृहस्पति के पुत्र कच ने असुरगुरु शुक्राचार्य से अमृतसंजीवनी विद्या सीखी थी। इन्हीं असुरों की सभ्यता और संस्कृति का देवों ने नाश किया और आज इन असुरों का इतिहास प्रायेण पूर्णतः विलुप्त है। कुछ असुरनरेशों के नाममात्र के अतिरिक्त उनके इतिहास के सम्बन्ध में हमें कुछ भी ज्ञात नही है।

इसी प्रकार द्वितीय उदाहरण यवन शक हूण एवं मुस्लिम आक्रांताओं का दिया जा सकता है कि जिस देश पर भी यवनादि एवं अरब, तुर्क या मंगोल आक्रांताओ ने आक्रमण किया उसी देश की सभ्यता और संस्कृति को नष्ट किया, यद्यपि वे भारतीय संस्कृति को पूर्णतः नष्ट नही कर सके, परन्तु यहाँ पर उन्होंने जो अत्याचार किये वे किसी इतिहासज्ञ से तिरोहित नहीं है, इस सम्बन्ध मे श्री पुरुषोतम नागेश ओक ने "भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें" पुस्तक मे विदेशी आक्रान्ताओ की करतूतों के अनेक उदाहरण दिये है कि वे किस प्रकार अपने चाटुकारलेखको से मिथ्या इतिहास लिखवाते थे। इस सम्बन्ध मे प्रोफेसर हरिश्चन्द्र सेठ ने सिकन्दर और पोरसयुद्ध के सम्बन्ध में यूनानीस्रोतो के आधार पर ही सिद्ध किया है कि इस युद्ध मे पोरस की विजय हुई थी, परन्तु आज भारतीय पाठ्यपुस्तको मे सिकन्दर को महान् विजेता चित्रित किया जाता है। यही तथाकथित महान् सिकन्दर पोरस से युद्ध मे परास्त होकर प्रार्थना करने लगा— "श्रीमान पोरस ! मुझे क्षमा कर दीजिये। मैंने आपकी शूरता और सामर्थ्य शिरोधार्य कर ली है। अब इन कष्टो को मैं और अधिक सहन नही कर सकूँगा। मैं अपराधी हू जिसने इन सैनिको को करालकाल के गाल मे धकेल दिया है।"[1] मार्ग मे भागते हुए सिकन्दर का सामना क्षुद्रकमालवगण से हुआ, जिस युद्ध मे उसे मर्मान्तिक प्रहार लगे और शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हुआ। सिकन्दरसम्बन्धी उपर्युक्त वृतान्त से ही सिद्ध है कि विदेशी इतिहासकार किस प्रकार का मिथ्या प्रलाप करते हैं और पोरस द्वारा विजित सिकन्दर को महान् विजेता बताया जाता है।

मिथ्या-कथन का यह एक सर्वश्रेष्ठ उदाहरण कहा जा सकता है कि शकारि विक्रमादित्य (शूद्रक) प्रथम और साहसांक विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा निर्मित मिहिरावली (महरौली) और विष्णुध्वज, जिसके निकट लोहे की प्रसिद्ध लाट बनी हुई है, उसको किस प्रकार कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा निर्मित घोषित किया गया। मिहिर नक्षत्र की संज्ञा है, जिससे कि प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर का नाम पड़ा। निश्चय ही यह एक वेधशाला थी, जो वराहमिहिर की प्रेरणा से

---

१. द्रष्टव्य—ईथियोपिक टेक्स्ट्स बाई ई०ए० डब्ल्यू बैज।

शकारि विक्रमादित्य शूद्रक ने सन् ५७ ई० पू० बनाई थी और इसी के निकट लौहस्तम्भ पर चन्द्रगुप्त द्वितीय, विक्रमादित्य (द्वितीय) ने अपनी विजयगाथा अंकित कराई।

इसी प्रकार आगरा में तथाकथित ताजमहल निश्चय ही प्राचीन राजपूत शासकों का महल (प्रासाद) था, जिसको शाहजहाँ ने स्वनिर्मित घोषित करवा दिया। प्राचीन हिन्दू मन्दिरो को तोड़कर मुस्लिमों ने किस प्रकार मस्जिदें बनायीं, यह तथ्य किसी विज्ञ इतिहास पाठक से अज्ञात नही है, इसका सर्वाधिक प्रसिद्ध उदाहरण वाराणसी में विश्वनाथ का स्वर्णमन्दिर है, जिसका एक बड़ा भाग अभी भी मस्जिद के रूप मे परिवर्तित कर, दिया गया है। अतः इस मत से कोई भी वैमत्य नही होना चाहिए कि बर्बर, असभ्य और असंस्कृत मुस्लिम आक्रान्ता ऐसे श्रेष्ठ भवनों को बनाना जानते ही नहीं थे, वे केवल ध्वंसकर्ता थे, उन आक्रांताओं के पास ऐसे श्रेष्ठभवनों के बनाने का न समय था, न साधन और न ही कौशल। उन्होंने प्राचीन भवनों को ध्वंस ही अधिक किया और उनको विकृत करके उस पर आधिपत्य जमा लिया, वे स्वयं वहाँ के शिल्पियों को बलपूर्वक अपने देशों मे ले गये जहां उन्होंने भारतीय अनुकृति पर भवनादि बनवाये। अतः कश्मीर के निशात और शालीमार (शालिमार्ग) उद्यान, दिल्ली आगरा के लालकिले, तथाकथित कुतुबमीनार तथा इसी प्रकार के सम्पूर्ण भारतवर्ष में बिखरे हुए शतशः भवनों का निर्माण सहस्रो वर्षों पूर्व भारतीयों ने ही किया था, जिनको उत्तरकालीन मुस्लिम आक्रान्ताओं ने आधिपत्य करके स्वनिर्मित घोषित किया। यह भारतीय इतिहास में महान् जालसाजी (विकृति) का एक बड़ा भारी उदाहरण माना जाना चाहिए और निश्चय ही इस विकृति का निराकरण होना चाहिए। मुस्लिम शासकों के पश्चात् अब अंग्रेजी शासन के स्तम्भ, मैकाले की योजना के अंतर्गत, भारतीय इतिहास एवं वाङ्मय के सम्बन्ध में पाश्चात्य षड्यन्त्र की कहानी संक्षेप में लिखेंगे।

पाश्चात्यों को संस्कृतविद्या से परिचय—पाश्चात्यषड्यन्त्रकारी ईसाईलेखकों ने भारतीय साहित्य विशेषतः संस्कृतवाङ्मय का अध्ययन इसलिए किया कि वे यहाँ के रीति-रिवाजो एवं सस्कृति को जानकर, उस पर प्रहार कर सकें, जिससे कि मैकाले की योजनानुसार भारतीयों को काले रंग का अंग्रेज (ईसाई) बनाया जा सके, जिससे ब्रिटिश शासन भारत में चिरस्थायी हो सके। मैकडानल ने संस्कृत साहित्य का इतिहास (अंग्रेजी में) की भूमिका मे स्पष्ट लिखा है—"**It is undoubtedly a surprising fact that down to the present time no history of sanskrit literature as a whole has been written in English. For not only does that literature possess much**

intrinsic merit, but the light it shed on the life and thought of the population of our Indian empire ought to have a peculiar interest for British nation''. मैकडानल का तात्पर्य यह है कि उन्होंने 'संस्कृतसाहित्य का इतिहास' इसलिये नहीं लिखा कि इसमें कोई महान् गुण-वत्ता है, बल्कि इसलिये लिखा कि अंग्रेजगण भारतीयों की पोलपट्टी जानकर उन पर चिरस्थायी शासन कर सकें। केवल निहित स्वार्थ के कारण अंग्रेजों ने संस्कृत का अध्ययन किया। उनका संस्कृतविद्या का ज्ञान एक उस अबोध बालक के समान था, जो प्राथमिक कक्षाओं मे पढ़ता है, अतः उन्होंने संस्कृतविद्या पढ़कर जो निष्कर्ष निकाले वे उसी अबोधबालक के तुल्य अपरिपक्व एवं अध-कचरे थे इनका संकेत आगे के पृष्ठो पर किया जायेगा ही।

पाश्चात्यो मे संस्कृत का सर्वप्रथम विधिवत् अध्ययन विलियम्स जोन्स नामक अंग्रेज न्यायाधीश ने १८वीं शताब्दी मे किया। सन् १७८४ ई० मे उसने संस्कृतविद्या की प्रवृद्धि के लिए 'रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल' की स्थापना की। संस्कृत के प्रारम्भिक अध्येताओं में कालब्रुक, हैमिल्टन, श्लेगल, आगस्ट, विल्हेल्मवान, फ्रेडरिकवान्, ग्रिम, बाप, बार्टलिंग, राथ, रोजन बर्नफ, मैक्समूलर, बेवर, ओल्डनबर्ग, हिलब्रान्ड, पिश्चल, गेल्डनर, लूडर्स, गाईगर, जैकोबी, मार्टिनहाग, कीलहार्न, ब्यूलर, म्यूर, मोनियरविलियम्स, विल्सन, मैकडानल, कीथ, पीटर्सन, ग्रिफिथ, ग्रियर्सन, ब्लूमफील्ड हापकिन्स, गोल्डस्टुकर विन्टरनीत्स इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

प्रारम्भ मे पाश्चात्य संस्कृत अध्येता कुछ-कुछ निष्पक्ष थे, परन्तु मैकाले के प्रभाव या सत्तापक्ष के प्रभाव के कारण उन्होंने सत्य विचारों को तिलांजलि देकर षड्यन्त्रपूर्ण मतवाद घढ़ने प्रारम्भ किये और उन्हीं असत्यमतवादों को परिपक्व किया, जो आज तक विश्व मे छाये हुए है। अब इन उभयविध पक्षों की सारग्राही विवेचना करते है।

प्रथम, सत्यपाश्चात्यपक्ष के प्रारम्भिक विद्वानों में थे—आगस्ट विल्हैल्म-वान श्लैगल, फ्राइडिश श्लैगल, हुम्बोल्ट, शोपेनहावर, जैकालियट, गोल्डस्टुकर, पार्जीटर इत्यादि। ये लेखकगण सत्याग्राही एवं उदारचेता थे। शोपेनहावर के विचार उपनिषदों के सम्बन्ध में प्रसिद्ध हैं, उसने लिखा था—"The production of the highest human wisdom" "ये सर्वोत्कृष्ट मानव बुद्धिकी सृष्टि (रचनायें) हैं।" हुम्बोल्ट ने गीता के विषय मे लिखा—"It is perhaps the deepest and loftiest thing the world has to show. यह (गीता) संभवतः गहनतम एवं महत्तम ग्रन्थ है जो विश्व में प्रदर्शित करना

है।" प्रारम्भिक संस्कृत अध्येतृगण संस्कृतभाषा को विश्व की आदिम और मूलभाषा मानते थे, बाप जैसे फ्रांसीसी लेखक ने संस्कृत को मूलभाषा माना— "The Sanskrit has preserved more perfect than its Kindered dialects" (Language, p. 48, by O. Jesperson). "संस्कृत में (ग्रीक, लैटिन आदि की अपेक्षा) मूलरूप अधिक सुरक्षित है।" प्रारम्भिक पाश्चात्य लेखकों के भावों को विन्टरनीत्स ने इस प्रकार व्यस्त किया है—"जब भारतीय वाङ्मय पश्चिम में सर्वप्रथम विदित हुआ तो विद्वानों की रुचि भारत से आने वाले प्रत्येक साहित्यिकग्रन्थ को अति प्राचीनयुग का मानने की थी। वे भारत पर इस प्रकार की दृष्टि डाला करते थे कि वह मनुष्यजाति या मानवसभ्यता का मूल या प्रेङ्खण (झूला) है।[1] फ्राईडिश श्लैगल ने इन्ही भावो को अभिव्यक्त किया—"He expected nothing less from India than ample information on the history of the primitive world, shrouded hitherto in utter darkness[2] "वह भारत से एक महती आशा रखता है कि ससार का पूर्ण तिमिरावृत इतिहास भारत द्वारा ज्ञात होगा।" श्लैगल की आशा अकारण नही थी, लेकिन षड्यन्त्रकारी पाश्चात्यलेखको ने यथा मैक्समूलर, कीथ, वेबर विन्टरनीत्स इत्यादि ने उसकी आशा पर तुषारपात कर दिया। अब इस आशा को पुनरुज्जीवित करके संसार के सत्य इतिहास को प्रकाशित करना है, यह प्रयत्न इस आशा का प्रारम्भ है।

जैकालियट नाम के फैंच विद्वान न्यायाधीश ने १८६९ मे 'भारत मे बाइ-बिल' नामकग्रन्थ मे ऐसे ही उदात्तभाव लिखे जो सत्यभाव थे—"प्राचीन भारत, मनुष्यजाति के जन्मस्थान तेरी जय हो। पूजनीय और समर्थ धात्री, जिसको नृशंस आक्रमणो की शताब्दियों ने अभी तक विस्मृति की धूल के नीचे नहीं दबाया, तेरी जय हो। श्रद्धा, प्रेम, कविता और विज्ञान की पितृभूमि तेरी जय हो। क्या, कभी ऐसा दिन आयेगा जब हम अपने पाश्चात्य देशो मे तेरे अतीत काल की भी उन्नति देखेंगे।"[3]

---

1. When Indian literature became first known in the west, people were inclined to ascribe a hoary age to every literary work hailing from India. They used to look upon India as something like the Cradle of mankind or at least of human civilization [lectures in Calcutta University, p.3).
2. A Second selection of Hymns from Rigveda P x) by Zimmerman.
3. 'भारत में बाइबिल'। सन्तराम कृत अनुवाद, प्रथम अध्याय।

इस प्रकार के निष्पक्ष, सत्य, उदात्त और प्रेरक मत षड्यन्त्रकारी पाश्चात्यों को अच्छे नहीं लगे, क्योंकि इन सत्यभावों को मानने से भारत का गौरव बढ़ता और अँग्रेजों द्वारा भारत को ईसाई बनाने, चिरशासन करने और अँग्रेजीसंस्कृति के प्रसार में बाधा पड़ती, अत: उन्होंने विपरीत और असत्यविचारो का आश्रय लिया। अनेक कारणों से मैक्समूलर यूरोप में महान् प्राच्य-विद्या-विशारद (Indologist) माना जाता था, परन्तु वह प्रच्छन्नरूप से मैकाले का भक्त और अँग्रेजीसाम्राज्य का महान् स्तम्भ था। सन् १८५५, दिसम्बर २८ को मैक्समूलर-मैकाले से भेंट हुई। इस समागम के अनन्तर मैक्समूलर ने अपनी विचारधारा भारत के प्रति पूर्णत: परावर्तित कर ली जैसा कि उसने स्वयं लिखा है—"(मैकाले से मिलने के पश्चात्) मै एक उदासीनतर एवं बुद्धिमत्तर मनुष्य के रूप मे आक्सफोर्ड लौटा।"[1] स्पष्ट है कि क्या षड्यन्त्र रचा गया।

विकासवाद का भ्रमजाल

प्राय: मूर्ख से मूर्ख मनुष्य या बालक भी यही सोचेगा कि लघु वस्तु से महान् वस्तु, क्षुद्रतम जीव से विशालकाय जीव विकसित हुये, अत: चार्ल्स डार्विन न जब १८५६ मे जीवो के विकासवाद का प्रतिपादन किया तो वह कोई बहुत महान् बुद्धिमत्ता का काम नही कर रहा था। वह अत्यन्त साधारण-बुद्धि किंवा सष्टि एवं इतिहास से पूर्णत: अनभिज्ञ एक सामान्य व्यक्ति की कोरी कल्पनामात्र थी, परन्तु उसके इस विकासवाद के सिद्धान्त को समस्त विश्व मे, विशेषत: विज्ञानजगत् मे, आरम्भिक विरोध के बावजूद एक बड़ा भारी क्रान्तिकारी अनुसन्धान माना गया और इसमे कोई सन्देह नहीं कि आज समस्त बुद्धिजीवीवर्ग पर, इस अतिभ्रामक, घोर अवैज्ञानिक, मूर्खतापूर्ण मतान्धसिद्धान्त का इतना प्रबल प्रभाव है कि अत्यन्त धार्मिक ईश्वरवादी आस्तिक या अति बुद्धिमान् आध्यात्मिक विद्वान् एवं योगी भी विकासवाद को ईश्वर से भी अधिक परमसत्य के रूप मे आँख मूँदकर अज्ञानवश मानता है।

विश्व इतिहास, साथ-साथ भारतवर्ष के इतिहास मे विकृतियो का एक प्रमुख कारण विकासवाद या सततप्रगतिवाद का भ्रामक मत है। इसके कारण अनेक सत्यसिद्धान्तों का हनन हुआ और मनुष्य अन्धकार के महान् गर्त मे गिर गया और इस अन्धतम अज्ञान से इसका उद्धार तब तक नहीं हो सकता, जब तक की मनुष्य सत्य जानकर इस अवैज्ञानिक एव असत्य को नहीं छोड़ देता।

---

1. "I went back to Oxford a sadder man and a wiser man" (C. H. I. Vol VI (1932).

जैसा कि पहिले संकेत किया जा चुका है कि डार्विन कोई बड़ा भारी विद्वान् या वैज्ञानिक नहीं था, वह केवल जीव जन्तुओं के विषय में सूचना एकत्र करके अनेक देशों में घूमता रहा, और उसने अनेक प्रकार के जीव-जन्तु देखे, बस इसी अनुसन्धानमात्र से उसने विकासवाद का सिद्धान्त घड़ दिया। परन्तु यह एक परीक्षित नियम या सिद्धान्त है कि कोई भी व्यक्ति एक विषय का ज्ञाता होकर ही निश्चितसिद्धान्तों का या कार्यनिश्चय का निर्णय नहीं कर सकता—

'एकं शास्त्रमधीयानो न याति शास्त्रनिर्णयम् ।'

जिस व्यक्ति को ज्योतिष, गणित, योगविद्या, धर्मशास्त्र विधिशास्त्र या सृष्टिविज्ञान का ज्ञान नहीं हो, वह इन विषयों म या विज्ञान मे निर्भ्रान्त निर्णय कैसे ले सकता है। आधुनिक वैज्ञानिकों की सबसे बड़ी दुर्बलता (या अज्ञान ?) यही है कि वे प्राय: अपने विषय का छोडकर न तो दूसरे विषय की जिज्ञासा करते है और न प्राय: अन्य विषयों को जानते हैं। इसीलिये उनके सिद्धान्त केवल मतवाद या वितंडावाद बनकर रह जाते हैं, विज्ञान और इतिहास के क्षेत्र में यही प्रयोगवाद चल रहा है जिससे मनुष्यजाति की ज्ञानवृद्धि के साथ अज्ञानवृद्धि भी हो रही है।

डार्विन प्रतिपादित विकासमत का, विशेषत: मनुष्य बन्दर से विकसित हुआ इस विचार का विरोध आरम्भ से ही हुआ। अब कुछ वैज्ञानिको ने, विशेषत: अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों ने यह मत व्यक्त किया है कि जीव या मनुष्य पृथ्वी पर किसी दूसरे लोक या सुदूर ग्रह से आकर बसे। १९८२, जनवरी में प्रसिद्ध अन्तरिक्ष वैज्ञानिक सर फायड हायल ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित करके आश्चर्य और संशय मे डाल दिया कि किन्हीं अन्तरिक्षवासियों ने सुदूर प्राचीन-काल मे पृथ्वी पर जीवन को स्थापित किया। १८ जनवरी में, हिन्दुस्तान टाइम्स में जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई उसका अश, डार्विन के मत का खोखलापन दिखाने के लिए आवश्यक रूप से उद्धृत किया जा रहा है—"Life on earth may have been spawned by intelligent beings millions of years ago in another part of the universe.

This is a Startling new theory advanced by Sir Fred Hoyle, one of Britain's leading astronomers to challenge traditional beliefs that man was the result of divine creation or according to Darwin's theory, the product of evolution, Sir Fred told an audience of Scientists at London's Royal Institution recently that the Chemical structures of life were too complicated to

have arisen through a series of accidents, as evolutionists believed. Biomaterials, with their amazing measure of order, must be the outcome of intelligent design, he said.

"The design may have been the work of a life from the universe's remote past which doomed by a crisis in its own environment, wanted to preserve life in another shape, he added.

The odds againt arriving at th s pattern by accidental process imagined by Darwin were enormous. Similar to those against throwing five millions consecutives sixes on a dice, he said, He could think of no more plausible explanation for the existence of life on earth in its present form than planning by intelligent beings, he added.

The theory is latest bombshell dropped by the 66 year old former professor of astronomy and experimental philosophy at Cambridge University." जीवन की स्थापना, पृथ्वी पर, करोड़ों वर्ष पूर्व, "ब्रह्माण्ड के किसी अन्य भाग में निविष्ट बुद्धिमान प्राणियों ने की होगी ।" यह एक आश्चर्यजनक नवीन सिद्धान्त, ब्रिटेन के एक सर्वोच्च अन्तरिक्षवैज्ञानिक सर फ्रायड हायल ने प्रस्तुत किया है, जिसमें परम्परागत मनुष्योत्पत्ति के दैवीसिद्धान्त और डार्विन के विकासवाद को चुनौती दी गई है । सर फ्रायड ने एक वैज्ञानिक गोष्ठी में, जो रायल इन्स्टीट्यूट लन्दन में आयोजित की गई, इस सिद्धान्त का रहस्योद्घाटन किया कि जीवन की रासायनिक संरचना इतनी जटिल है, कि वह क्रमिक आकस्मिक घटनाओं से संभूत नहीं हो सकती, जैसा कि विकासवादी विश्वास करते हैं ।

उन्होंने बताया कि जैवपदार्थ इस अद्भुत रूप से शरीरों में संग्रथित हैं कि यह केवल बौद्धिक कौशल या योजना का परिणाम हो सकता है अर्थात् अज्ञानता या मूर्खता से या यदृच्छा जीवोत्पत्ति नहीं हो सकती ।

यह जीवनयोजना, ब्रह्माण्ड के किसी ऐसे भाग के बुद्धिमान् प्राणियों की हो सकती है, जो सुदूर अतीत में किसी संकट के कारण विनाश को प्राप्त हो गये हों और जो जीवन को किसी रूप में संरक्षित रखना चाहते थे । डार्विन द्वारा कल्पित आकस्मिक घटनाक्रम के विरुद्ध पर्याप्त कारण हैं । जैसे कि पचास लाख क्रमबद्धों को एक पासे में प्रक्षेप करने के समान हैं । पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व की और कोई सम्भव व्याख्या प्रतीत नहीं होती कि यह बुद्धिमान् प्राणियों की योजना का परिणाम है ।

सर फायड हायल के एक सहयोगी वैज्ञानिक लंकानिवासी विक्रमसिंह ने विकासवाद के खण्डन में उनके सहयोग से तीन पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें एक प्रसिद्ध पुस्तक है 'Evolution from Space'। इस पुस्तक में उन्होंने जैसा कि पुस्तक के नाम से प्रकट है; यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति आकस्मिक (Accidental) नहीं है, वरन् ब्रह्माण्ड के ध्रुवसिद्धान्तों के अनुसार हुई है। ६ सितम्बर, १९८१ के हिन्दुस्तान टाइम्स में ही ज्योफोलेनी नामक टिप्पणीकार ने इन दोनो वैज्ञानिकों के जीवोत्पत्ति सिद्धान्त का संक्षेप में 'God alone knows' शीर्षक से परिचय दिया। हिन्दी के हिन्दुस्तान में 'विकास या लम्बी छलाँग' शीर्षक इस विषय पर टिप्पणी छपी। तदनुसार "उनका कहना है कि जीवो का विकास धीरे-धीरे न होकर बीच-बीच में छलाँग लगाकर हुआ है।" इन वैज्ञानिकों के अनुसार ईश्वर क्या है, ब्रह्माण्ड ही ईश्वर है—"And what is God ? God they suggest is the universe" यह सिद्धान्त प्राचीन भारतीय सिद्धान्त के निकट ही है—जैसा कि वेदो और उपनिषदों में बारम्बार घोषित है—

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचित् जगत्यां जगत्।" (ईषोपनिषद्)

"पुरुष एवेदं सर्वम्" (पुरुषसूक्त)

"हिरण्यगर्भः समवर्ततान्ने" (ऋग्वेद)

"आकाशप्रभवो ब्रह्मा" (अथर्ववेद)

"ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव" (मुण्डकोपनिषद्)

प्रजापतिर्वा इदमेकं आसीत् (ताण्ड्यब्राह्मण १६।१।१)

अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः।"

(ऋग्वेद १०।८२।६)

ब्रह्म, ब्रह्माण्ड का ही अपर नाम है, वह ब्रह्म ब्रह्माण्ड को रचकर उसमे प्रवेश कर गया—

तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत (तै० उपनिषद्)

यही तथ्य श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि सर्वभूतपदार्थ ही ईश्वर हैं, उससे पृथक् नहीं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ (गीता १८।६१)

अन्तरिक्ष वैज्ञानिक भलीभाँति जानते हैं कि समस्त ब्रह्माण्ड किस तेजी से नियमपूर्वक भ्रमण कर रहा है।

उपर्युक्त दोनों वैज्ञानिक (हायल और विक्रमसिंह) के सिद्धान्त, डार्विन के विकासमत का खण्डन करते हैं और भारतीयसृष्टिसिद्धान्त के निकट हैं, परन्तु फिर भी अपूर्ण ही है। यथा सर फ्रायड हायल ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि ब्रह्माण्ड के किन्हीं बुद्धिमान् प्राणियों ने पृथ्वी के प्राणियों को रचा। इसमें अनवस्था दोष है, क्योंकि ब्रह्माण्ड के उन बुद्धिमान् जीवों की रचना के लिये और अधिक बुद्धिमान् प्राणियों की कल्पना करनी पड़ेगी, इस अवस्था का कहीं अन्त नहीं होगा। अतः सृष्टि का भारतीयसिद्धान्त ही सत्य है, जैसा कि आगे प्रतिपादित किया जायेगा।

डार्विन ने जीवोत्पत्ति पर एकांकी दृष्टि से विचार किया। जीवोत्पत्ति से पूर्व ब्रह्माण्डसृष्टि पर विचार करना अनिवार्य है। जीव, ब्रह्माण्ड से पृथक् नहीं हैं, जो सिद्धान्त ब्रह्माण्डसृष्टि के हैं वे ही जीवोत्पत्ति पर लागू होंगे। परन्तु डार्विन और तदनुयायी जीवोत्पत्ति के सम्बन्ध मे किसी नियम को नहीं मानते, वे जीवोत्पत्ति को आकस्मिक घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। इस प्रकार के अनियम को ही वे नियम बनाते हैं। यह पूर्णतः असम्भव और अवैज्ञानिक विचारपद्धति है। अतः जीवोत्पत्ति के नियमों से पूर्व ब्रह्माण्डसृष्टि पर विचार अनिवार्य हैं।

ब्रह्माण्डसृष्टि के नियम

'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' इस उक्ति के अनुसार जो नियम एक पिण्ड या शरीर के लिए है, वही नियम सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। आधुनिक वैज्ञानिक भी यह समझने लगे हैं कि यह अनन्त ब्रह्माण्ड यों ही आकस्मिकरूप से उत्पन्न नहीं हो गया है, यह ब्रह्माण्ड भी किसी जीव या मनुष्य के समान जन्म लेता है और मृत्यु को प्राप्त होता है। अनन्तकोटि नीहारियों से अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड (नक्षत्रादि) अपने निश्चित स्थान पर स्थित होकर नियमित रूप से भ्रमण कर रहे हैं, अतः वेद का यह सिद्धान्त सिद्ध है—

'धाता यथापूर्वमकल्पयत्'

परमात्मा या परमपुरुष ने पूर्वसृष्टि के अनुसार ही नवीनसृष्टि बनाई। बिना नियम के तो यह ब्रह्माण्ड एक क्षण भी स्थिर नहीं रह सकता। बिना नियम के घूमने पर आकाशीय पिण्ड परस्पर टकराकर नष्ट हो जायेंगे, इसीलिए पुराण में कहा गया है—हमारी शिशुकुमार (सर्पाकार) संज्ञक नीहारिका

ब्रह्माण्डकी पूंछ में ध्रुवनक्षत्र स्थित है जो समस्त नक्षत्रमण्डलों को घुमाता है—

प्रश्न था—भ्रमन्ति कथमेतानि ज्योतींषि दिवमण्डलम् ।
अव्यूहेन च सर्वाणि तथैवासंकरेण वा ।।

उत्तर मिला—ध्रुवस्य मनसा चासौ सर्पते ज्योतिषां गणः ।
सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैः सह ।।
वर्षा घर्मो हिमं रात्रिः संध्या चैव दिनं तथा ।
शुभाशुभं प्रजानां ध्रुवात्सर्वं प्रवर्तते ।।
(ब्रह्माण्डपुराण, २२ अध्याय)

हमारी शिशुमारनीहारिका (सृष्टि-ब्रह्माण्ड) सर्पाकार है और सर्पाकाररूप में ही भ्रमण करती है और ध्रुव इसका अध्यक्ष है, जो इसका संचालक है, ध्रुव की अध्यक्षता में हमारी सृष्टि (नीहारिका कश्यप या शिशुमार) के समस्त कार्य सम्पन्न होते हैं, हमारी नीहारिका के समान अनन्त नीहारिकायें अनन्त आकाश में है, अतः इस सबका नियामक या विधाता कितना अप्रतिम होगा, यह अगम्य और अतर्क्य है। अतः मनुष्य यह मानने के लिए बाध्य है कि यह विश्व ब्रह्माण्ड नियमानुसार चल रहा है, तब जीवसृष्टि बिना नियम के कैसे हो सकती, जबकि डार्विन जीवसृष्टि को आकस्मिक मानता था।[1] क्योंकि उस समय पाश्चात्य अन्तरिक्षविज्ञान न तो इतना उन्नत था, अतः विचारे डार्विन को सृष्टि या ब्रह्माण्ड के नियम कहाँ ज्ञात हो सकते थे, इसलिए उसने जीवनसृष्टि को यादृच्छिक मान लिया। उसने अपने सामान्यज्ञान के आधार पर ही विकासवाद की कल्पना कर ली, जो किसी बुद्धिमत्ता का कार्य नही था, यह तो अज्ञान या सामान्यज्ञान से उत्पन्न एक साधारणप्रक्रिया थी, जैसा कि पुराणकार ने कहा है, कि प्रायेण सामान्यजन ब्रह्माण्ड को प्रत्यक्ष देखते हुए भी संमोहित (अज्ञानवृत) होता है—

भूतसंमोहनं ह्येतद्वदतो मे निबोधत ।
प्रत्यक्षमपि दृश्यं च संमोहयति यत्प्रजाः ।। (ब्र०पु०)

डार्विन जैसे संमोहित (अज्ञानी) पुरुष को सत्य का ज्ञान कैसे हो सकता है, जिस सत्यज्ञान के अल्पांश को मरीचि कश्यप, वशिष्ठ, पुलस्त्य जैसे ऋषि सहस्रों वर्षों के कठोरज्ञान या साधनायोग और तपस्या के द्वारा जान सके।

---

१. कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्याः ।
(श्वे० उप०)

सृष्टिसम्बन्ध में डार्विन यदृच्छा (आकस्मिता) को मानता है।

पाश्चात्यों ने अज्ञानवश सौरमण्डल या ब्रह्माण्डसृष्टि के सम्बन्ध मे अनेक मत गढ़े हैं और ब्रह्माण्ड की आयु के सम्बन्ध मे चार-पाँच सहस्र वर्ष से ८० अरब वर्ष तक के अनुमान किये हैं। कोपरनिकस से पूर्व तक पाश्चात्य जगत् को पृथ्वी के गोलत्व के विषय मे भी ज्ञान नही था और न्यूटन से पूर्व उन्हें गुरुत्वाकर्षणशक्ति का ज्ञान नहीं था और संकर्षणबल का अभी भी ज्ञान नहीं है। परन्तु वेदो मे 'चिरकाल से सभी ग्रह, नक्षत्र आदि गोल (परिमण्डल) हैं', ऐसा ज्ञात था—"परिमण्डल आदित्य" परिमण्डल: चन्द्रमा: परिमण्डला द्यौ:, परिमण्डलमन्तरिक्षम् परिमण्डला इयं पृथ्वी।" (जैमिनीयब्राह्मण १।२५७)। ये सब पृथिव्यादि घूमते हैं, इसका उल्लेख इस प्रकार है—

इमे वै लोका. सर्पा यद्धि किं च सर्पंत्येष्वेव

तल्लोकेषु सर्पति (श० ब्रा० ७।४।१।२७)

'इयं (पृथिवी) वै सर्पराज्ञी' (ऐ० ब्रा० ५।२३)

सकर्षणमहमित्यभिमानलक्षणं य संकर्षणमित्याचक्षते।

यस्येद क्षितिमंडल भगवतोऽनन्तमूर्ते: सहस्रशिरस: एकस्मिन्निव शीर्षाणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते। (भागवत ५।२५।१२)

यह भूमण्डल सकर्षणबल से ही अनन्ताकाश में स्थिर होकर भ्रमण कर रहा है।

पाश्चात्यो ने ब्रह्माण्ड या सौरमण्डल की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे निम्न कल्पनाओ की उद्भावना की है। (१) नैबुलरसिद्धान्त, (२) टाईडल सिद्धान्त, (३) प्लेनेटियल सिद्धान्त, (४) युग्मतारासिद्धान्त, (५) फिशनसिद्धान्त, (६) सेफीडसिद्धान्त, (७) नीहारिकाभेदसिद्धान्त, (८) वैद्युतचुम्बकत्वसिद्धान्त, (९) नौवासिद्धान्त और (१०) बिग बैग या महाविस्फोटसिद्धान्त।

इनमे अन्तिम बिगबैगसिद्धान्त प्राचीन सनातन भारतीय सिद्धान्त के निकट है, जिसके अनुसार सर्वप्रथम एक बृहदण्ड (ब्रह्म=बड़ा=बृहत्) या महदण्ड उत्पन्न हुआ, जिससे समस्त लोक उत्पन्न हुए। यदि इस बृहदण्ड से हमारी नीहारिका (कश्यप मारीच) से तात्पर्य है तो इसकी कोई सीमा (अन्त - सान्त) मानी जा सकती, यदि आकाश की समस्त नीहारिकायें इसी बृहदण्ड से उत्पन्न

हुई तो यह ब्रह्माण्ड अनन्त, अगम और अगोचर है—'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'[1] आइन्स्टाइन ने ब्रह्माण्ड को सान्त माना है, परन्तु सान्त हो तो भी मनुष्य के लिए ब्रह्म या ब्रह्माण्ड अगम, अनन्त और अगोचर ही है। इस अन्तराकाश (खाली स्थान) का अन्त कहाँ है, इसको मनुष्यबुद्धि सोच ही नहीं सकती।[2] इसीलिए परमदार्शनिक याज्ञवल्क्य ने, गार्गी के यह पूछने पर कि ब्रह्मलोक किसमें स्थित हैं, इस अतिप्रश्न का निषेध किया था।[3]

बृहदण्ड की उत्पत्ति अकारण ही नहीं होती, इसमें परमपुरुष की इच्छा = 'धाता यथापूर्वमकल्पयत्' सिद्धान्त था। ब्रह्माण्ड का एक रजोमात्र (धूलकण) तुल्य अंश यह पृथिवी है और इस पृथ्वी का जन्म, आयु और मृत्यु निश्चित है। यह

---

१. (क) निष्प्रभेऽस्मिन् निरालोके सर्वतस्तमसावृते।
बृहदण्डमभूदेकं प्रजानां बीजमव्ययम्॥
युगस्यादौ निमित्तं तन्महद्दिव्यं प्रचक्षते।
यस्मिन् संश्रूयते सत्यं ज्योतिर्ब्रह्म सनातनम्॥
अद्भुतं चाप्यचिन्त्यं च सर्वत्र समतां गतम्।
अव्यक्तं कारणं सूक्ष्मं यत् तत् सदसदात्मकम्॥
यस्मात् पितामहो जज्ञे प्रभुरेकः प्रजापतिः।
आपो द्यौः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिशस्तथा॥
(महाभारत १।१।२६,३२,३६)

(ख) हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् (ऋ० १०।१२।१)

(ग) आपो ह वा इदमग्र सलिलमेवास'''।
तासु तपस्तप्यमानासु हिरण्यमाण्डं संबभूव। (श० ब्रा० ११।१।६)

(घ) पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च।
महदादयो विशेषान्ता अण्डमुत्पादयन्ति ते॥ (वायुपुराण ४।७४)

२. (क) यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह (तै० उ० ३२।४)
(ख) सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्॥
(तै० उ० २।१)
(ग) न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति (केनोपनिषद् १।३)

३. कस्मिन्नु खलु ब्रह्मलोका ओताश्च प्रोताश्चेति स होवाच गार्गि! मातिप्राक्षीर्मा ते मूर्धा व्यपप्तदनतिप्रश्न्यां वै देवतामतिपृच्छसि गार्गि मातिप्राक्षीरिति। (बृ०उ० ३।६।१)

ब्रह्माण्ड और पृथिवी कितने बार उत्पन्न हुए और कितने बार नष्ट हुए; इन तथ्य को कौन जान सकता है। वर्तमान पृथिवी पर भी न जाने कितनी बार जीवसृष्टि या मानवसृष्टि और प्रलय हुई है इसका ठीक-ठीक विवरण ज्ञात नहीं है। आधुनिक वैज्ञानिकों की प्रायः यह धारणा है कि पृथिवी पर यह मानवसृष्टि प्रथम बार (विकासवाद के अनुसार) लगभग ५० लाख वर्ष पूर्व हुई होगी। परन्तु यह प्रमाणशून्य मिथ्या धारण ही है। पृथिवी की ठीक-ठीक आयु निश्चित ज्ञात नहीं है, परन्तु पाँच अरब वर्ष तक अनुमानित की गई है। इस दीर्घावधि मे पृथिवी पर सूर्यातप या हिम मे न जाने कितनी बार जीव उत्पन्न और नष्ट हुए यह अज्ञात है। परन्तु आधुनिक वैज्ञानिकों की मिथ्याधारणा के विपरीत, इस तथ्य के प्रमाण मिले हैं कि जीवों के साथ मानवसभ्यता का भी पृथिवी पर अनेक बार उदय और लोप हुआ है। अभी तक पृथिवी पर सूक्ष्म-जीवो का प्रादुर्भाव साठ करोड़ पूर्व तक का ही माना जाता था, परन्तु अभी हाल में खोजो से पृथिवी पर जीवन का अस्तित्व साढ़े तीन अरब वर्ष पूर्व तक का माना जाने लगा है[1] और यह जीवास्तित्व न जाने और कितना और प्राचीनतर सिद्ध हो जाये। अतः पृथिवी की आयु अनेक अरबों वर्ष है, कुछ भारतीय विद्वान् मन्वन्तरो के आधार पर पृथिवी की आयु दो अरब वर्ष कल्पित करते हैं, सो यह गणना भी मनघड़न्त और काल्पनिक है, इस विषय की विवेचना अन्यत्र इसी पुस्तक में की जायेगी। इस गणना का मिथ्यात्व तो इसी नवीन खोज से सिद्ध हो गया कि पार्थिव जीवसृष्टि न्यूनतम चार अरब वर्ष प्राचीन थी।

अनेकबार प्रलय

पृथिवी पर अनेक बार उष्णयुग या हिमयुग व्यतीत हो चुके हैं, जिनमे अनेक बार आंशिक या पूर्ण जीवसृष्टि नष्ट हुई और पुनरुत्पन्न हुई। प्राचीन साहित्य मे ज्ञात होता है कि मनुष्य को केवल दो प्रलयों की स्मृतिशेष है।[2]

---

१. नवभारत टाइम्स मे कुछ मास पूर्व 'विज्ञानजगत्' शीर्षक से यह रिपोर्ट छपी थी "पता चला है कि कर्नाटक राज्य मे जो सूक्ष्म फासिल चट्टानें मिली हैं, वे अफ्रीका मे मिली चट्टानो के समान हैं, इनसे यह सिद्ध होता है कि पृथिवी पर जीवन अधिक पुराना है, लगभग ३.८ अरब वर्ष पूर्व।'

२. इनमे से प्रथम प्रलय में सूर्यताप से पृथ्वी पर जीव पूर्णतः समाप्त हो गये, तदनन्तर वराह (मेघ=ब्रह्मा) ने जीव सृष्टि की—
(क) युगान्ते मारुते इव शोषित मकरालयम् (शल्यपर्व ६६।६)
(ख) युगान्ते सर्वभूतानि दग्धानि (द्रोणपर्व १५७ १७२)

प्रलय मे सम्पूर्णमनुष्य जाति नष्ट हो जाने पर पूर्व इतिहास को मनुष्य जान भी कैसे सकता था। इसमे प्रथम महाप्रलय में अग्निदाह के पश्चात् वराह (मेघ = ब्रह्मा)[1] की कृपा से सलिलमय पृथिवी का उद्धार हुआ और स्वायम्भुव मनु ने नवीन मानव सृष्टि की। महाभारत मे ब्रह्मा के सात जन्मो का उल्लेख है, जिनमे प्रत्येकबार नवीनसृष्टि उत्पन्न हुई। इन सात ब्रह्माओं के नाम थे—(१) मानस ब्रह्मा, (२) चाक्षुष ब्रह्मा, (३) वाचस्पत्य, (४) श्रावण, (५) नासिक्य, (६) अण्डज हिरण्यगर्भ ब्रह्मा और सप्तम (७) कमलोद्भव (पद्मज) ब्रह्मा। युगान्त मे पृथिवी के दग्ध होने पर पृथ्वीवासी वैमानिक देवगण विमानों में बैठकर दूसरे लोको में चले गये—

चतुर्युगसहस्रान्ते सह मन्वन्तरैः पुरा।
क्षीणे कल्पे ततस्तस्मिन् दाहकाल उपस्थिते।
तस्मिन् काले तदा देवा आसन्वैमानिकास्तु ये।
कल्पावसानिका देवास्तस्मिन् प्राप्ते ह्युपप्लवे।
तदोत्सुका विषादेन त्यक्तस्थानानि भागशः।
महर्लोकाय संविग्नास्ततस्ते दधिरे मनः॥

(ब्रह्माण्ड० अध्याय ६)

"चतुर्युगसहस्र के अन्त मे मन्वन्तरो का अन्त होने पर, कल्पनाश के समय दाहकाल उपस्थित होने पर पृथ्वीवासी वैमानिक देवगण सताप से सविग्न होकर पृथ्वीलोक छोडकर महर्लोक की ओर बसने चले गये।"

उपर्युक्त पुराणप्रमाण से हमारे इस मत की पुष्टि होती है कि पृथ्वी पर अनेक बार मानवसृष्टि और सभ्यता का उदय और अस्त हुआ था। और कुछ आधुनिक अन्तरिक्ष वैज्ञानिको के इस मत को भी बल मिलता है प्राणीवर्ग एव मनुष्य दूसरे ग्रह नक्षत्र से पृथ्वी पर आकर बसे और उडनतश्तरियो मे बैठकर आज भी तथाकथित अन्तरिक्ष मानव या देवगण पृथ्वी पर यदा-कदा आते रहते है। इस सम्बन्ध मे प्रसिद्ध अन्तरिक्ष वैज्ञानिक फ्रायड हायल का मत पहिले ही लिख चुके हैं।

---

१. सर्वं सलिलमेवासीत् पृथिवी यत्र निर्मिता।
ततः समभवद् ब्रह्मा स्वयम्भूर्दैवतैस्सह।
स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुन्धराम्॥

(रामायण अरण्यकाण्ड ११०।३-४)

मन्वन्तरों और अवतारों में विकासवाद की मिथ्याकल्पना

पुराणों में १४ मनुओं का वर्णन मनुष्यों के रूप में किया है और उसे उसी रूप में ग्रहण करना चाहिये। जिस समय प्रथम मनु-स्वायम्भुव (स्वयं-भूपुत्र) उत्पन्न हुये, उस समय और उससे बहुत पूर्व पृथ्वी विद्यमान थी, वे पृथ्वी पर ही उत्पन्न हुए थे जबकि वराह ने भूमि को समुद्र में से निकाल लिया। जलप्लावन मे पृथ्वी पूरी तरह धुल गई थी।[1] इससे पूर्व सूर्यताप से पृथ्वी पृष्ठ (ऊपरी भाग) दग्ध हो गया था—

> जंगमा: स्थावराश्चैव नद्य: सर्वे च पर्वता:।
> शुष्का: पूर्वमनावृष्ट्या सूर्यैस्ते प्रधूपिता:।
> तदा तु विवशा: सर्वे निर्दग्धा: सूर्यरश्मिभि: ॥[2]

पृथ्वीदाह के समय पृथ्वीतल पर किसी भी जीव के शेष रहने का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता, दाह से पूर्व वैमानिकदेव पृथ्वी छोड़कर अन्य लोको मे चले गये थे। पृथ्वीदाह के लाखों वर्षों पश्चात् वराहमेघ द्वारा पृथ्वी पर समुद्र बने—

> ततस्तु सलिले तस्मिन्नष्टाग्नौ पृथ्वीतले।
> एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे।
> तदा भवति स ब्रह्मा सहस्राक्ष: सहस्रपात् ॥[3]

पूर्वयुगो मे पृथ्वी का ऐसा दाह अनेक बार हो चुका है, इन्ही दाहो द्वारा पृथ्वीगर्भ मे अनेक धातुये,[4] कोयला और पैट्रोल जैसे पदार्थ बने। उपर्युक्त वर्णन का तात्पर्य यह है कि स्वायम्भुव मनु 'सूर्योत्पत्तिकाल' का नाम नही है और न पृथ्वीजन्म ही २ अरब वर्ष पूर्व हुआ, सूर्य और पृथ्वी तो स्वायम्भुमनु से अरबोवर्ष पूर्व विद्यमान थे। 'कल्प' का अर्थ है 'नवीनसृष्टि' उसी को युग भी कहा गया है। कल्प की समाप्ति के समय दाहकाल मे ग्रह चन्द्र-सूर्यादि सभी विद्यमान थे—

> चतुर्युगसहस्रान्ते सह मन्वन्तरै: पुरा।
> क्षीणे कल्पे ततस्तस्मिन् दाहकाल उपस्थिते।
> नक्षत्रग्रहताराश्च चन्द्रसूर्यास्तु ते ॥[5]

---

१. संप्रक्षालनकालोऽयं लोकाना समुपस्थित: (महाभारत ३।१९०।२६)
२. ब्रह्माण्ड पु० (१।६।४६-४७),
३. ब्रह्माण्ड (१।३।३०)
४. धातुत्वमेति विस्तारे चैतास्तत्र स्मृता: ॥ (ब्रह्माण्डपुराण १।५।६६)
५. ब्रह्माण्ड पु० (१।२।६।१५-१७)

अत: कल्पान्त मे पृथिवीजन्तुओं का विनाश नहीं होता। ऐसे अनेक कल्प पृथिवी पर व्यतीत हो चुके हैं।[1]

वैवस्वतमनु का स्वायम्भुवमनु से कालान्तर केवल १६००० (सोलह सहस्र) वर्ष या ४३ परिवर्तयुग था, जैसा कि पुराणप्रमाण से अन्यत्र सिद्ध किया जायेगा और वैवस्वतमनु विक्रम से लगभग १२००० वर्ष पूर्व हुए थे, यही पुराणो मे लिखा हुआ है। सभी चौदह मनु प्रजापति मनुष्य ही थे, अत: पुराणो मे इसका कोई दूसरा अर्थ है ही नही, और इतिहास मे इसी अर्थ को मानना चाहिए। १४ मनु (स्वायम्भुव से वैवस्वतपर्यन्त) केवल ४३ परिवर्तयुगो मे हुये। सभी १४ मनु भूतकाल के मनुष्य थे, भविष्य मे ७ मनुओं का पाठ सर्वथा भ्रामक है, तथाकथित भविष्य चार सावर्णि मनु दक्ष के दौहित्र थे—

दक्षस्य ते दौहित्राः क्रियाया दुहितुः सुताः।
महानुभावास्ते जज्ञिरे चाक्षुषेऽन्तरे॥

(ब्र० पु० ३।४।२६)

तथाकथित भविष्य मे होने वाले चार सावर्णमनु चाक्षुषमन्वन्तर (छठे मन्वन्तर) मे, सप्तम मनु वैवस्वत से पूर्व हो चुके थे। इसी प्रकार रुचि प्रजापति का पुत्र रौच्य और भूतिपुत्र भौत्य मनु भी चाक्षुष और वैवस्वत के मध्य हुये—

चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वतस्य च।
रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यौनामाभवत्सुत॥ (३।४।५०)

अत: १४ मनुओ मे परस्पर कुछ शताब्दियो और सहस्राब्दियो का ही अन्तर था। १४ मनुओ मे सबसे अन्तिम (चौदहवें) वैवस्वत मनु थे और वे स्वायम्भुव मनु से =४३ परिवर्तयुगो अर्थात् १६००० वर्ष पश्चात् हुये। अत: मन्वन्तरकाल ३० करोड ६७ लाख २० हजार वर्ष का नहीं था, वह केवल कुछ

---

१. एतेन क्रमयोगेन कल्पमन्वन्तराणि च।
सप्रजातानि व्यतीतानि शतशोऽथ सहस्रशः।
मन्वन्तरान्ते संहारः संहारान्ते च संभवः॥

(ब्र० पु० ३।२।१६१-६३)

अत: असंख्य कल्प और मन्वन्तर (जीवों सहित) पृथ्वी पर व्यतीत हो चुके हैं। कल्पमन्वन्तरादि में पृथ्वी का पूर्णनाश नहीं होता। केवल जीव-जंतुओं का नाश और भूपृष्ठ पर हलचल होती है।

चतुर्युगियों या सहस्राब्दियों के काल-परिमाण का था, अतः मन्वन्तरकाल को सौरमण्डल की सृष्टिप्रक्रिया में घसीटना सर्वथा भ्रामक, निरर्थक, अनैतिहासिक और अवैज्ञानिक है।

अवतारों में विकासक्रम देखना भी सर्वथा भ्रामक और मिथ्या है। इन अवतारों के समय का देश कालपात्र, जैसा कि पुराणों में वर्णित है, अवश्य द्रष्टव्य है।

वैवस्वत मनु, सप्तर्षि और अन्य मनुष्य एवं जीव भी पृथ्वी पर रहते थे, तब मत्स्य को विकास की प्रथम कड़ी के रूप में देखना, केवल हवाई कल्पना है, इसमें कोई सार नहीं। इसी प्रकार नृसिंह के समय हिरण्यकश्यपु, प्रह्लादादि, वामन के समय शुक्राचार्य, बलि आदि मानव प्राणी पृथ्वी पर थे, यह तथ्य पुराण अध्येता सम्यक् प्रकार से जानते है, पुनः परशुराम, दाशरथि राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि के रूपों में मनुष्यशरीर या मानवसभ्यता का विकास मानना न केवल हास्यास्पद वरन् घोर अज्ञान का प्रतीक भी है। अतः पुराणोल्लिखित दशावतारो मे मानवविकास देखना सर्वथा निरर्थक कल्पना का भार ढोना है। इस सम्बन्ध मे इन प्राचीन उक्तियों का मनन एवं ध्यान करना चाहिये—

(१) "बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।"

(२) एकं शास्त्रमधीयानो न याति शास्त्रनिर्णयम्।

(३) तेषा च त्रिविधो मोहः सम्भवः सर्वपाप्मनाम्।
अज्ञानं संशयज्ञानं मिथ्याज्ञानमिति त्रिकम्॥

(४) मोहाद् गृहीत्वासद्ग्राहान् प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।

(५) स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेद न विजानाति योऽर्थम्।

(६) पारोवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषुभूयोविद्यः प्रशस्यो भवति।

उपर्युक्त उक्तियों पर विचार करके ही ज्ञान-विज्ञान पर विचारणा करनी चाहिये—

अध्यात्म और विकासवाद

विकासवादी अध्यात्मविद्या और योगविज्ञान मे कोरे होते हैं, बिना आत्मा का विज्ञान जाने ब्रह्माण्ड या सृष्टि का रहस्य समझा नहीं जा सकता। दर्शन और मनोविज्ञान का ज्ञान भी मनुष्य शरीर को समझने के लिए आवश्यक है। सच्चा ज्योतिषी भविष्य की घटना को देख सकता है, इसी प्रकार अतीन्द्रिय ज्ञान सम्पन्न प्राणी केवल मनुष्य नहीं—पशु-पक्षी आदि भी, भविष्य को देख

लेते हैं। पशु-पक्षियों को भविष्य म होने वाले भूकम्प की सूचना अनेक दिन पूर्व ज्ञात हो जाती है, इसी प्रकार सर्प अपने घातक को सहस्रों मील जाकर भी पहचान लेता है, कुत्ते की घ्राणशक्ति अपराधियो को पकड़ने में काम आती है, पक्षियो को दिव्यदृष्टि प्राप्त है जो हजारों मील दूर की वस्तु को देख लेते हैं, अतः अतीन्द्रिय ज्ञान केवल कल्पना की वस्तु नही है जब पशु-पक्षी अतीद्रिय-ज्ञान सम्पन्न हो सकता है तो मनुष्य क्यों नहीं हो सकता। प्राचीनभारत में ऐसे अनेक अध्यात्मयोगी और भविष्यवक्ता हो चुके हैं जो अतीत और अनागत का ज्ञान रखते थे। योगशास्त्र एवं पुराणादि मे योगजशरीर, सांकल्पिक अयोनिज, अमैथुनीसृष्टि, मानसपुत्र, सांसिद्धिकशरीर, यन्त्रशरीर आदिक योगजादि शरीर सिद्धि[1], अतीन्द्रियज्ञान और पुनर्जन्म के लिए आत्मा का अस्तित्व अनिवार्य है, जब प्राणी मरता है तो लिंगशरीर या सूक्ष्मशरीर नहीं मरता, वह आत्मा के साथ ही भ्रमण करता है। पूर्वजन्म की स्मृति अनेक व्यक्तियों को बाल्यावस्था में रहती है, अनेक व्यक्ति पूर्वजन्म मे सीखी हुई भाषाओं को इस जन्म में बोलते हैं, ऐसी घटनाओं के विवरण आये दिन पत्रिकाओं मे प्रकाशित होते रहते हैं। लेकिन आत्मा आदि को प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता, केवल ज्ञानचक्षु से उसका ज्ञान होता है—

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥ (गीता १५।१०)

आत्मा और विकासवाद का शाश्वतिकविरोध है। विकासवादी सृष्टि को भौतिक एवं आकस्मिक घटना मानते है, परन्तु अध्यात्मवाद के अनुसार जीव-सृष्टि 'समष्टि' आत्मा (परमात्मा) से उत्पन्न हुई। कल्पान्त मे वैमानिकदेव मानसीसिद्धि से ही जीव रचना करते हैं

विशुद्धिबहुलां मानसीं सिद्धिमास्थिताः।
भवन्ति ब्रह्मणा तुल्या रूपेण विषयेण च॥ (ब्र० पु०)

यह ब्रह्माण्डसृष्टि धाता[2] की निश्चित योजनानुसार हुई है, यह कोई

---

1. स्वायम्भुवमन्वन्तर में होने वाले सिद्ध कपिल ने योग द्वारा निर्माणचित्त का निर्माण करके द्वापरयुग में आसुरि को सांख्य का उपदेश दिया—
"आदिविद्वान् निर्माणचित्तमधिष्ठाय कारुण्याद्
भगवान् परमर्षिरासुरये जिज्ञासमानाय तन्त्रं प्रोवाच॥"
(योगसूत्र व्यासभाष्य १।२५)

2. सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथ्वीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥ (ऋ १०।१९०।३)

आकस्मिक घटना नहीं, विश्व ब्रह्माण्ड की प्रत्येक घटना का सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से सम्बन्ध है, यदि ऐसा नहीं हो तो किसी घटना का भविष्यदर्शन नहीं किया जा सकता। मनोविज्ञान का साधारण विद्यार्थी भी जानता है कि मनुष्य स्वप्न में भविष्य की घटनायें बहुधा देखता है और निश्चित प्रतीकों का निश्चित अर्थ होता है इससे भी सिद्ध है कि सृष्टि में मनुष्यजन्म क्या उसका प्रत्येक विचार भी पूर्वनिश्चित है और पूर्वयोजनानुसार निर्मित होता है यदि ऐसा न हो तो स्वप्न का निश्चित परिणाम या फल न हो।

अध्यात्म, पुनर्जन्म, स्वप्नभविष्यदर्शन आदि पर विस्तृत विचार करने का यह उपयुक्त ग्रन्थ नहीं, यहाँ पर इनकी सांकेतिक चर्चा इसीलिए की है कि विकासवाद मानने पर आत्मा पुनर्जन्म, स्वप्नफलसाम्य, भविष्यदर्शन, आदि कदापि उपपन्न नहीं हो सकते, अतः पुनर्जन्मादि के प्रमाण से विकाससिद्धान्त का पूर्णतः खण्डन होता है। जो आत्मवादी विकासवाद को मानता है वह घोर अज्ञानी है।

ह्रासवाद-सत्य

डार्विनकल्पित विकासवाद असत्य है इसके विपरीत ह्रासवाद सत्य सिद्ध हो रहा है। पूर्वनिर्दिष्ट सर फ्रायड हायल के नवीन उद्घोषित सिद्धान्त में कहा गया है कि पृथ्वी पर प्राणी सृष्टि किसी दूसरे ग्रह (लोक) के अधिक बुद्धिमान् प्राणियो ने की होगी। पुराणो मे आदिकाल से ही बताया गया है कि स्वयम्भू (ब्रह्मा) के दक्ष, वसिष्ठ, पुलस्त्य, क्रतु मरीचि आदि मानसपुत्र[1] (अयोनिज) पृथ्वी पर सर्वाधिक बुद्धिमान् प्राणी थे, इन्हीं दक्षादि दक्षप्रजापतियों ने पृथ्वी पर जीवसृष्टि की। पुराणों में कश्यप प्रजापति की १३ पत्नियों से अनेक पशु-पक्षी एवं सरीसृपों की सृष्टि बताई गई है। इससे ह्रासवाद की पुष्टि होती है

---

१. यहूदीग्रन्थों मे भी सप्तर्षियों को Seven wiseman कहा गया है। *Seven Sages*—"In the time before the Flood there lived the heroes, who (Gilgames epic) dwell in the under world or the Babylonion Nooh, are removed into the heavenly world. At that time there lived, too, the (Seven) Sages (Encyclopedia of Religion & Ethics, Articles on Ages).
गीता का एक वचन द्रष्टव्य है :—

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः॥ (गीता १०।६)

कि पूर्ण मानव से मन्दबुद्धि या मूर्ख प्राणी उत्पन्न हुए। आदिमानव स्वयम्भू और उनसे दश मानसपुत्र स्वायम्भुव मनु आदि पूर्णज्ञानी सिद्धपुरुष थे, इनके आगे उत्पन्न होने वाले मनुष्यो का ज्ञान घटता गया। ब्रह्मा (स्वायम्भुव) को सभी ज्ञानविज्ञानों (शास्त्रों) का अदि प्रवर्तक कहा गया है। स्वायम्भुव मनु को मनुस्मृति में 'सर्वज्ञानमयो हि सः' कहा गया है। आदियुग में मनुष्यों की आयु अपरिमित अर्थात् अधिक थी, उसका शरीर, बल, आत्म-बल और आयु भी अधिक थी, वह क्रमश त्रेता, द्वापर, कलि मे घटती गई। दीर्घायुष्ट्व का अधिक विस्तृत विवेचन पंचम अध्याय मे करेंगे।

उपर्युक्त सभी तथ्यो (प्रमाणो) से ह्रासवाद का समर्थन या सिद्धि होती है।

पाश्चात्य रहस्यमय अनुसंधाता डेनीकेन की अद्भुत खोजो से भी ह्रासवाद सिद्ध होता है, जबकि करोडो वर्षों पूर्व पृथ्वी निवासी मनुष्य अन्तरिक्ष यानों द्वारा दूसरे ग्रहनक्षत्रों की यात्रा करते थे और अन्य लोको के प्राणी अन्तरिक्ष यानों मे बैठकर पृथ्वी पर आते थे। इस तथ्य का संकेत वैदिकग्रथो एव पुराणो मे भी मिलता है। वैदिक अश्विनी और मरुद्गण ऐसे ही अन्तरिक्ष देव थे, ये घटनाये महाभारतयुद्ध मे केवल १०,००० वर्ष पूर्व की ही है। वैमानिकदेवो ने तो स्वायम्भुवमनु से पूर्व (जलप्लावन से पूर्व) सप्तलोको की यात्रायें की थीं, जैसा कि ब्रह्माण्डपुराण मे उल्लिखित है।[1]

आज भी पृथ्वी पर सभ्यमानवों की अपेक्षा असभ्यों या असस्कृतों (अविकसित = अशिक्षित = मूर्खादि) की संख्या कई गुणा अधिक है, आज का भारत इसका उत्तम निदर्शन है, यहाँ ८० प्रतिशत जन निरक्षर हैं आज भी मनुष्य गुफाओ में रहते है, नरभक्षी हैं, पिशिताशन पिशाच) इत्यादि हैं। तो इससे विकासवाद कैसे सिद्ध हो गया। इससे तो यही सिद्ध होता है कि अधिकाधिक मनुष्य मूर्ख होते जा रहे हैं। उसका सर्वविधि ह्रास हो रहा है। तथाकथित विकासवाद का प्रलाप भी मनुष्य को असभ्यता की ओर अग्रसर कर रहा है,

---

१. द्रष्टव्य ब्रह्माण्डपुराण, अनुषंगपाद पृष्ठ अध्याय, इन वैमानिकदेवों की संख्या थी—

त्रीणि कोटिशतान्यासन्कोट्यो द्विनवतिस्तथा।
अथाधिका सप्ततिश्च सहस्राणां पुरा स्मृताः॥
एकैकस्मिस्तु कल्पे वै देवा वैमानिकाः स्मृताः।

तीन अरब बानवें करोड़ बहत्तर हजार वैमानिक देवगण।

असद्‌मतों को मानना भी मानवबुद्धि के ह्रास का लक्षण है, अतः सभी प्रकार के सम्यक् विचार से सिद्ध होता है कि मनुष्य ह्रास की ओर बढ़ रहा है।

प्रागैतिहासिकतावाद

विकासमत से उत्पन्न अज्ञान पर प्रागैतिहासिकतावाद की कल्पना ने रंग चढ़ाया। इससे विश्व इतिहास मे पेड़ चढ़ैया की कहानी घड़ी गई कि आदि मानव बन्दर के समान चढ़कर जीवन-यापन करता था, पुनः प्रस्तर युग, धातु-युग, पशुपालन युग, कृषियुग जैसे तथाकथित काल्पनिकयुगों की कल्पना की गई जिनका प्राचीनसाहित्य मे कही न तो उल्लेख है और न किसी प्रमाण से इनकी पुष्टि होती है। पाश्चात्यकल्पकों ने, भारतीय इतिहास मे तो गौतमबुद्ध और बिम्बसार से पूर्वयुग को प्रागैतिहासिकयुग माना और पाश्चात्य लेखकगण ने गौतमबुद्ध से पूर्व होने वाले कृष्ण, राम, व्यास, वाल्मीकि जैसे प्रसिद्धपुरुषो को ऐतिहासिक व्यक्ति न मानकर काल्पनिक व्यक्ति माना।[1] कपिल, स्वायम्भुव मनु, इन्द्र वरुण, विवस्वान्, कश्यप, वैवस्वत मनु[2] आदि को पार्जीटर जैसा पुराणविशेषज्ञ भी ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं मानता था।

वास्तव मे वर्तमान विश्व इतिहास और भारतवर्ष का इतिहास स्वयम्भू और उसके दशपुत्रो (स्वायम्भुव मनु आदि) से प्रारम्भहोता है, अतः स्वायम्भुव मनु तक का समय ऐतिहासिक था। इससे पूर्व के इतिहास का ठीक-ठीक ज्ञान पुराणो मे भी नही प्राप्त होता, अतः प्राक्स्वायम्भुवमनुकाल को तो प्रागैति-हासिक कहा जा सकता है, इसके पश्चात् के काल को नही। यह प्रागैतिहा-सिकतावाद पाश्चात्यषड्यन्त्र और अज्ञान का परिणाम था, जो इतिहास की

---

१. अन्त मे फिर कहना आवश्यक है कि न केवल महाभारत मे वर्णित घटनायें बल्कि, राजाओ, राजकुलो मे अगणित नाम चाहे इनमें कुछ घटनायें और नाम कितने ही ऐतिहासिक क्यो न मालूम पड़ें, सही मायने मे भारतीय इतिहास नही है। भारतवर्ष का इतिहास मगध के शिशुनाग राजाओ और अजातशत्रु से शुरू होता है। (विन्टरनीत्स कृत भारतीय साहित्य, प्रथम भाग, पृष्ठ १६८, रामचन्द्र पाण्डेय कृत अनुवाद) यहाँ विन्टरनीत्स का घोर अज्ञान, पक्षपात और पूर्वाग्रह स्पष्ट है। ऐसे लेख भारतीय इतिहास को विकृति के प्रधान कारण बने

२. All the royal lineages are traced back to the mythical Manu Vaivasvata". (A.I.H.T. p. 84)

विकृति का एक प्रमुख कारण बना ।[1]

भारतीय इतिहास में प्रागैतिहासिकतावाद के लिए कोई स्थान नहीं है, क्योंकि मानवोत्पत्ति से आज तक का इतिहास, पुराणों से ज्ञात हो जाता है ।

प्रागैतिहासिकतावाद, धातुयुग आदि सभी विकासमत के मानसपुत्र हैं, जब विकासमत ही असिद्ध है, तब इससे उत्पन्न सभी वाद स्वयं निरस्त हो जाते हैं अत: विद्वानों को इन सभी मिथ्यावादों को छोडकर सत्य इतिहास का आश्रय लेना चाहिये । सत्य इतिहास का ज्ञान केवल प्राचीनभारतीयसाहित्य एवं अन्य प्राचीनग्रन्थों से होता है ।

डार्विन का विकासवाद आज तक किसी भी वैज्ञानिक प्रमाण से पुष्ट नहीं हुआ, आज के श्रेष्ठ वैज्ञानिक विचारक इससे हटते जा रहे हैं, क्योंकि आज तक किसी ने भी एक जीव से दूसरे जीव (योनि) में परिवर्तन होते नहीं देखा । एक कोषीय अमीवा से हाथी या डायनासोर जैसे विशाल जीव कैसे परिवर्तित हो सकते है । जब सात-सात करोड वर्षों से किसी जीवसंरचना मे रत्तीभर भी परिवर्तन नहीं हुआ, फिर ३७ लाख वर्ष में बन्दर से मनुष्य कैसे बन गया, यह कल्पना बोधगम्य नहीं है, अत: डार्विन कल्पित विकासवाद सर्वथा त्याज्य है । इस विकासवाद की असिद्धि की अन्य हेतु पूर्व संकेतिक किए जा चुके हैं ।

विकासवाद की कल्पना, डार्विन के अधकचरे ज्ञान की अटकलपच्चू कल्पना थी जिसका विज्ञान या सत्य से कोई सम्बन्ध नहीं । डार्विन को न तो आत्म-विद्या, न योगविद्या, नक्षत्र विद्या किंवा किसी भी विज्ञान का सम्यक् ज्ञान नहीं था, वह मनुष्य के प्रारंभिक इतिहास को भी नहीं जानता था, इसीलिए उसने घोर अज्ञान द्वारा उपर्युक्त कल्पना की ।

पाश्चात्य मिथ्याभाषामत

यहाँ पर हमारा उद्देश्य भाषाविज्ञान का वर्णन करना नहीं है, केवल यह प्रदर्शित करने के लिए कि पाश्चात्य मिथ्याभाषामतों ने भारतीय इतिहास को कितना विकृत किया, उनका साररूप से खण्डन करना आवश्यक है ।

---

१. पाश्चात्य लेखक तो पाराशर्य व्यास को मनगढ़न्त (Legendry) पुरुष मानते ही थे, श्री राधाकृष्णन जैसे भारतीय मनीषी भी पाश्चात्य प्रभाव से वैसा ही मानते थे "The authership of the Gita is attributed to Vyasa, the legendry compiler of the Mahabharata" (भगवद्गीताभूमिका, श्री राधाकृष्णन्) पृ० १४,

हम पहिले संकेत कर चुके हैं कि जब पाश्चात्यों को संस्कृतभाषा से सर्वप्रथम परिचय हुआ तो उनकी प्रवृत्ति देववाक् संस्कृत को विश्व की आदिम और मूलभाषा मानने की थी। जर्मन संस्कृतज्ञ श्लेगल एवं फ्रैंच बाप आदि की प्रवृत्ति यही थी, परन्तु उत्तरकाल में इस सत्य के फलितार्थ को समझकर उन्होंने षड्यंत्र किया कि संस्कृत को विश्व की आदिम भाषा न माना जाय। जब फ्रैंच वैयाकरण बाप ने ग्रीक, लैटिन, पारसी आदि शब्दों का मूल संस्कृत बताना शुरू किया तो मैक्समूलर ने प्रलाप किया— (1) "No Sound scholar ever think of deriving any Greek or Latin word from sanskrit[1]" (2) No one supposes any longer that sanskrit was the common source of Greek, Latin and Anglo saxon[2]. कोई भी निष्पक्ष विद्वान् भाँप लेगा कि यहाँ मैक्समूलर जानबूझ कर सत्य के साथ व्यभिचार कर रहा है, इसका कारण था मैकाले से मिलने के पश्चात् उसका भारतीय इतिहास के साथ रचा गया षड्यन्त्र; इसी षड्यन्त्र के परिणामस्वरूप, पाश्चात्यों ने एक भारोपीयभाषा (Indo European) की कल्पना की, जिसे संस्कृत का भी मूल बताया गया। पाश्चात्यों ने भारतीय और योरोपीय भाषाओं की तुलना से उल्टे परिणाम निकालकर उल्टी गंगा बहाना शुरू किया। पाश्चात्य लेखकों ने अपने मनमाने परिणामों के आधार पर प्रलाप करना शुरू किया कि— 'भाषा का साक्ष्य अकाट्य है, जो प्रागैतिहासिकयुगों के विषय में श्रवणयोग्य है।[4] इसी आधार पर जर्मनसंस्कृतज्ञो ने दम्भ करना प्रारम्भ किया कि वेद का अर्थ जर्मनभाषाविज्ञान से अच्छी प्रकार समझा जा सकता है और जर्मनीभाषा

---

(1) Science of Language Vol. II p. 449.

(2) India, what can it teach us, (p. 21).

(3) In Greek the Sanskrit a becomes a, e or o, without presenting any certain rules-comparative grammer, p. XIII).

(4) The evidence of language is irrefragable and it is the only evidence worth listening with regard to ante-historical periods. (History of Ancient Skt. Lit. MaxMuller p. 13).

"Language alone has preserved a record which would Otherwise have been lost". (Cambridge history of India. Vol. I. p. 41).

विज्ञान का जन्मदाता है—(1) Germany is far more than any other country, the birth place and home of language"[१] (2) The principles of the German school are the only ones which can ever guide us to a understanding of Veda"[२].

इसी मिथ्याभाषाविज्ञान के आधार पर प्रागैतिहासिक युगों एवं आर्यप्रावजन की कथा घड़ी गई। मिथ्याभाषामत के आधार ही काल्पनिक इण्डोयूरोपियन मानी गई और यह कल्पना की गई कि आर्यों का मूल किसी यूरोपियन देश मे था, जहाँ से वे ईरान, भारत आदि मे उपनिविष्ट हुये।

संसार आज जानता है कि प्राचीनभारत मे भाषा और व्याकरण का जैसा अप्रतिम और विशाल अध्ययन हुआ, वैसा शतांश भी योरोप मे नही हुआ। इन्द्र से पाणिनि तक शतशः महान् वैयाकरण हुए। भारतीयमत के अनुसार मनुष्य के समान भाषा भी स्वयम्भू ब्रह्मा से उत्पन्न हुई, इसलिए उसको ब्राह्मी या देववाक् कहा जाता है। भारतीय इतिहास मे मिथ्या भाषामत के आधार पर 'आर्य' जाति की कल्पना और इतिहास से मिथ्यायुगविभाग' किया गया। अतः इन्ही दो विकृतियों पर यहां विशेष विचार किया जाता है।

'आर्यजाति' सम्बन्धी मिथ्याकल्पना

'आर्य' शब्द किसी जातिविशेष का बोधक नही है। योरोपियन लेखको ने, अब से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व जब प्राच्यविद्यों का अध्ययन प्रारम्भ किया, तभी से इस शब्द को 'जाति' के अर्थ मे माना जाने लगा। परन्तु प्राचीनवाङ्मय में 'आर्य' शब्द किसी जातिविशेष के अर्थ मे प्रयुक्त नही हुआ है। इस कल्पना का मूलकारण था कि जब पाश्चात्यों ने 'इण्डोयूरोपियन' भाषा की कल्पना की और इस सम्पूर्ण भाषावर्ग का सम्बन्ध कल्पित 'आर्य' जाति से जोड़ा, जिससे कि इस जाति को विदेशी (अभारतीय) सिद्ध किया जा सके। वेदों में 'आर्य' और 'दस्यु' शब्द समाज के दो वर्गों का बोध कराते है।

पाश्चात्यों का षड्यन्त्र

यह था कि उत्तरभारतीयों का भारत मे प्रमुत्व है, अतः उन्हे विदेशी सिद्ध किया जाए और दक्षिणभारतीयों मे फूट पैदा करने के लिए द्रविड़ादि

1) Language by W. D. Whitney.

(2 Whitney (American oriental Soc. Proceedings 1867 Oct.)

दाक्षिणात्यों को 'दस्यु' माना जाए, जबकि वेदों में ऐसा भाव कदापि नहीं है। वेदोल्लिखित आर्य-दस्यु संघर्ष को उत्तर भारतीयों की दक्षिणभारतीयों पर विजय के रूप में चित्रित किया गया, जिससे कि दक्षिणभारतीयों का उत्तरभारतीयों से घृणा और द्वेषभाव उत्पन्न हो और ऐसा हुआ भी और आज उत्तर-दक्षिण भारत का भेद भारत की एक बड़ी भारी समस्या बन चुका है, जितनी बड़ी हिन्दू-मुस्लिम समस्या है। यह सब गलत, असत्य और भ्रामक इतिहास लिखने के कारण हुआ और आज तक भी इस भ्रम, त्रुटि या भूल के परिमार्जन का प्रयत्न नहीं हुआ है।

अब वेदों के आधार पर आर्यादिपदों की मीमांसा करेंगे, जिससे कि भ्रमनिवारण होकर सत्य का ज्ञान हो और उत्तर-दक्षिण का भेद समाप्त हो।

योरोपियन जातियाँ विशेषत, जर्मन शासक (यथा हिटलर आदि) अपने को 'मूल आर्य' मानकर अत्यन्त गर्व अनुभव करते थे, परन्तु भारतीयशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार 'जर्मन' घोर म्लेच्छ है। 'म्लेच्छ' शब्द का स्पष्टीकरण भी आगे किया जायेगा।

आर्य-दस्यु सम्बन्धी कुछ वैदिक मन्त्र द्रष्टव्य है—

विद्वान् ! वज्रिन् ! दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र।[१]

अभिदस्यु बकुरेण धमन्तोरुज्योतिश्चक्रथुरार्याय।[२]

मिथ्याभिमानी राथ आदि जर्मन लेखक 'आर्य' शब्द की व्युत्पत्ति, अपने द्वारा कल्पित, कृषि के अर्थ मे प्रयुक्त 'अर्' धातु से बतलाते है और कहते हैं कि 'आर्य' शब्द का मूलार्थ है 'कृषक'। कोई लेखक 'अर' को गत्यर्थ में बताकर घोषित करते हैं कि 'आर्य' यायावर या घुमक्कड़ जाति का नाम था। परन्तु संस्कृतव्याकरण मे 'अर्' धातु का कही पता नहीं है। इसीसे जर्मन-संस्कृतज्ञों के अल्पज्ञत्व, मिथ्यात्व और कल्पनापोढत्व का आभास हो जायेगा। भारतीयसत्यपरम्परा का अनुसरण करते हुए वेदभाष्यकार सायणाचार्य ने 'आर्य' शब्द के निम्न अर्थ किये हैं—विदुषोऽनुष्ठातॄन्[३], विद्वांसः स्तोतारः[४], अरणीयं

---

१ ऋग्वेद (१।१०३),

२. ऋग्वेद (११।११७।२१);

३. वही (१।५१।८);

४. वही (१।१३०।३);

सर्वैर्गन्तव्यम्[1], उत्तमं वर्णं त्रैवर्णिकम्[2], मनवे[3], कर्मयुक्तानि[4], श्रेष्ठानि[5], अर्थात् आर्य हैं—विद्वान्, अनुष्ठाता, स्तोता, विज्ञ, अरणीय या सर्वगन्तव्य[6] ('आर्य' शब्द का एक अर्थ 'ऋजु' यानी सीधासाधा मनुष्य भी समझना चाहिए), कर्मयुक्त श्रेष्ठ (धार्मिक) मनुष्यमात्र ही 'आर्य' पदवाच्य था। ऋग्वेद क्या रामायण, पुराण, महाभारत, धर्मशास्त्र आदि मे कहीं भी 'आर्य' शब्द जाति, वंश या नस्ल का बोधक नहीं है। 'आर्य' के विपरीत ही 'अनार्य' या 'दस्यु' जो वेद के अनुसार अकर्मा, मूर्ख, अन्यव्रत और अमानुष (पशुतुल्यआचरण का) था[7], ऐसे दस्यु का वध करने की ऋषि इन्द्र से प्रार्थना करता है। 'दस्यु' या 'आर्य' शब्द किसी जातिविशेष के बोधक नहीं थे। 'दस्यु' का पर्यायवाची शब्द ही 'अनार्य' था। प्रायः पाश्चात्य लेखक 'अनार्य' शब्द का अर्थ दक्षिणभारतीय द्रविड़ादि या राक्षसादि ग्रहण करते है, परन्तु दक्षिण भारत का शासक प्रसिद्ध रावण, रामायण मे अपने को 'आर्य' और अपने सोदर्य भ्राता विभीषण को 'अनार्य' घोषित करता है।[8] अत: आर्य-अनार्य मे जाति या नस्ल का प्रश्न उत्पन्न कहाँ होता है, जब दो भ्राताओं में परस्पर एक अपने को आर्य और दूसरे को 'अनार्य' मानता था।

---

१ वही (१।२४०।८);

२. वही (३।३४।९);

३. वही (४।२६।२),

४. वही (६।२२।१०);

५. वही (६।३३।१०);

६. तुलना कीजिये—रामायण मे राम का आर्यत्व (सर्वलोकगमनीयत्व)—

सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥

(रामायण १।१।१६)

अतः सायण का 'आर्य' शब्द का अर्थ 'सर्वगन्तव्य' काल्पनिक नहीं, ऋषि वाल्मीकि के वचन से उसकी पुष्टि होती है।

७. अकर्मा दस्युः अभिनो अमन्तु अन्यव्रतो अमानुष. ।
त्वं तस्य अमित्रं हन वधो दासस्य दम्भये ॥ (ऋग्वेद)

८. यथा पुष्करपत्रेषु पतितास्तोयबिन्दवः ।
न श्लेषमभिगच्छन्ति तथानार्येषु सौहृदम् ॥
यथा पूर्वं गजः स्नात्वा गृह्य हस्तेन वै रजः ।
दूषयति आत्मनो देह तथानार्येषु सौहृदम् ॥

(युद्धकाण्ड—१६।११-१४)

श्री रामदास गौड़ ने बिल्कुल ठीक ही लिखा है—"किन्तु वेद के प्रयोग एवं आस्क के अर्थ में 'आर्य' शब्द मनुष्यमात्र के लिए प्रयुक्त दीखता है"··· आर्यावर्त का अर्थ हुआ (श्रेष्ठ) मनुष्यों का आवास और वहीं से मनुष्यजाति चारों ओर फैली।[1]

प्राचीनकाल मे, नाटकों में भारतीय स्त्री अपने पति को 'आर्यपुत्र' कहती थी, इसका भी यही भाव था कि उसका पति सर्वश्रेष्ठ है, यदि 'आर्य' शब्द जातिवाचक होता तो कोई स्त्री ऐसा नहीं कहती। वेद मे आर्य शब्द का अर्थ 'श्रेष्ठ' या 'स्वामी' भी है, वैश्यों को प्राय: श्रेष्ठी (सेठ) और अर्य' कहा जाता था। साधु (साधुकार-साहूकार) शब्द भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता था। अत: 'आर्य' शब्द का मूलार्थ था—साधु या श्रेष्ठ (पुरुष), वही सभ्य, सज्जन था, इसके विपरीत अनार्य, दस्यु, असज्जन शब्द थे और आज इसी भाव को इस प्रकार कहते हैं 'यह आदमी चोर है।' यहाँ 'चोर' शब्द अनार्य या असभ्य का वाचक है।[2]

वैश्यों ने यारोप बसाया

मनुस्मृति मे कहा गया है—

> एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन: ।
> स्व स्व चरित्र शिक्षरेन् सर्वमानवा: ।।

उपर्युक्त वचन, यद्यपि आर्यावर्तनिवासी के आदर्श चरित्र एव सर्वविद्या विशारदत्व की दृष्टि से कहा गया है, परन्तु आर्यावर्त से ही मनुष्यजाति का पृथ्वी के सभी देशो मे प्रसार और उपनिवेशन हुआ। इस विषय का यहाँ केवल सक्षिप्त सर्वेक्षण करेंगे।

उल्टी गंगा बहाई

पाश्चात्य लेखकों ने जानबूझकर या अज्ञानवश 'आर्यजाति' की कल्पना करके उल्टी गंगा बहाई कि यूरोप के किसी देश की मूलभाषा इण्डोयूरोपियम थी और उसको बोलने वाले 'आर्य' उसी योरोपियमूल से प्रस्थान करके ईरान, भारतादिदेशो में जा बसे। परन्तु हम यहाँ एक अत्यन्त विस्मयकारक सत्य का

---

1. हिन्दुत्व (पृ० ७७१)
2. गीता में 'अनार्य' शब्द का यही भाव है—

> कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
> अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥ (गीता २।२)

उद्घाटन कर रहे हैं जो संसार में अभी अज्ञात है कि जिस वामनविष्णु के दश अवतारों की भारतीयप्रजा सर्वाधिक पूजा करती है, उसी कश्यपपुत्र वामन विष्णु आदित्य (अदितिपुत्र) ने, बलिनेतृत्व में, देवों से संघर्षरत दैत्यदानवों को, भारतवर्ष से चातुर्यपूर्वक निकाल दिया और उन्ही दैत्यदानवों ने सम्पूर्ण योरोप और रूस के अनेक देश बसाये। योरोप के देशों के नाम आज भी उन्हीं दैत्यों के नाम पर प्रसिद्ध हैं, इस परम आश्चर्यजनक तथ्य का रसास्वादन अभी अभी पाठक करेंगे।

योरोप और भारत की भाषाओं में साम्य का कारण यही है कि विक्रम से १२००० वि० पू० देव और दैत्य-दानव (असुर) साथ-साथ भारत में रहते थे। वस्तुतः ऋषि कश्यप की सन्तान देवासुरगण मूल में भारतीयप्रजा ही थे। इन्द्रादिदेवों से पूर्व दैत्यदानवअसुरों का सम्पूर्ण पृथ्वी पर साम्राज्य था।

'असुराणां वा इयं पृथिवी आसीत्';

(काठकसहिता) तथा (तै० ब्रा० ३।२।६।६)

वाल्मीकि ने लिखा है—

दितिस्त्वजनयत् पुत्रान् दैत्यास्तात यशस्विनः।
तेषामियं वसुमती पुरासीत् सवनार्णवा॥

(अरण्यकाण्ड ४।१५)

"कश्यपपत्नीदिति ने यशस्वी दैत्यसंज्ञकपुत्रों को उत्पन्न किया. प्राचीनकाल में वन, पर्वत और समुद्रसहित सम्पूर्णपृथ्वी पर असुरों का साम्राज्य था।"

हिरण्यकशिपु दैत्यों का आदिसम्राट् था, इसी के नाम से क्षीरसागर को कशिपुसागर (कैस्पियनसागर) कहते थे, जो आज भी इसी नाम से विख्यात है, निश्चय उस समय सम्पूर्णपृथ्वी पर असुरों का राज्य था, इसीलिए उन्हे 'पूर्व-देव' कहते हैं। ज्येष्ठ अदितिपुत्र 'वरुण' के असुरों से घनिष्ठ सम्बन्ध थे। वरुण, सम्भवतः हिरण्यकशिपु के प्रधान पुरोहित थे, इनको 'असुरमहत्' कहा जाता था और दीर्घकालतक पारसीलोग ईरान में 'अहुरमज्दा' के नाम से वरुण की पूजा करते थे। हिरण्याक्ष ने पृथ्वी को दो भागों मे बांटा।[1] समुद्रीभागों पर वरुण का साम्राज्य था, इसीलिए समुद्र को वरुणालय और वरुण को 'यादसांपति' कहा जाता था। वरुण के वंशज भृगु, कवि, शुक्र, शण्ड और मर्क पा

१. हिरण्याक्षो हतो द्वन्द्वे प्रतिघाते दैवतैः।
दंष्ट्राया तु वराहेण समुद्रस्तु द्विधा कृतः॥ (मत्स्यपुराण ४७।४७)

असुरों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहे। शुक्रादि असुरों के प्रधानपुरोहित थे। पृथ्वी पर देवासुरों के द्वादशमहासंग्राम हुए, जिनका पुराणों में बहुधा उल्लेख है। अन्तिम (द्वादश) देवासुरसंग्राम का विजेता नहुष का अनुज रजि था। इसी युद्ध में वामनविष्णु ने देवों के लिए असुरों से भूमि माँगी—'असुराणां वा इयं पृथिव्यासीत् ते देवा अब्रुवन् दत्त नोऽस्या इति।''[1] उस समय समस्त लोक (पृथ्वी की प्रजायें) असुरों से आक्रान्त थे—

बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमे युगे।
दैत्यैस्त्रैलोक्याक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत्॥ (वायु०)

वामन ने बलि से भूमियाचना की, शुक्राचार्य के विरोध करने पर भी बलि ने भूमिदान देना स्वीकार कर लिया और विक्रम विष्णु ने समस्त भूमि स्वचातुरी से अधिकार कर लिया। बलिनेतृत्व में असुरगण भारतवर्ष छोड़कर आज से १४००० वर्ष पूर्व योरोप की ओर पलायन कर गये, वहाँ उन्होंने अपने नामों से छोटे-छोटे देश उपनिविष्ट किये। शुक्राचार्य के तीन असुरयाजक प्रभावशाली पुत्र थे, शण्ड, मर्क और वरूत्री।[2]

दानवों मे रहने के कारण शण्ड, मर्क आदि भी दानव कहलाते थे, अतः दानवमर्क ने वर्तमान डेनमार्क (दानवमर्क) देश बसाया और षण्डदानव ने स्केन्डेनिविया देश बसाया। कालकेय दैत्य के नाम से केल्ट प्रसिद्ध हुआ, 'दैत्य' शब्द का अपभ्रंश डच (Dutch) हुआ। जर्मन का प्राचीन नाम डीट्शलैंड (दैत्यलैंड) था, दनायु के नाम से 'योरोप की डेन्यूब नदी' प्रसिद्ध हुई, असुर के कारण सीरिया का नाम असीरिया हुआ, मद्र से मीडिया। दानवेन्द्र के नाम से बेलजियम—(बल दैत्य),[3] पणि असुरों ने फिनिशलैंड बसाया, श्वेतदानव ने स्वीडन देश बसाया, श्वेतनाम से ही स्विट्जरलैंड प्रसिद्ध हुआ, निकुम्भ दैत्य से नीमिख (आष्ट्रिया) प्रसिद्ध हुआ। एक गाथ दैत्य था, जिसके नाम से फ्रांस में 'गाथ' जाति प्रथित हुई। 'दैत्य' शब्द का अपभ्रंश टीटन है, जो अंग्रेजों के पूर्वज थे। 'दैत्य' शब्द के अनेक विकार हुए—जैसे डीट्श, डच, टीटन, जियम, डेन इत्यादि। योरोप और अफ्रीका के निम्न देश आज भी दैत्यदानवों के नामों को धारण किये हुए हैं—

---

१. काठकसंहिता (३१।४)
२. शण्डमर्कौ वा असुराणां पुरोहितावास्ताम् (मैत्रायणीसंहिता ।६।३)
३. बेलजियम शब्द का अन्तिम अंश 'जियम' शब्द भी दैत्यशब्द का अपभ्रंश है।

(१) डेनमार्क - दानवमर्क, (२) स्कैन्डेनेविया—षण्डदानव, (३) डेन्यूब—दनायु (नदी),[1] (४) केल्ट—कालकेय, (५) डच - दैत्य—(हालैंड), (६) बेल्जियम—बलिदैत्य, (७) डीटशलैंड (जर्मन)—दैत्यदेश, (८) फिनिश—पणि, (९) स्विज्—श्वेत, (१०) स्वीडन—श्वेतदानव, (११) म्यूनिख—निकुम्भ, (१२) टीटन—दैत्य, (१३) बेरूत—वरूत्री, (१४) लेबनान—प्रह्लाद, (१५) लीबिया—ह्लाद, (१६) त्रिपोली—त्रिपुर, (१७) सुमाली—सोमालीलैंड (अफ्रीका)।

सप्तपातालों में असुरनिवास

प्राचीन भारत मे पृथ्वी के समुद्रतटवर्ती देशो की संज्ञा पाताल या रसातल प्रसिद्ध थी। पयस्+तल का ही रूप पाताल हो गया, इसका स्पष्ट अर्थ है समुद्रतटवर्ती (जलमय) भूमि। रस भी जल को कहते है, अत: रसातल इसका पर्याय हुआ। 'तल' देश समुद्रीय भू-भागों की ही सज्ञा थी। ऐसे सात तल (भू-भाग) पुराणो मे बहुधा उल्लिखित हैं—अतल, सुतल वितल, महातल, श्रीतल (रसातल) और पाताल। ये पातालादि देश पश्चिमी एशिया, अरब देशो, अफ्रीका एवं अमेरिका के समुद्र-तटवर्ती भू-भागो के नाम थे, जहाँ पर भारत से निष्कासित असुर उपनिविष्ट हो गये।

अरबो[2] की एक जाति, उत्तरी मिस्र के तल अमरनि नामक स्थान मे रहती थी यह तेल (Tel) तल शब्द का अपभ्रंश है, तुर्की मे अनातोलिया और इजरायलदेश मे तेल-अबीब मे तेल (Tel) शब्द 'तल' का ही विकार है। 'तल'

---

१ दनु की भगिनी दनायु थी, जिन्होंने वृत्र का पालन किया था—
'त दनुश्च दनायुश्च मातेव च पितेव च परिजगृहतु:
तस्माद् दानव इत्याहु: (श० ब्रा० १।६।२।९)
दनायु के नाम से डेन्यूब नदी प्रसिद्ध हुई।

२. अरबो को ही गन्धर्व कहते थे, ये वरुण की प्रजा थे—"वरुण आदित्यो राजेत्याह तस्य गन्धर्वा विश (श० ब्रा० १३।४।३।७) वरुण की राजधानी सूषा नगरी (ईरानी) पुराणो में उल्लिखित है—सूषा नाम रम्या पुरी वरुणस्यापि श्रीमत: (मत्स्यपु०) पारसी और अरब दोनों में ही वरुण का साम्राज्य था, अरब (गन्धर्व) वरुण को ताज (यादसांपति) कहते थे—'Taz the forth ancestor of Azi Dahak is founder of the race of the Arabs,' वृत्रासुर वरुण की चतुर्थ पीढ़ी में था, उसी का नाम अहिदानव (अजिदाहक) था।

शब्द देश या स्थान का पर्यायवाची था। पंजाबीभाषा में भूमि को आज भी थल्ले या तल्ले कहते हैं जो निश्चय ही तल या स्थल का विकार है। 'तुर्क' भी 'तुरग' शब्द से बना है, जो गन्धर्वों का प्रसिद्ध वाहन था। विभिन्न देशों में घोड़े की विभिन्न संज्ञायें प्रसिद्ध थीं, बृहदारण्यकोल्लिखित इस ऐतिहासिक तथ्य से भी संस्कृत का मूल या आदिमभाषा होना सिद्ध होता है—"हय इति देवान् अर्वा इत्यसुरान्, वाजीति गन्धर्वान्, अश्व इति मनुष्यान्' (बृ० उ० १।१।१), घोड़े के तुरग (तुर्क) आदि और पर्याय अनेक उपजातियों में प्रसिद्ध हुये। संस्कृत के अतिभाषा एक-एक शब्द के शतशः पर्याय थे जिनमें से एक-एक देश या जाति ने एक-एक पर्याय ग्रहण किया। अश्वशब्द को इंग्लैंडवासी दैत्यों (टीटन) - अंग्रेजों ने ग्रहण किया, जिसका आज Horse (हार्स) हो गया। तुर्की ने तुरग और अरबों (गन्धर्वों) ने 'अर्वन्' शब्द ग्रहण किया। इसी प्रकार अंग्रेजी में 'सूर्य' का विकार सन (Sun) और मास (चन्द्रमस्) का विकार मून (Moon) एकमात्र पर्याय मिलते हैं।

पुराणों मे 'गभस्तल' का अधिपति राक्षसेन्द्र सुमाली को बताया है। आज अफ्रीका का विशाल देश सोमालीलैंड, उसी राक्षसेन्द्र के नाम से विख्यात है। रामायण, उत्तरकाण्ड मे विष्णु द्वारा सुमाली की पराजय का वर्णन है, परास्त सुमाली आदि राक्षस लंका से पलायन करके पाताल अर्थात् अफ्रीका के सोमालीलैंड इत्यादि देशों मे बस गये।[1] आज, अफ्रीका के अनेक देशों नदी पर्वतो के नाम संस्कृत के विकार हैं, इससे किसी को विमति नही हो सकती।

यथा - केन्या—कन्या—(कन्याकुमारी) सुदानव—सूडान,
अंगुला—अंग त्रिपोली—त्रिपुर
बेंगुला - बंग माली—माली
नाइल—नील (नदी) सोमाली—सुमाली
ईजिप्ट - मिस्र इत्यादि
त्रिनिदाद्—त्रिदैत्य,

भविष्यपुराण मे उल्लिखित है किसी काश्यप ब्राह्मण ने मिस्रदेशवासी म्लेच्छों को ज्ञान दिया[2] और उनको ब्राह्मण बनाया। अतः अफ्रीका में मिस्रादि देशों मे भारतीयसंस्कृति का पूर्ण प्रचार था।

पण्डित भगवद्दत्त के अनुसार अफ्रीका का 'लीबिया' देश 'प्रह्लाद' शब्द का

---

१. त्यक्त्वा लंकां गता वस्तुं पातालं सहपत्नयः (रा० ७।८।२२)

२. वास कृत्वा ददौ ज्ञानम् मिस्रदेशे मुनिर्गतः
सर्वान् म्लेच्छान् मोहयित्वा कृत्वाथ तान् द्विजन्मनः ॥

अपभ्रंश है।[1] वितल में प्रह्लाद का राज्य था, अतः लीबिया 'वितल' हो सकता है।

'मय एक अत्यन्त प्राचीन दानवपुरुष या जाति थी, पुराणों में मय दानवेन्द्र को शुक्राचार्य का पुत्र कहा गया है। मयजाति की सभ्यता मध्यअमेरिका के देश मैक्सिको आदि देश मे मिली है, पुराणों में इसकी 'तलातल' संज्ञा प्राप्त होती है। मय का पुत्र था बलदानव, इसका राज्य तलातल में था। सूर्यसिद्धान्त में लिखा है कि कृतयुग के अन्त मे मयदानव ने घोर तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर विवस्वान् (सूर्य) ने उसे ग्रहों का चरित्र (ज्योतिषशास्त्र) बताया।[2] मय की भगिनी सरण्यू का विवाह सूर्य (विवस्वान्) से हुआ था। कुछ लोग शाल्मलिद्वीप वर्तमान ईराक को मानते है, जहाँ का शासक शाल्मनसेर था। वर्तमान खोजो के अनुसार मयसभ्यता का केन्द्र मध्य अमेरिका मे मैक्सिको आदि देश थे। मयजाति ज्योतिर्विज्ञान और स्थापत्यकला मे सर्वोत्कृष्ट थी। मय को ही विश्वकर्मा कहते थे। मयदानवों ने विश्व में सर्वश्रेष्ठ नगर और भवन बनाये थे। महाभारतकाल मे युधिष्ठिर की सभा और इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) मय दानव ने बसाई थी। मयजाति भवननिर्माणकला में विश्व मे विख्यात थी। डेनीकेन आदि के मत मे मयजाति किसी दूसरे ग्रह से आकर मैक्सिको में बसी, उनकी भवनकला इतनी उत्कृष्ट है कि डेनीकेन के मत मे पृथ्वीवासी ऐसा भव्य निर्माण नही कर सकते। डेनीकेन की अन्तरिक्षसम्बन्धी कल्पना मे कितना सत्यांश है, यह तो हम नही जानते, परन्तु, सूर्यसिद्धान्त और महाभारतग्रन्थो से मय असुरो के ज्योतिष एव शिल्पसम्बन्धी उत्कृष्टज्ञान की पुष्टि होती है। मयशिल्पियो को पर्वत काटने एवं सुरग बनाने की कला विशेषरूप से ज्ञात थी, जिसकी पुष्टि भारतीयलेखों एवं प्रत्यक्ष मैक्सिको एवं मिस्र के पिरामिड आदि के देखने से होती है।

पणि

रसातल मे पणि एवं निवातकवच नाम के असुर रहते थे—'ततोऽधस्ताद्रसातले दैत्याःदानवाः पणयो नाम निवातकवचाः कालेया हिरण्यपुरवासिनः।"[3] महाभारत से अर्जुन द्वारा हिरण्यपुरवासी निवातकवच दानवों के वध का

---

१. द्रष्टव्य, भारतवर्ष का बृ० इ० भाग १, पृ० २१६;

२. भूमिकक्षा द्वादशेऽब्दे लंकायाः-प्राक् च शाल्मलेः।
मया प्रथमं प्रश्ने सूर्यवाक्यमिदं भवेत्॥ (शाकल्योक्त ब्रह्मसिद्धान्त १।१६८)

३. भागवतपुराण (५।२४।३०);

विस्तृत उल्लेख है। पणियों का रसातलस्थ—हिरण्यपुर समुद्रकुक्षि में बसा हुआ था, और असुरों की संख्या तीन करोड़ थी वहाँ पर पौलोम, कालकेय और कालखंज दानव रहते थे।[1] यह आकाशस्थ पुर था।[2]

यह हिरण्यपुर प्राचीन बैबीलन का इतिहासप्रसिद्ध नूपुर शहर था, जो असुरों का विख्यात नगर था, इसी के निकट उर नगर था, जो असुरसभ्यता का अन्य विख्यात केन्द्र था। इन्द्र के समय में यहां पणिनाम के असुर रहते थे, जिन्होंने इन्द्र की गौ चुराकर किसी गुहा में छिपा दी थी। इन्द्र ने सरमानाम की देवशुनी (गुप्तचरी) गायों की खोज के लिए प्रेषित की थी, इसका आख्यान वैदिकग्रंथों (ऋग्वेदादि) मे है। ऋग्वेद का सरमापणिसंवाद विख्यात है। वेद-मन्त्रों एवं बृहद्देवताग्रन्थ में रसा (नदी) तटवासी पणियों का उल्लेख है,[3] इसी 'रसा' के नाम से वह देश 'रसातल' कहलाया। पारसीधर्मग्रन्थ अवेस्ता में रंहानदी का उल्लेख है, आज पश्चिम एशिया में इसको सीरनदी कहते हैं।

उत्तरकाल में पणिगण योरोप की ओर प्रस्थान कर गये, जहाँ उन्होंने फिनिशिया या फिनलैण्ड बसाया।

म्लेच्छजातियों का उत्तर में निवास

वैदिकग्रंथों एवं इतिहासपुराणों मे बहुधा उल्लिखित है अनेक क्षत्रिय (भारतीय) समय-समय पर अनेक कारणों से उत्तर, पूर्व और पश्चिम की ओर गये और उन्होंने वहाँ देश बसाकर शासन किया। आदिकाल मे सभी मनुष्य 'आर्य' (सज्जन) थे, कालान्तर मे शनैः शनैः मनुष्य में दस्युता या अनार्यत्व की वृद्धि होने लगी। भाषा की अशुद्धि के कारण वे मनुष्य 'म्लेच्छ' कहलाने लगे।

---

१. निवातकवचा नाम दानवा मम शत्रवः।
समुद्रकुक्षिमाश्रित्य दुर्गे प्रतिवसन्त्युत।
तिस्रः कोट्यः समाख्यातास्तुल्यरूपबलप्रभाः ॥(महाभारत ३।१६८।७१-७२)

२. तदेतत् खपुरं दिव्यं चरत्यमरवर्जितम्।
हिरण्यपुरमित्येवं ख्यायते महत् ॥ (वही ३।१७३।१२-१३)

३. असुराः पणयोनाम रसापारनिवासिनः।
गास्तेऽपजह्रुरिन्द्रस्य न्यगूहंश्चप्रयत्नतः।
शतयोजनविस्तारामतरत्ताम् रसां पुनः।
यस्यापारे परे तेषां पुरमासीत्सुदुर्जयम्।
पदानुसारपद्धत्या रथेन हरिवाहनः।
गत्वा जघान स पणीन् गाश्चताः पुनराहरत् ॥ (बृहद्देवता अध्याय ८)

प्राचीनभारतीय ग्रंथों में इस तथ्य का संकेत है कि कौन-सी क्षत्रिय जातियाँ म्लेच्छ हुई, सर्वप्रथम, वैदिकग्रन्थों से प्रमाण उद्धृत करते हैं—(१) स म्लेच्छस्तस्मान्न ब्राह्मणो म्लेच्छेद् । असुर्य्या ह्येषा वाक् ।[१] (२) असुर्या वै सा वाग् अदेवजुष्टा[२] (३) म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्द इति विज्ञायते ।[३] अतः आरम्भ में भाषा के अशुद्धोच्चारण के कारण जातियाँ म्लेच्छ हुई, पुनः कालान्तर में धर्माचरणच्युति के कारण म्लेच्छता मानी गई ।[४] मनु ने क्रियालोप एवं शास्त्रों के प्रदर्शन के कारण निम्न क्षत्रियजातियों को म्लेच्छ और दस्यु कहा है—पौण्ड्र, उड्र, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात दरद और खश ।[५]

पाश्चात्य भ्रामकमतों से प्रभावित होकर अनेक भारतीयलेखकों मे 'म्लेच्छ' और 'असुर' शब्दों में विदेशीमूलत्व खोजने की प्रवृत्ति बन गई। डॉ० काशी प्रसाद जायसवाल के आधार पर श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने लिखा—वास्तव में 'म्लेच्छ' धातु में एक विदेशी शब्द छिपा हुआ है, वह उस 'सामी' शब्द का रूपान्तर है जो हिब्रू (यहूदी) मे 'मेलेख' बोला जाता है। सस्कृत मे उसका 'म्लेच्छ' बन गया।" इसी प्रकार असुर शब्द के विषय मे श्रीजायसवाल का विचार था, "इस प्रकार असुरशब्द शुरू मे स्पष्टत अश्सुर (असीरियावासी) लोगों का और म्लेच्छ अनेक राजाओ का वाचक था ।[६]"

लोकमान्यतिलक के मत मे अथर्ववेद(५।१३) मंत्रो के प्रयुक्त तैमात, आलिगी, विलिगी उरुगूला, ताबुव आदि शब्द काल्डीयन हैं ।[७] कुछ अन्य लेखकों के मत में ऋग्वेद मे 'मना:' आदि शब्द जो भार (परिमाण) के वाचक हैं, काल्डीयन मूल के है। इसी प्रकार डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के मत मे अष्टाध्यायी में

---

१. श० ब्रा० (३।२।१।२४),
२. ऐ० ब्रा० (६।५),
३. भार० गृ० सू०
४. व्युच्छेदात्तस्य धर्मस्य निर्यायोपपद्यते ।
   ततो म्लेच्छा भवन्त्येते निर्घृणा धर्मवर्जिताः ॥ (महा० अनु० १४६।२४)
५. मनुस्मृति (१०।४२-४५) ;
६. भारतीय इतिहास की रूपरेखा (पृ० ५३८, जयचन्द्र विद्यालंकार कृत) तथा Vedic Chronology, Chaldean and Indian Vedas article (P. 125-144)
७. भण्डारकस्मारकग्रंथ में तिलक का लेख चाल्डीयन और भारतीयवेद ।

प्रयुक्त कन्या, अर्भ, आवाल, कार्षापण और पुस्तक आदि शब्द ईरानी मूल के हैं और इसी प्रकार अन्य बहुत से लेखकों ने विपुल ऊँटपटांग कल्पनायें कर रखी हैं कि अमुक शब्द विदेशी है, अमुक भारतीयविद्या का मूल अमुक विदेश है, इत्यादि। यह समस्त विकृतियाँ इतिहास के यथार्थज्ञान के न होने से है। उपर्युक्त तथाकथित इतिहासकारों को उन देशों का इतिहास देखना चाहिए कि वे देश कितने प्राचीन हैं। काल्डिया या चाल्डिया देश भारतीय चोलक्षत्रियों ने उपनिविष्ट किया और बैबीलन या बावल का प्राकृत नाम बबेरु था, जिसका बबेरुजातक मे उल्लेख है, इसका शुद्धरूप था वभ्रु। चोल और वभ्रु दोनों ही क्षत्रजातियाँ विश्वामित्र कौशिक की वंशज थीं। अफ्रीका का एक प्राचीन नाम कुशद्वीप था, अतः कुश या कौशिक प्राचीनभारतीयक्षत्रिय थे, जिन्होने मध्यपूर्व एशिया, अफ्रीका के अनेक देशों में सभ्यताओं का पल्लवन किया। पुराणों में शक[1] नरिष्यन्त की सन्तान और यवन[2] तुर्वसु के वंशज कथित हैं। अतः चोल, बभ्रु, शक, यवनादि के पूर्वज भारतीय थे और सभी शुद्ध संस्कृत बोलते थे। वे बाह्य देशों में बसने के कारण, क्रियालोप व शास्त्रों के अदर्शन के कारण—(संस्कारहीन —असंस्कृत=अशुद्ध) भाषा बोलने लगे।[3] अतः यथार्थ इतिहासज्ञात होने पर संस्कृत ही मूलभाषा सिद्ध होती है।

अतः म्लेच्छजातियों एव म्लेच्छभाषाओं का मूल भारत ही था, इसकी अब यहाँ कुछ विशद विवेचना करते हैं, जिससे भ्रमों का निवारण हो।

मिश्र देश का इतिहास मनु से आरम्भ

प्राचीन मिश्रनिवासी अपने वश का प्रारम्भ वैवस्वतमनु से मानते थे—The priets told Herodotus that there had been 341 generations in both of King and high priests from Menes (मनु) to Sethos and this he calculates at 11340 years[4] इसका अर्थ है कि मनु से सैथोज तक राजाओं और पुरोहितों की ३४१ पीढ़ियाँ थी और ११३४० वर्ष व्यतीत हुए।" भारतीयकालगणना मे मनु का लगभग यही समय है, यह अन्यत्र सिद्ध किया जायेगा। उत्तरकालीन अनेक मिश्रीराजाओं के नाम भी भारतीय थे, तथा, अनु, औशिनर शिवि इत्यादि।[5]

---

१. नरिष्यन्तः शकाः पुत्राः (हरिवंश पु० १।१०।२८)।
२. तुर्वसोर्यवनाः स्मृताः (महाभारत आदिपर्व)
३. द्रष्टव्य, (मनुस्मृति १०।४२-४५)
४. The Ancient history of East by Philips Smith, p. 59.
५. द्रष्टव्य—The Cradle of Indian history by C. R. Kishnamacharlu.

ययाति का कनिष्ठ पुत्र अनु था। इसका कुल आनवकुल कहलाया। इसके वंशजों ने न केवल पश्चिमी भारत[१] में राज्य स्थापित किये, बल्कि योरोप और अफ्रीका के अनेक देशों में राज्य स्थापित किये। यूनान मे डेरोरियन और आयोनियन (यवन=आनव) क्रमशः द्रुह्यु के वंशज थे। द्रुह्यु के वंशज गान्धारों और काम्बोज म्लेच्छो ने अफगानिस्तान और ईरान मे उपनिवेश स्थापित किये। काम्बोज शब्द की व्युत्पत्ति के हेतु महाभारत का निम्न श्लोक द्रष्टव्य है, जिसमें ययाति अपने पुत्र द्रुह्यु को शाप देता है—

> तस्माद् द्रुह्यो प्रियः कामो न ते सम्पत्स्यते क्वचित्।
> अराजा भोजशब्द त्व तत्र प्राप्स्यति सान्वय ॥[२]

'काम+भोज' शब्द मिलकर 'काम्बोज' शब्द बना, वे द्रुह्यु वंशज थे, ये भारत से निष्कासित होकर दक्षिणी ईरान मे बस गये और वहीं इन्होंने राज्य स्थापित किया। तुर्वसु और अनु के ही वंशज ही यवन हुये। मिश्रदेश के इतिहास में हेरोडोटस के लेखो के आधार पर पं० भगवद्दत्त ने एक अद्भुत एवं आश्चर्यजनक खोज की है जो भारतीय इतिहास की विकृति को दूर करती ही है, साथ, प्राचीनभारत का प्राचीन मिश्र से घनिष्ठ सबंध जोडती है—प्राचीन यूनानी इतिहासकार हैरोडोटस ने देवो की तीन श्रेणियो का वर्णन किया है, जिसको पाश्चात्यलेखक नही समझ सके। पण्डित भगवद्दत्त ने इसका रहस्य समझकर लिखा है कि पुराणों मे उल्लिखित दैत्य, देव और दानव ही देवो की तीन श्रेणियाँ थी। दैत्यों को पूर्वदेव कहा जाता था। वे प्रथमश्रेणी के देव थे, द्वितीयश्रेणि में इन्द्रादि द्वादशदेव थे और तृतीयश्रेणी मे विप्रचित्ति, वृत्र आदि दानव थे। इन तीनों मे सर्वाधिक कनिष्ठ क्रमशः विष्णु (हरकुलीज) बाण (पान) और वृत्र (बैक्कस) थे।[3] पं० भगवद्दत्त बैक्कस की पहचान ठीक प्रकार से नही कर पाये। यह बैक्कस विप्रचित्ति[४] न होकर वृत्रत्वाष्ट्र था। पान (pan) की

---

१. कैकय, शिबि, मद्र सौवीर आदि अनु के वंशज थे।

२. महाभारत (१।८४।२२)

३. The Greeks regard Hercules, Bacchus and Pan as the youngest of gods (Herodotus p. 189);

४. "बैक्कस (विप्रचित्ति दानव) से, जो दैत्यों और देवों में सबसे छोटा है, मिस्र के पुरोहित इस (अमेसिस) तक १५००० वर्ष गिनते हैं।" भा० बृ० इ० प्रथम भाग पृ० २१७;

पहचान भी पण्डितजी नहीं कर पाये, यह प्रान बाण (बाणासुर) ही था। यह दैत्यों का अन्तिम महानृशासक था, जो बलि का पुत्र था।

मिस्री पुरोहित हरकुलीस (विष्णु) के जन्म से अमेसिस के राज्य तक १७००० वर्ष व्यतीत हुए मानते थे।[1]

अदिति के द्वादशपुत्र ही प्रसिद्ध द्वादश आदित्य देव थे[2], इनमें आठ मुख्य माने जाते थे।[3]

मिस्री कालगणना वैवस्वत मनु के सम्बन्ध मे पूर्णतः ठीक है, परन्तु वृत्र और विष्णु के सम्बन्ध में कुछ त्रुटिपूर्ण प्रतीत होती हैं। यदि मिस्रीगणना को ठीक माना जाय तो विष्णु का समय वैवस्वत मनु से लगभग ६००० वर्ष पूर्व मानना पड़ेगा, जो प्रायः असम्भव प्रतीत होता है। यह सम्भव है कि हैरोडोटस से पाठ में ही त्रुटि हो।

वरुण और यम का राज्य ईरान-ईराक और योरोप अफ्रीका में

कश्यप और अदिति के ज्येष्ठतम पुत्र थे वरुण आदित्य। ये हिरण्यकशिपु के समकालीन थे। द्वितीय जन्म में भृगु, वसिष्ठ आदि सप्तर्षि इन्ही वरुण के पुत्र थे। हिरण्यकशिपु की पुत्री दिव्या का वरुण के ज्येष्ठ पुत्र कवि भृगु से विवाह हुआ था। वरुण का संक्षिप्त वंशक्रम निम्न तालिका से प्रकट होगा और इससे यह भी ज्ञात होगा कि वरुणवंशजों का घनिष्ठ सम्बन्ध दैत्यदानवों (असुरों) से था वरन् वरुण के वंश में ही प्रसिद्ध दानव हुये—
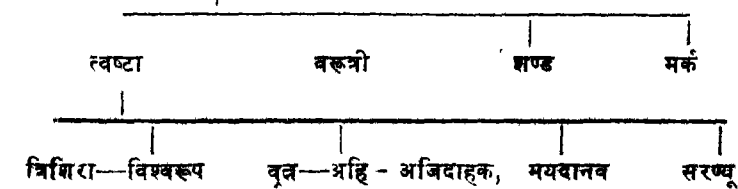
1. Seventeen thousand years (from the birth of Hercules before the reign of Amasis the twelve gods; they (Egyptians) affirm (Herodotus P. 136);
2. द्वादशो विष्णुरुच्यते (महाभारत १।६५।१६);
3. अष्टानां देवमुख्यानाम् इन्द्रादीनां महात्मनाम्। (वायुपुराण ३४-६२)

इनमें सरण्यू विवस्वान् (सूर्य) की पत्नी थी। प्रकट है कि विवस्वान्, वरुण के भ्राता होते हुए भी उनमें न्यून में न्यून चार पीढ़ियों का अन्तर था।

पहिले वर्णन कर चुके हैं कि सप्त पातालों में दैत्यदानवों का राज्य था, तृतीय पाताल वितल में प्रह्लाद, अनुह्लाद तारक और विश्वरूप त्रिशिरा के नगर थे अफ्रीका के त्रिपोली (त्रिपुर) में इसकी स्मृति अभी भी शेष है कि असुरों के प्रसिद्ध त्रिपुर अफ्रीका मे ही थे, लीबिया मे प्रह्लादराज्य था। त्रिपुरों का विस्तृत वर्णन अन्यत्र किया जायेगा। सुमाली दानवेन्द्र द्वारा उपनिविष्ट सोमालीलैंड आज भी इसी नाम से अफ्रीका में प्रसिद्ध है। बेरूत नगर 'वरूत्री' का अपभ्रंश हैं, जहां शुक्रपुत्र वरूत्री का राज्य था। अरबजातियाँ वरुण के वंशज गन्धर्वों के ही अवशेष है, यह पहले ही सूचित कर चुके हैं। अरबदेशों और अफ्रीका मे दानवों और राक्षसो का साम्राज्य था। उत्तरकाल मे अफ्रीका के निकटवर्ती मारीशसद्वीप मे मारीच[1] राक्षस का राज्य था, प्रकट है कि सुमाली, रावणादि राक्षसेन्द्रों का उपनिवेश अफ्रीका था।

ईरान मे, प्रथमतः वरुण का साम्राज्य था, यहाँ आज भी सूषानगरी के अवशेष मिले हैं जो वरुण की राजधानी थी। वरुण को यादसांपति या गन्धर्वपति कहा जाता था।[2] प्रकटतः ईरान पश्चिमी एशिया, अरब देशों और अफ्रीका के समुद्रतटवर्ती देशो में गन्धर्वों (अरबो) ने राज्य स्थापित किये।

वरुण के उपरान्त कुछ शताब्दियो पश्चात् ईरान मे विवस्वान् के कनिष्ठ-पुत्र वैवस्वतयम का राज्य स्थापित हुआ, जो पितृदेश का शासक कहलाया। जिस समय भारतवर्ष मे जलप्लावन आई, (वैवस्वतमनु के समय मे), ईरान मे हिमप्रलय (हिमयुग) आई थी। भारतीयग्रन्थों में यम का पर्याप्त वृतान्त सुरक्षित है, परन्तु यहाँ हम केवल पारसी धर्मग्रन्थ अवेस्ता के उदाहरण प्रस्तुत करेंगे, जिसमे स्वयं सिद्ध होगा कि वैवस्वत यम ईरान का सम्राट् था—"And Ahura Majda Spake unto Yima, Saying 'O fair Yima Son of Vivanghat ; upon the material world the fatal waters are going

---

१. 'मारीच' शब्द का विकृतरूप 'मारीशस' है।

२. याद का अपभ्रंश 'ताज' शब्द है, यह वरुण का ही नाम था, इसको अरब अपना मूलप्रवर्तक मानते थे—Taz, the fourth ancestor of Azi Dahak is founder of the race of the Arabs !
(तिरुपति आल इण्डिया आरि० कान्फ्रें०, पृ० १४५ मद्रास)

to fall·········that shall make Snow flakes fall thick, (Vendidad Fargard II, 22 by Darmesterer),

"T, was Vivohvant, first of Mortals
to him was a son begotten
Yim of fair flock, all shining

° ° ° ° °

while he reigned............ !
Son of Vivohvant, great Yima"[१]

उपर्युक्त उद्धरणो को प्रदर्शित करने का उद्देश्य केवल यह है कि विवस्वान् और तत्पुत्र वैवस्वत यम का ईरान पर शासन था।

ईरानीधर्मग्रन्थों और परम्परा के अनुसार अहुरमज्दा (वरुण) की चौथी पीढ़ी मे अजिदाहक (वृत्र—अहिदानव) हुआ।[२] यम को अहिदानव (वृत्र—अजिदाहक) का पूर्वकालीन माना जाता था।[3] पारसीधर्मग्रन्थ मे वृत्र के ज्येष्ठ भ्राता विश्वरूप (त्रिशीर्षा षडक्ष) का नाम 'विवरस्प' था। पारसी वर्णन द्रष्टव्य है—

He the Serpent Slew Dahaka
Triple zawed and Triple headed
Six eyed, thousand powered in Mischief.[४]

भारतीय इन्द्र, यम का शिष्य था, इसी इन्द्र ने वृत्र और उसके ज्येष्ठ भ्राता विश्वरूप को मारा था। वृत्र (अहिदानव—अजिदाहक) को मारने पर उसको 'महेन्द्र' पदवी मिली।

ईरानीग्रन्थों में वरुण, भृगु शुक्राचार्य और उनके शण्ड, मर्क तथा दानवेन्द्र वृषपर्वा का उल्लेख भी मिलता है, वहाँ इनका नाम मह्रक (मर्क) और षण्ड नाम मिलते हैं, उसा (उशना—शुक्र), अफरासियाब (वृषपर्वा), फर्ना (वरुण), बग

---

१. अवेस्ता, यस्न गाथा।

२. Azi Dahak is the fourth descendant of Taz (All India-oriental Conf. Madras 1941, p. 145)

३. Yim......Azi Dahaka's predecessor. (वही, पृ० १४५)

४. त्वष्टुर्ह वै पुत्रः त्रिशीर्षा षडक्ष आस। तस्य त्रीण्येव मुखानि (श० ब्रा० १।६।३।१ तुलना करो)

(भृगु) इत्यादि। देवयुग में ही ईरान होते हुये ये असुरगण एवं उनके पुरोहित योरोपियन देश डेनमार्क (दानवमर्क), स्वीडन (श्वेत दानव) आदि में पहुंचे, कुछ उत्तरी अफ्रीका तथा बेरूत (वरूत्री) लीबिया, लेबनानादि में बस गये।

उपर्युक्त विवरण से पूर्णतः सिद्ध है कि असुरों (दैत्योंदानवों का) मूल और उनकी भाषाओं (यूरोपियन—असुरभाषा) का मूल भारत ही था। पुराणों से इस तथ्य की सर्वांशतः पुष्टि होती है. स्वयं अवेस्ता मे वर्णित त्वष्टा के वंशजों की आर्यव्रज (आर्यावर्त—Airyana Vaejo—आर्यनवेजो) से पलायन की पुष्टि होती है कि ईरानी किस प्रकार देवों के भय से १६ देशों में मारे-मारे घूमते रहे। सर्वप्रथम उनका (ईरानियों) निवास आर्यव्रज (आर्यावर्त—आर्यवीजो) मे ही था।[1] यही से उन्होंने १६ देशों[2] में क्रमशः प्रस्थान किया।

अतः प्राचीन ईरानियों का भारतमूलत्व स्वयंसिद्ध है।

ईराक (मेसोपोटेमिया) के बोगोजई नामक स्थान मे प्राप्त मृत्तिकापट्टिका पर राजा मत्तिवज (मित्रवह ?) वैदिक देवगण- मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्य का आह्वान करता है। इस अन्वेषण से पाश्चात्यों ने जो परिणाम निकाले हैं, वे सर्वथा भ्रामक हैं, उनका निकाला गया समय (१४०० ई० पू०) भी संदिग्ध है, क्योंकि इन्द्रादि की पूजा भारतवर्ष मे ही महाभारतकाल मे पूर्व प्रायः समाप्त हो गई, महाभारत का समय ३१०२ वि० पू० था। अतः ये मुद्रायें न्यून से न्यून महाभारतयुग से पूर्व की होनी चाहिए।

मितन्नी को हित्ती—खित्ती कहते थे, जो 'क्षत्रिय' का विकार है। मितन्नी का एक राजा 'दस्रत' था, जो स्पष्टतः संस्कृत के 'दशरथ' का अपभ्रंश है।

मैसोपोटामिया (ईराक) की प्राचीनतम सभ्यता सुमेरसभ्यता थी, जो इतनी उच्चकोटि की थी कि कुछ वैज्ञानिक इसका सम्बन्ध किसी दूसरे ग्रह के

---

१. I, Ahura Mazda Created as the first best region, AiryanaVeajo of the good Greation. Then Angra Mainyu, the destroyer, formed in opposition to yet a great Serpent and water Or Snow; the Greation of Daevas : (Vendidad 3, 4).

२. सोलह देश—आर्यनवीजी, सुग्ध, मौरू, बाखी, नैश हरोयु वैकरत, अर्व, वेह्रकन, हरहवैति, हैतुमन्त, रघ, चख, वरन और हप्तहिन्दु।

अन्तरिक्षवेत्ताओं से जोड़ते हैं—"स्वयं प्राचीन सुमेरका इतिहास यह कहता है कि प्राचीन सुमेरवासी लोग (जो अन्य संस्कृतियों के पूर्वज थे) ऐसे लोगों के वंशज हैं, जो मानव नहीं थे तथा अन्य ग्रहों से पृथ्वी पर आये।" (धर्मयुग, दि० १४-१०-१९८० में 'इन्टेलिजेन्ट लाइफ इन यूनिवर्स' पुस्तक से उद्धृत)। इस तथाकथित प्राचीनतमसभ्यता के अनेक राजा संस्कृत नाम धारण करते थे—

शरगर (Shargar)	—सगर
मन (Man)	—मनु
इस्साकु (Issaku)	—इक्ष्वाकु
शरहगन (Sharagun)	—सहस्रार्जुन

इसी प्रकार दशरथादि नाम भी सुमेर मे प्रसिद्ध थे।

अतः भारत सुमेरियन सभ्यता का भी मूल था और प्रकट है कि उनकी भाषा भी संस्कृत का ही म्लेच्छ (विकार) रूप थी।

'अक्काद' नाम भी 'इक्ष्वाकु का ही विकार प्रतीत होता है।

संसार की आदिम मूलजातियाँ—पंचजन या दशजन

वैदिकग्रन्थों मे बहुधा पंचजन (असुर, गन्धर्व, देव, मनुष्य और नाग) जातियों का उल्लेख मिलता है।[1] ये विश्व की प्राचीनतम आदिम जातियाँ थीं। परन्तु शतपथब्राह्मण, पारिप्लवोपाख्यान (काण्ड १३, अध्याय ४, ब्राह्मण ३) में आदिम दश जातियों का उल्लेख मिलता है—इसका विवरण इस प्रकार है—

(१) मानव—प्रथम राजा		वैवस्वत मनु—धर्मशास्त्र—ऋग्वेद		
(२) पितर—	,,	वैवस्वत यम	,,	यजुर्वेद
(३) गन्धर्व—	,,	वरुण	,,	अथर्ववेद
(४) अप्सरा—	,,	सोम	,,	आंगिरसवेद
(५) नाग (किरात)	,,	अर्बुदकाद्रवेय	,,	सर्पविद्या(वेद)

१. ऐ० ब्रा० (१३।७), निरुक्त (३।२), इत्यादि।
मनुष्याः पितरो देवा गन्धर्वोरगराक्षसाः।
गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा यक्षराक्षसाः॥
यास्कोपमन्यवावेतान् आहतुः पंच वै जनान्॥ (बृहद्देवता)
असुरों से पूर्व भी कोई पंचजन थे—'ये देवा असुरेभ्यः पूर्वे पंचजना आसन्'; (जै० उप० ब्रा० १।४१।७)।

(६) यक्षराक्षस—प्रथम राजा	वैश्रवणकुबेर—	धर्मशास्त्र—	देवजनविद्या
(७) असुर (दैत्यदानव),,	असितधान्व	,,	मायावेद
(८) मत्स्यजीवी (निषाद),,	मत्स्यसाम्मद	,,	इतिहासवेद
(९) सुपर्ण—कृष्णवर्ण-निधो	तार्क्ष्य वैपश्यत	,,	पुराण
(१०) देव — ,,	इन्द्र	,,	सामवेद

मिथ्याकालविभाग (युगविभाग)

जिस प्रकार तथाकथित विकासवाद के आधार पर प्रागैतिहासिकयुगों—यथा प्रस्तरयुग, नवपाषाणकाल धातुयुग, लौहयुग, कृषियुग, पशुचारणकाल जैसे सर्वथा मिथ्यायुगो की कल्पना इतिहास मे की गई, उसी प्रकार मिथ्याभाषा-मतों के आधार पर, पाश्चात्यलेखकों ने भारतीय इतिहास मे वैदिककाल, उत्तर-वैदिककाल, उपनिषद्युग, महाकाव्यकाल, पुराणकाल जैसे सर्वथा मिथ्यायुगों की कल्पना की और आज भी यही युगविभाग इतिहास मे प्रायेण प्रचलित है। सम्भवत: आजतक किसी भी देश के राजनीतिक इतिहास का युग-विभाजन साहित्यिकग्रन्थो के आधार नही किया गया, बल्कि अन्यदेशो का साहित्यिक इतिहास भी राजनीतिकपुरुषो के आधार पर विभक्त किया गया है जैसे अंग्रेजी-साहित्य मे विक्टोरियायुग, पूर्वविक्टोरियायुग आदि नामकरण किये गये हैं, परन्तु अंग्रेजो ने भारतवर्ष को, इस सम्बन्ध मे अपवाद बनाया और वह भी सर्वथा मिथ्या। उपर्युक्त युगविभाग का मिथ्यात्व ही आगे प्रदर्शित किया जाएगा।

पूर्वयुगो (द्वापर, त्रेता, कृतयुग, देवयुग, पितृयुग और प्रजापतियुग) मे शिक्षित व्यक्ति (विद्वान्=ब्राह्मण = द्विज) अतिभाषा देववाक् के दोनों रूपो वेदवाक् और मानुषीवाक् (संस्कृत) को बोलता था—

"तस्माद् ब्राह्मण उभे वाचौ वदति दैवी मानुषी च।"[1] "तस्माद् ब्राह्मण उभयी वाचं वदति या च देवानां या च मनुष्याणाम्।"[2] अत: वैदिक और लौकिक संस्कृत का लोक मे प्रयोग अतिपुरातनकाल से हो रहा था, अत: लौकिकसंस्कृतभाषा या साहित्य को उत्तरकालीन मानना महती भ्रान्ति है। यास्क ने बताया है कि मनुष्यों और देवों की भाषा तुल्य है।[3]

---

१. काठकसंहिता (१४।५)

२. निरुक्त (१३।८)

३ तेषां मनुष्यवद् देवताभिधानम् (निरुक्त)

लौकिकसंस्कृत या लोकभाषा की मूलशब्दराशि वही थी, जो अतिभाषा या वेदवाक् में थी, अन्तर केवल यह था कि लौकिकवाक् संकुचित थी तथा इसकी शब्दानुपूर्वी (वाक्यविन्यास) में अन्तर था। इस तथ्य का उल्लेख भरतमुनि ने इस प्रकार किया है—

अतिभाषा तु देवानामार्यभाषा भूभुजाम् ।
संस्कारपाठ्यसंयुक्ता सप्तद्वीपप्रतिष्ठिता ॥[1]

इसी तथ्य का कथन पतञ्जलिमुनि ने 'सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाश्चत्वारो वेदा' इत्यादि रूप मे किया है।[2]

लोकभाषा या मानुषीवाक् या लौकिकसंस्कृत व्याकरणसम्मत या संस्कारयुक्त होने से ही संस्कृत कही जाती थी, इसी आधार पर यास्क ने इसे व्यावहारिकी (बोलचाल) भाषा कहा।[3] वाल्मीकि ने इसे मानुषीसंस्कृतावाक् कहा है।[4] क्योंकि इसका लोक मे व्यवहार होता था इसीलिए पतञ्जलि ने बारम्बार, संस्कृत' के लिए 'व्यवहारकाल' का उल्लेख किया है।[5]

अत लोकभाषा सस्कृत का व्यवहार या प्रयोग, प्रजापति स्वयम्भू, स्वायम्भुव मनु, कश्यप, इन्द्रादि से यास्क, आपस्तम्बादि एवं कालिदासपर्यन्त किवा अद्यपर्यन्त भी होता है। इसके विपरीत, वैदिकभाषा का प्रयोग केवल वेदमन्त्र, तद्व्याख्यान (ब्राह्मग्रंथादि) एव कल्पसूत्रादि अन्य वैदिकग्रन्थो मे होता था। लौकिकसस्कृत का प्रयोग इतिहासपुराण, काव्य, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, अर्थशास्त्र आदि लौकिकशास्त्र प्रणयन में होता था। जिस प्रकार लौकिकशास्त्रों में वैदिकशास्त्रों का प्रामाण्य था, उसी प्रकार वैदिकशास्त्रों मे लौकिकशास्त्रों, यथा, इतिहासपुराणादि का प्रामाण्य मान्य था। इस तथ्य का उल्लेख किसी अर्वाचीन विद्वान् ने नहीं, परन्तु परमप्रामाणिक न्यायविद् न्यायभाष्यकार वात्स्यायन ने किया है कि वेद में पुराणों या धर्मशास्त्र का प्रामाण्य मान्य था—

(१) "प्रामाण्येन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रमाण्यमभ्यनुज्ञायते। ते

---

१. नाट्यशास्त्र (१७।१८।२६),
२. महाभाष्य पस्पशाह्निक,
३. चतुर्थी व्यवहारिकी (निरुक्त १३।६)
४. वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम् (वा० रा० ३।३०।१७)
५. "चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति व्यवहारकालेन इति"

वा खल्वेते अथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यवदन् ।।" "(न्यायभाष्य) वास्तव में ब्राह्मणग्रन्थों में इतिहासपुराण का प्रमाण मान्य है, क्योंकि अथर्वांगिरस ऋषियों ने इतिहासपुराणों का प्रवचन किया था।" क्योंकि वेदमन्त्रों के द्रष्टा और ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रणेता ऋषि वे ही थे, जिन्होंने इतिहासपुराणों एवं धर्मशास्त्र का प्रणयन था—"द्रष्टृप्रवक्तृसामान्याच्चानुपपत्तिः। य एवं मन्त्र ब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति (न्यायभाष्य)।

केवल विषयव्यवस्थापन के कारण भाषा मे अन्तर था, लेखक या काल के कारण नहीं।

जब इतिहासपुराणग्रन्थ, वैदिकब्राह्मणग्रन्थों से पूर्व रचे जा चुके थे, तब पुराणरचनाकाल या महाकाव्यकाल ब्राह्मणरचनाकाल से उत्तरकालीन कैसे हो सकता है। यह केवल वात्स्यायन की कल्पनामात्र नही है। शतपथब्राह्मणादि में पुराणों की गाथायें उद्धृत मिलती हैं जो लौकिकभाषा मे हैं, यथा, द्रष्टव्य हैं कुछ गाथायें जो ब्राह्मणग्रंथों मे किन्ही प्राचीन इतिहासपुराणो से उद्धृत की, यद्यपि वे उपलब्ध भागवतादिपुराणो मे भी प्राप्य है—यथा शतपथब्राह्मण की यह गाथायें—

मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे।
आविक्षितस्यः क्षत्तारो विश्वेदेवा. सभासदः ।।[1]
भरतस्य महत्कर्म न पूर्वे नापरे जनाः। (श. ब्रा. १३।५।४।११)
नैवापुर्नैव प्राप्स्यन्ति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा।[2] (श. ब्रा. १३।५।४।११)

इसी प्रकार और भी बहुत से गाथाश्लोक ब्राह्मणग्रन्थों मे मिलते हैं जो पुराणों से उद्धृत हैं। महाभारत मे इन्द्र, उशना, वायु, ययाति, कश्यप, अम्बरीष आदि की शतशः गाथाये मिलती है, ये कश्यप, उशना आदि वेद-मन्त्रों के प्रसिद्ध द्रष्टा थे। अतः वेदकाल और पुराणकाल, महाकाव्यकालआदि युगविभाग सर्वथा भ्रामक और इतिहासविरुद्ध हैं। यह युगविभाग आज भारतीय इतिहास की एक महत्तमा विकृति है, जिसका परिमार्जन अवश्यम्भावी है जिसके बिना सत्य इतिहास का ज्ञान नही हो सकता।

इसी प्रकार प्राचीन अनेक अर्थश स्त्र, धर्मशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, व्याकरण-शास्त्र इत्यादि भी वेदमन्त्रों के साथ-साथ ही लौकिकभाषा में रचे गये, इसका

---

१. भागवतपु० (६।२।२८),
२. भागवतपु० (६।२०।२६)

उल्लेख यथास्थान किया जायेगा, क्योंकि अधिक उदाहरण देकर हम इस भूमिका का कलेवर नहीं बढ़ाना चाहते । केवल, उपनिषदों के प्रमाण से उपर्युक्त काल-विभाग का मिथ्यात्व प्रदर्शित होगा—

ब्रह्मविद्या की परम्परा और आदिम उपनिषद्वेत्ता ऋषिगण

शतपथब्राह्मण, बृहदारण्यकोपनिषद् जैमिनीयोपनिषद्, सामविधानब्राह्मण एवं तैत्तिरीयोपनिषद् आदि में ब्रह्मविद्या, मधुविद्या आदि के आचार्यों की प्राचीन वंशपरम्परा (विद्यावंश) मिलती है, जिससे पाश्चात्यलेखकों की इस मिथ्या धारणा का खण्डन होता है कि वेदमन्त्रों मे उपनिषद्ज्ञान नही है अथवा उपनिषद्सिद्धान्त अर्वाचीन है ।

वरुण

ब्राह्मणग्रन्थों के अध्ययन से सिद्ध होता है कि वरुण आदित्य का एक नाम ब्रह्मा था, इसी वरुण ब्रह्मा ने आदिमयुग में वैवस्वत मनु के पिता विवस्वान् से पूर्व अपने ज्येष्ठ पुत्र भृगु या अथर्वा को ब्रह्मविद्या पढ़ाई—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ।।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ।।[1]

अन्यत्र लिखा है—"भृगुर्वै वारुणिः । वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति ।[2] इन प्रमाणो से सिद्ध है वरुण और उनके पुत्र भृगु (अथर्वा) उपनिषद्ज्ञान के आदिम आचार्यों मे से थे ।

कश्यप और इन्द्र

वरुण, इन्द्र आदि के जनक पितामह प्रजापति कश्यप थे । देवेन्द्र इन्द्र और कश्यपपौत्र असुरेन्द्र विरोचन दोनों ने ही ब्रह्मविद्या प्रजापति कश्यप से सीखी—"इन्द्रो देवानाम् प्रवव्राज । विरोचनोऽसुराणां तौ ह द्वात्रिंशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यमुषतुः ।[3]

कश्यप से भी प्राचीनतर सनत्कुमार, कश्यपपुत्र देवर्षि नारद के गुरु थे । ब्रह्मविद्या सीखने नारद उनके पास गये—"ॐ अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्तं होवाच ।"[4] 'उपससाद' क्रियापद से स्पष्ट है कृतयुग से

---

१. मु० उ० (१।१।१),
२. तै० उ० (३।१),
३. छा० उ० (८।७),
४. छा० उ० (७।१।१),

पूर्व भी (१४००० वि० पू०), नारद और सनत्कुमार के समय 'उपनिषद्' शब्द प्रचलित था।

दर्शन की आदित्य (विवस्वान) परम्परा

शतपथब्राह्मण (४।६।४।३३) मे विवस्वान् आदित्य की प्रमुखशिष्य परम्परा उल्लिखित है। विवस्वान् पंचम व्यास थे, जिन्होंने जलप्लावन से पूर्व शुक्ल-यजुर्वेद एवं उपनिषद् का प्रवचन किया था। इसी परम्परा का उल्लेख वासुदेव कृष्ण ने गीता मे किया है।[1]

दध्यङ्. आथर्वण और मधुविद्या

बृहदारण्यकोपनिषद् (अध्याय २ ब्राह्मण ६) मे मधुविद्यादर्शन की एक शिष्य परम्परा इस प्रकार है—(१) स्वयम्भू, (२) परमेष्ठी, (३) सनग, (४) सनातन, (५) सनारु, (६) व्यष्टि, (७) विप्रचित्ति, (८) एकर्षि, (९) प्रध्वंसन, (१०) मृत्यु प्राध्वसन, (११) अथर्वा दैव, (१२) दध्यङ् आथर्वण। ऋग्वेद मे भी मधुविद्या के प्रवक्ता दध्यङ् आथर्वण है—

दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्रदीयमुवाच।

अश्विनीकुमारद्वय दध्यङ् आथर्वण के शिष्य थे।

स्वयं उपनिषद्ग्रन्थों के प्रमाणों से सिद्ध है कि उपनिषद्विद्या देवासुरयुग में भी प्रचलित थी, अत पूर्ववैदिकयुग या उत्तरवैदिक इत्यादि जैसा युगविभाग सर्वथा भ्रामक, असत्य एवं त्याज्य है। वाल्मीकिऋषि ने रामायण की मूल-रचना शतपथ ब्राह्मण (वाजसनेय याज्ञवल्क्य) से २००० वर्ष पूर्व की थी, अतः साहित्यिकग्रन्थों के आधार पर कल्पित भारतीय इतिहास का युगविभाग, इसकी विकृति का एक मूल कारण है। अतः काल्पनिक और मिथ्यायुगविभाग सर्वथा हेय एव त्याज्य है।

भारतीय इतिहास का तिथिक्रम मनघड़न्त

पाश्चात्य लेखक गौतम बुद्ध और बिम्बसार से पूर्व के पुरुषो को ऐतिहासिक मानते ही नही, फिर भी उन्होने वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, पुराण एवं अन्य ग्रन्थो एव आर्य-आगमन, द्रविड-आगमन इत्यादि मनघडन्त काल्पनिक घटनाओ की जो तिथियाँ घड़ दी थी, वे ही प्राय. आज तक तथा-

---

१. इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥ (गीता ४।१)

२. ऋग्वेद (१।११६।१२),

कथित भारतीय इतिहास में प्रचलित हैं। क्योंकि बुद्ध से पूर्व के भारतीय इतिहास को वे इतिहास ही नहीं मानते, उसे प्रागैतिहासिकयुग कहते हैं तथा उन काल्पनिकतिथियों के विषय में भी सर्वसम्मत नहीं हैं यथा काल्पनिक आर्य-आगमन की तिथि १००० ई० पूर्व, १२०० ई० पू०, १५०० ई० पू०, २००० ई० पू०, २५०० ई० पू० और ३००० ई०पू० तक विभिन्न रूपमें तथाकथित इतिहासज्ञ मानते थे और अभी पाठ्यपुस्तकों मे ये तिथियाँ प्रायः दुहराई जाती हैं। इसी प्रकार, यद्यपि रामायण एवं महाभारत को पाश्चात्यलेखक ऐतिहासिक नहीं मानते, फिरभी इन ग्रन्थों के रचनाकाल मे भी उक्त प्रकार के मतभेद हैं, कही जानबूझकर कही अज्ञानवश।

जिस एक आधारतिथि के ऊपर, पाश्चात्यलेखकों ने भारतीय तिथिक्रम का सम्पूर्ण ढाँचा बनाया है, वह है चन्द्रगुप्त मौर्य और यूनानी शासक सिकन्दर की तथाकथित समकालीनता की कहानी। यह तिथि है ३२७ ई० पू०। इस समकालीनता पर आज लोगो को उसी प्रकार विश्वास है जितना विकासवाद पर, बल्कि उससे भी अधिक। इस तिथि के विरुद्ध कुछ लिखना तो दूर, मन में सोचने का भी कोई साहस नही करता। इस समकालीनता की कहानी पर आज लोगो को अटूट और अचल श्रद्धाविश्वास है। इस कहानी पर इस प्रकरण मे विस्तार से विचार नही करेंगे, इसका विस्तृत विवेचन 'तिथिसम्बन्धी' अग्रिम अध्याय मे होगा, परन्तु यह संकेत करना आवश्यक है कि इसी 'चन्द्रगुप्तमौर्य-सिकन्दर' की समकालीनता की मनघड़न्त कहानी के आधार पर ही प्राङ्मौर्य एवं मौर्योत्तरकाल की तिथियाँ गढ़ी गई हैं। चन्द्रगुप्तमौर्य से पूर्व के नन्द, शैशुनाग आदिवंशो महावीर, गौतम बुद्ध जैसे प्रख्यात इतिहासपुरुषो की तिथियाँ इसी 'आधारतिथि' के आधार पर निश्चित की गईं। इसी प्रकार मौर्योत्तरयुग मे शुंग, काण्व, आन्ध्रसातवाहन, शक, कुषाण, हूण, वाकाटक, गुप्तवंश के शासको की तिथियाँ भी इसी 'आधारतिथि' के अनुरूप ही घढ़ी गई। इन सब काल्पनिक और तदनन्तर वास्तविक तिथियो का उल्लेख एव निश्चय 'तिथि सम्बन्धी' अध्याय मे ही करेंगे, परन्तु एक तथ्य ध्यातव्य है कि पाश्चात्य इतिहासकार ईलियट और डासन ने अंग्रेजी में आठ भागों में, प्राचीन इतिहासकारों विशेषतः मुस्लिम इतिहासकारों के आधार पर 'इण्डियाज हिस्ट्री ऐज रिटन बाई इट्स ओन हिस्टोरियन' के प्रथम भाग, पृ० १०८, ०९ पर लिखा है कि सिकन्दर का समकालीन भारतीय राजा आन्ध्र सातवाहन 'हाल' था। इसी तथ्य से सोचा जा सकता है कि सिकन्दर का भारत पर आक्रमण किस भारतीय राजा के समय हुआ। इस सबका विस्तृत विवेचन 'तिथिसम्बन्धी' अध्याय में ही करेंगे।

भारतीय इतिहास मे महावीर, बुद्ध, कनिष्क, गुप्तराजगण और यहाँ तक कि शंकराचार्य तक की तिथियाँ विवादग्रस्त बना दी गई हैं और विक्रम शूद्रक जैसे महाप्रतापी शासकों का इतिहास में कोई उल्लेख ही नहीं, तब कल्किसदृश एवं कृष्णतुल्य महापुरुषों का वर्णन होगा ही कहाँ से ? इस ग्रन्थ में ऐसे सभी महापुरुषों की 'ऐतिहासिकता' यथास्थान प्रमाणित की जायेंगी ।[1]

भारत में शकराज्य का अन्तकरनेवाला प्रसिद्ध गुप्तसम्राट् साहसांक चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य था, जिसकी पुष्टि अलबेरूनी, भारतीय ज्योतिषी और बाणभट्ट जैसे साहित्यकार करते हैं। अतः गुप्तराजाओं का उदय १३५ वि० से पूर्व विक्रमादित्य के ठीक पश्चात् प्रथमशती मे हुआ था। शकसम्वत् का प्रवर्तक चन्द्रगुप्त द्वितीय ही था। इन तिथियों का प्रामाणिक निर्णय आगे किया जायेगा।

तथाकथित या आरोपित ग्रन्थकार (Attribution)

पाश्चात्यलेखकों एवं तदनुयायी अनेक भारतीयलेखकों ने भारतीय इतिहास में अनेक इतिहास प्रसिद्ध, प्रतापी, वर्चस्वी और महाज्ञानीपुरुषों का अस्तित्व मिटाने के लिये एक घोरभ्रामक प्रवृत्ति को जन्म दिया कि अनेक प्राचीनग्रन्थों के प्रसिद्ध कर्त्ता वास्तव मे हुये ही नही, उनके नाम से दूसरे उत्तरकालीन अज्ञात-नामा लेखको ने अनेक ग्रन्थ रचे। वैसे शतशः एवं सहस्रशः ग्रन्थों के विषय मे, पाश्चात्यों ने ऐसी भ्रामक कल्पनायें की हैं, परन्तु निदर्शनार्थ यहाँ पर केवल प्रसिद्धतम कुछ ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों की संक्षिप्त चर्चा करेंगे—

(१) शुक्राचार्य
(२) इन्द्र
(३) मनु
(४) भरत
(५) पराशर
(६) पाराशर व्यास
(७) चरक अग्निवेश
(८) याज्ञवल्क्य वाजसनेय
(९) जैमिनि
(१०) शौनक
(११) कात्यायन
(१२) कौटल्य

उपर्युक्त ग्रन्थकारों के सम्बन्ध में पाश्चात्यों ने यह धारणा बनाई है कि

---

१. अरबों मुस्लिमों के सर्वोच्च तीर्थस्थल मक्का के 'काबा मन्दिर' में उत्कीर्ण प्राचीन कवि बिन्तोई (१६५ वर्ष पैगम्बर मौहम्मद से पूर्व) ने अपनी कविता में विक्रमादित्य का उल्लेख किया है—"जिसका अरबदेशों तक शासन था"। द्रष्टव्य—"भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें"। (पृ० २७७)

शुक्रकृत, शुक्रनीति, इन्द्रकृत ऐन्द्रव्याकरण, मनुकृत मनुस्मृति भरतकृत नाट्यशास्त्र, पराशरकृत विष्णुपुराण और ज्योतिषसंहिता, पाराशर्यव्यासकृत ब्रह्मसूत्रादिग्रंथ, चरक (अग्निवेश) कृत चरकसंहिता जैमिनिकृत मीमांसासूत्र, शौनककृत बृहद्देवता आदि ग्रन्थ, कात्यायनकृत स्मृति आदि ग्रन्थ, याज्ञवल्क्यकृत योगियाज्ञवल्क्य, कौटल्यकृत अर्थशास्त्र इत्यादि ग्रन्थ वास्तव में इन ग्रन्थकारों की कृतियां नहीं है, उत्तरकाल या अत्यन्त अर्वाचीनकाल मे इनके नाम से उपर्युक्त ग्रन्थ बनाये गये। फिर हिरण्यगर्भ, स्वायम्भुव मनु, सप्तर्षि, नारद, कपिल आदि के प्रणीतग्रन्थो पर तो पाश्चात्यो का विश्वास होगा ही कहाँ से, जो ऋषिगण जलप्लावन से पूर्व हुये थे।

यह पूर्णत: सम्भव है कि अनेक प्राचीनग्रन्थो, संहितादि मे समय-समय पर उपबृंहण (विस्तार), प्रक्षेपण (क्षेपक) एवं संशोधन हुआ हो, जैसा कि प्रसिद्ध महाभारत या चरकसंहिता का हुआ है। परन्तु मूललेखक मनु, भरत, शुक्र, चरक या व्यास हुये ही नही, ऐसा मानना महान् अज्ञान है। आज यह कोई भी दावा नही करता कि मनुस्मृति, शुक्रनीति, भरतनाट्यशास्त्र या चरकसंहिता अपने मूलरूप मे ही उपलब्ध है, परन्तु जो यह माने कि कृतयुग, त्रेता या द्वापर मे मनु 'या', शुक्र या भरतसंज्ञक महर्षि हुए ही नही या कौटल्य के नाम के तृतीयशती मे किसी ने जाली अर्थशास्त्र रच दिया, वह महान् अज्ञ है और भारतीय इतिहास मे पूर्णत अनभिज्ञ है, ऐसे घोर अज्ञानी को इतिहासकार मानने वाला और भी मूढ़तम है। कुछ लेखक कपिल, शुक्र, बृहस्पति, भरत आदि को 'अतिमानव' या देवता मानकर उनकी ऐतिहासिकता उड़ाना चाहते हैं।[1] ऐसे 'अतिमानवों या देवताओ' की ऐतिहासिकता हम पुराणसाक्ष्य से सिद्ध करेंगे।

आज जर्मनलेखक जालि के इस मत को कोई नहीं मानता कि ईसा की तृतीय शती में कौटल्य के नाम से किसी ने अर्थशास्त्र को रच दिया, यद्यपि

---

१. The names of well known works like Manu Smriti, the yajnavalkya Smriti, Parasarasmriti and Sukraniti show that in ancient India authors often preferred incognito and attributed their works to divine or semi divine persons.
(स्टेट एण्ड गवर्नमेन्ट इन एशेन्ट इण्डिया, पृष्ठ ३, सदाशिव अल्तेकरकृत)

विन्टरनीत्स ने यही मत दुहराया है।[१]

निश्चय ही मनु[२] इन्द्र, वरुण, कपिल, शुक्रादि दैवीपुरुष थे, परन्तु थे ऐतिहासिक व्यक्ति। इनकी ऐतिहासिकता इसी ग्रन्थ के परायण से सिद्ध होगी।

इसी प्रकार, आयुर्वेद का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'चरकसंहिता' का प्रधान संस्कर्ता महाभारतयुद्ध से पूर्व हुआ,[3] परन्तु आधुनिकलेखक उसका मूललेखक ही कनिष्क के राजवैद्य 'चरकाह्व' उपाधिप्राप्त व्यक्ति को मानते हैं।[४]

---

१. अर्थशास्त्र लाहौर संस्करण १९२३, जालिसम्पादित तथा समप्रोब्लम्स-इन इण्डियन लिटरेचर, (पृ० १०६),

२. स्वायम्भुव मनु या आदम (आत्मभुव=स्वायम्भुव) को भारतीय-ग्रन्थों के समान प्राचीन यहूदी साहित्य में अनेक शास्त्रों का रचयिता बताया गया है—

"The Hebrew doctors acscribe to Adam various composition on the subjects of Ethies, theology and Legislation, as well as a book on the creation (पुराण) of the world (Stanely on the oriental Philosophy. chap 3, p. 36).

"Kissalaeus, a Mohamadan writer, asserts that the Sabians possessed not only the books of Seth (वसिष्ठ) and Edris (अत्रि) but also others written by Adam himself." (वही)

प्रसिद्ध बैबीलन इतिहासकार बेरोसस ने वि० पू० तृतीय शती मे बैबीलन के बलिमन्दिर में उपर्युक्त ग्रन्थों को देखा था।

३. चरकसंहिता का मूललेखक पुनर्वसु कृष्ण आत्रेय, भारतयुद्ध से कई सहस्रवर्षपूर्व हुआ था।

४. The court of King Kanishka as believed to have been adorned by three wise men . an experienced physician called Caraka, who was the well known author of the Carak Samhita.

(आयुर्वेद का इतिहास २९२ पर उद्धृत विमलचरण ला की पुस्तक 'अश्वघोष पृ० ५ से)

यद्यपि, चरक उपाधि व्यासशिष्य वैशम्पायन की भी थी, परन्तु इन पंक्तियों का लेखक पं० भगवद्दत्त और कविराज सूरमचन्द्र के इस मत को नहीं मानता कि वैशम्पायन ही आयुर्वेद की चरकसंहिता का रचयिता था। इस सम्बन्ध में भारतीय परम्परा के आधार पर अलबेरूनी का मत ही सत्य प्रतीत होता है कि ऋषि अग्निवेश का ही अपरनाम 'चरक' था।[1] प्राग्महाभारत युग में—अग्निवेश चरक ने ही यह ग्रन्थ लिखा था।

अतः पाश्चात्यों का आरोपित ग्रन्थकार (Attribution) सम्बन्धी मत सर्वथा भ्रान्त निर्मूल अतएव त्याज्य है। मूलग्रन्थों के रचयिता स्वायम्भुव मनु, सप्तर्षि, शुक्र, बृहस्पति आदि देवयुगीन व्यक्ति ही थे, परन्तु इन ग्रन्थों का समय-समय पर संस्कार होता रहा।

भारतीय इतिहास के मूलस्रोत

तथाकथित प्रामाणिक (अप्रामाणिक) स्रोत कितने सत्य—पाश्चात्य लेखकों ने भारतीय इतिहास के मूलस्रोत भारतीयवाङ्मय मे या भारत मे न ढूढ़कर भारत के बाहर देखे और उन्ही को परमप्रमाणिक माना अथवा शिलालेख, ताम्रपत्र, अभिलेख मुद्रा आदि धातुगतप्रमाणों को अधिक प्रामाणिक माना और उनके मनमाने पाठ एवं अर्थ निकालकर भारतीय इतिहास को भली-भाँति विकृत किया।

सर्वप्रथम, विलियम जोन्स ने, विदेशी यूनानी मैगस्थनीज जैसे लेखक, जिसको न भारतीय इतिहास का अधिक ज्ञान था और न जिसके विषय में निश्चित है कि वह कभी आया कि नही, उसको परमप्रामाणिक मानकर भारतीय इतिहास की एक मूलतिथि ज्ञात करने का दम्भ किया। जिस प्रकार प्रारम्भ मे डार्विन के विकास—मत को यूरोप या संसार ने ब्रह्मवाक्य की भाँति ग्रहण किया परन्तु अब उस पर शंका करने लगे हैं, परन्तु भारतीय विद्वान् जोन्स की मूलखोज पर अभी तक अँगुली उठाने का विचार तक नही करते। उनके लिए तो जोन्स के प्रतिपादन ध्रुवसत्य है। जिस पर वे अभी अटल या निश्चल है।

मैगस्थनीज के समान, अन्य यूनानी लेखकों हेरोडोटस, प्लिनी, एरियन, प्लूटार्क आदि के ग्रन्थ भारतीय इतिहास मे परम सहायक माने गए और एस-

---

१. According to their belief, Caraka was a Rishi in the last Dwapara yuga when his name was Agnivesha, but afterwards he was called Caraka. (अलबेरूनी, पृ० १५९)

देशीय लेखकों के कौटलीय अर्थशास्त्र, रघुवंश, हर्षचरित जैसे ग्रन्थों पर अधिक विश्वास नहीं किया गया। इसी प्रकार बुद्ध की तिथि के सम्बन्ध में सभी भारतीय तथा चीनीग्रन्थो के साक्ष्य को छोडकर केवल सिंहलीबौद्धग्रन्थदीपवंश या महावंश पर पूर्ण विश्वास व्यक्त किया गया, जिनमे बुद्ध की सर्वाधिक अर्वाचीन तिथि का उल्लेख है। कल्हण की अपेक्षा तिब्बती बौद्धलेखक तारानाथ लामा के विवरण पर अधिक विश्वास किया गया इसी प्रकार बाह्य मुस्लिम लेखको यथा अलबेरूनी, अलमासूदी जैसे लेखको के ग्रन्थो पर पूर्ण विश्वास किया, जिन्होने भारतीय इतिहास मे बिना अन्तरग पैठ के केवल सुनी-सुनाई बातो के आधार या पक्षपातपूर्वक लिखा, जिन्होने भारतीयप्रजा पर अमानुषिक अत्याचार किए ऐसे विदेशीशासको को भारतीय इतिहास का श्रेष्ठतम नायक बताया गया जैसे सिकन्दर, मेनेन्द्र, तोरमाण, हूण मिहिरकुल, बाबर, अकबर इत्यादि। सिकन्दर की पराजय को जिन यूनानी लेखको ने महान् विजय के रूप मे प्रदर्शित किया, उन्हे ही भारतीय इतिहास का परमप्रमाणिक स्रोत माना गया।

प्राचीन भारतीय साहित्य मे वर्णित समान एव निश्चित तथ्यो को असद्-वृतान्त या माइथोलोजी बताकर उनके प्रति घृणा एव अश्रद्धा उत्पन्न की गई। भारतीय इतिहास का मूलाधार है पुराण एव इतिहास (रामायण-महाभारत) ग्रन्थ, परन्तु मैक्समूलर, मैकडानल और कीथ जैसे साम्राज्यवादी स्तम्भो ने उनको पूर्णतः अप्रामाणिक मानकर इतिहासनिर्माण मे कोई भी मान्यता नही दी, यद्यपि पार्जीटर ने इस सम्बन्ध मे एक प्रयत्न किया उसे भी शासन की ओर से कोई मान्यता नही मिली।

प्राचीनभारतीयवाङ्मय की उपेक्षा करके, पाश्चात्यलेखको को विदेशी लेखको के अतिरिक्त **सर्वाधिक प्रामाणिक द्वितीय स्रोत** दिखाई पडा, वह था **पथरिया प्रमाण** अर्थात् शिलालेख, ताम्रपत्र, मृत्पट्टिका लेख इत्यादि जो पत्थरो, धातुओ या मिट्टी के पात्रो आदि पर लिखे हुए थे। क्योकि इस प्रमाण को, अस्पष्ट होने के कारण अनेक प्रकार मे पढा जा सकता था और उसके मनमाने अर्थ लगाये जा सकते थे। उदाहरणार्थ अशोक के शिलालेखो पर उल्लिखित 'यवन' को यूनानी माना गया। इसी प्रकार अशोक के शिलालेखो मे ही पाँच 'यवनराज्यों' का उल्लेख है, उसे 'यवनराजा'[1] बनाकर मनमाने अर्थ लगाए

---

१. श्रेष्ठ विद्वान् प्रथमदृष्टि मे भाँप लेगा कि अशोक के शिलालेखो मे 'यवनराजाओ' का नहीं 'यवनराज्यो का उल्लेख है, द्रष्टव्य एक मूलपाठ—"योजनशतेषु यच अतियोको नाम योनरज पर च तेन

गए। उन तथाकथित 'मग' आदि राजाओं को 'अशोकमौर्य' का समकालीन माना गया।

इसी प्रकार खारवेल के हाथीगुफा नाम प्रसिद्ध शिलालेख का पाठ अनेक प्रकार से मानकर अनेक तथाकथित इतिहासकारों ने मनमाने परिणाम निकाले। इस लेख में डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने 'दिमित' और बृहसतिमित को क्रमशः ग्रीक राजा डेमेट्रियस और मगधराज बृहस्पतिमित्र (पुष्यमित्र शुंग) मान कर मनमानी कालगणना की। जायसवालजी को युगपुराण में भी डेमेट्रियस का उल्लेख प्राप्त हो गया—'धर्ममीत के रूप में।' वास्तव में युगपुराण में, जो श्री डी० आर० मनकड ने प्रकाशित किया है, वह पाठ इस प्रकार है—

"धर्मभीताः वृद्धा जनं मोक्ष्यन्ति निर्भयाः" (यु०पु० पंक्ति १११)

इसी प्रकार अनेक मुद्रालेखों, प्रस्तरलेखों, मृल्लेखों के मनमाने पाठ मान कर मनमाने परिणाम निकाले। क्योंकि पाश्चात्यों एवं तदनुयायी भारतीयों को, भारतीय इतिहास के ये ही 'परमप्रामाणिक' स्रोत जान पड़े और उन्हीं का 'इतिहासनिर्माण' में आश्रय लिया।

अतियोके न चतुरे रजनि (राज्ये) तुरमये मम अन्तकिनि नम मक नम अलिकसुन्दर नम" (अशोक का पेशावरखरोष्ठीलेख)। हरिवंश-पुराण में इन पांच म्लेच्छ (यवन) राज्यों का उल्लेख है—

यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्लवाः शकाः।
एतेह्यपि गणाः पंच हैहयार्थे पराक्रमन् (१।१६।४)

२

इतिहासविकृति के प्राचीनकारण

सामान्य

वर्तमान शिक्षणसंस्थाओं मे भारतवर्ष का जो इतिहास पढ़ाया जाता है, उसकी विकृति के कारण केवल नवीन ही नहीं है, वरन् प्राचीन कारण भी पर्याप्त है। यह विधि का विधान ही था कि शनैः शनैः मानव इतिहास की विकृति के कारण अत्यन्त पुरातनकाल मे ही उत्पन्न होते रहे। आज, विद्या के अनेक क्षेत्रों में घोर अज्ञान का एक प्रधानाकारण, इतिहास की यह महत्तमा विकृति या विस्मृति ही है। यों तो सृष्टि के प्रारम्भ से ही विकृति के कारण बनते रहे। यथा, पृथ्वी पर अनेक बार सूर्यदाहों और एवं जलप्रलयों या हिम-प्रलयों से अनेक बार पृथ्वी की वनस्पति, जीव-जन्तु और मानवप्रजाये नष्ट होती रही, न जाने कितने बार, पूर्वकाल मे प्रलयों से प्रजासंहार हुआ, इसकी सही-सही संख्या की स्मृति संसार के किसी देश के साहित्य मे नहीं है, यदि वह इतिहास ज्ञात होता तो आज संसार पर डार्विन का मिथ्याविकासवाद न छाया रहता। इन प्रलयों में मानवसहित समस्त प्राणिवर्ग नष्ट हो गए, तब इतिहास को कौन स्मरण रखता। फिर भी, न जाने किस विज्ञान, दिव्यज्ञान या योग-बल से प्राचीन ऋषियों ने अनेक प्रलयों की स्मृति सुरक्षित रखी—शतशः सहस्रशः प्रलयो और जीवोत्पत्तियों का ऋषियो को आभास था—

> एतेन क्रमयोगेन कल्पमन्वन्तराणि च ।
> सप्रजानि व्यतीतानि शतशोऽथ सहस्रशः ।
> मन्वन्तरान्ते संसारः संहारन्ते च संभवः ॥

(ब्र० पु० १।२।६।२)

फिर भी इन संहारों (प्रलयों) और सम्भवों (उत्पत्तियों) का वास्तविक इतिहास संक्षेप में भी किसी को, आज ज्ञात नहीं हैं। यह पूर्ण सम्भव है कि प्राग्भारतकाल या उससे पूर्वकाल में यह इतिहास किन्हीं इतिहासकारों (ऋषियों) को ज्ञात हो। पुराणों में इसका संकेतमात्र है, मयसभ्यता और चीनसभ्यता के पुरातन इतिहासों में भी इसका संकेत है ओर काल्डिया के पुरातन इतिहासकार

बेरोसस ने लिखा है 'जलप्रलय (प्रथम) के पश्चात् प्रथम राजवंश में ८६ राजा थे। इनका राज्य ३४०९० वर्ष था।" दृष्टव्य A history of Babylon, L. W. King p. 114)।

इसी प्रकार मयसभ्यता के इतिहास मे लाखों वर्षों के इतिहास का संकेत हैं।[1] प्रलयतुल्य अन्य प्राकृतिक आपदाओं यथा भूकम्प, तूफान बाढ़ आदि में न जाने, प्राचीन विश्व का कितना वाङ्मय और उसके साथ ही इतिहास नष्ट हो गया।

प्राचीन इतिहासो के लोप होने का द्वितीय प्रधान कारणहै विजेता जातियों द्वारा विजित सभ्यता, संस्कृति और साहित्य को नष्ट करना। देवासुरसंग्रामों का हम पहले संकेत कर चुके हैं, देवों ने निश्चय ही विजित असुरों का प्राचीन इतिहास और गौरव नष्ट किया। असुरों के साथ नागों, वानरों, सुपर्णों, गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसों एवं पितरादि जातियों का इतिहास लुप्तप्राय है। देवों में केवल आदित्यों, विशेषतः सोम और सूर्य (विवस्वान्) आदित्य के वंशज वैवस्वत मनु का इतिहास ही पुराणों में मिलता है।[2] उत्तरयुगो में भारत पर अनेक बार असुरों, म्लेच्छों एवं शक, यवन, हूण जैसी बर्बर जातियों के आक्रमण हुए, इनके पाश्चात् तुर्क, अरब, मुगल, मंगोल आदि जातियों के आक्रमण कितने घातक एवं बर्बर थे. इसको वर्तमान ऐतिहासिक विद्वान् जानते ही हैं। इन बर्बर जातियों ने न केवल धर्म, संस्कृति और सभ्यता, बल्कि विपुल वाङ्मय को अग्निसात् किया। नालन्दा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के जलाने की घटना इतिहासप्रसिद्ध है। प्राचीनभवनों एवं मन्दिरों की मुस्लिम आक्रमणकारियों ने

---

१. (द्रष्टव्य धर्मयुग, पृ० ३५—३मई १९८१)—मयसभ्यतासम्बन्धी लेख

२. प्रथम आदित्य (ज्येष्ठ अदितिपुत्र) वरुण ब्राह्मण था; असुरमहत् (अहुरमज्द) एवं उसके उत्तराधिकारी वैवस्वत यम का कुछ विस्तृत इतिहास पारसी धर्मग्रन्थ अवेस्ता में मिलता है। यम से पूर्व 'धर्मराज' उपाधि वरुण को प्राप्त थी। वरुण ने पितृजाति के पूर्वज 'यम' को अपना उत्तराधिकारी बनाया जरथुस्त्र से अहुरमज्द (वरुण) कहते हैं—"मैंने विवनघत के पुत्र यिम को धर्मोपदेश दिया'··· मैंने उसको पृथ्वी का राजा बनाया ' यिम को राज्य करते ३०० वर्ष बीत गए'''इस प्रकार ३००-३०० वर्ष करके उसने चार बार (कुल १२०० वर्ष) राज्य किया (अवेस्ता, फर्गद द्वितीय) टि०—दीर्घायु के सम्बन्ध में अग्रिम अध्याय में स्पष्ट किया जाएगा।

किस प्रकार नष्ट किया या उनके स्वरूप को परिवर्तित करके अपने महल या मस्जिदों में परिवर्तित कर दिया। ऐतिहासिक स्मारकों (भवनों या पुस्तकों) के नष्ट होने पर इतिहास स्वयं ही नष्ट हुआ या विकृत या विस्मृत हुआ। जिस प्रकार यूनानी इतिहासकारों ने सिकन्दर सम्बन्धी भ्रामक या मिथ्या या विपरीत[1] इतिहास लिखा। इसी प्रकार अनेक मुस्लिम इतिहासकारों—यथा अलबेरूनी, अबुल फजल, अलमासूदि, ज्याबरानी, सुलेमान सौदागार, इब्न खुरदादबा, अबु इसहाक, इब्नहोकल, रशीदुद्दीन, भक्करी—इत्यादि ने अपने समकालीन इतिहास को किस प्रकार भ्रामक एवं पक्षपातपूर्ण रूप से लिखा, यह विज्ञ पाठकों को अज्ञात नहीं होगा।[2]

भारतीय वाङ्मय, विशेषतः इतिहासपुराणों ने, प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में घोर भ्रम या अज्ञान या मिथ्याज्ञान, जिस प्रकार या जिन कारणो से उत्पन्न किया, अब इसी की विशेष मीमांसा, इस प्रकरण मे करेंगे।

इतिहासपुराणों के भ्रष्टपाठ

रामायण, महाभारत और पचासों पुराणग्रन्थो में भ्रष्टपाठों की भरमार है, इसके लिए हमें पाश्चात्यों यथा मैक्समूलर, विलसन, मैकडानल, वा कीथ को दोषी नही ठहरा सकते, न ही इस सम्बन्ध मे इन लेखकों के प्रामाण्याप्रमाण्य का कोई मूल्य है। यह पाठभ्रष्टता तो उत्तरकालीनपुराणलिपिकार का प्रतिलिपिकारों या धूर्त चाटुकारों की है जो अज्ञानवश या लोभवश सत्य के साथ व्यभिचार करते थे। ग्रन्थों मे क्षेपकों की भरमार है, यद्यपि सभी क्षेपक अप्रामाणिक या भ्रमोत्पादक नही, परन्तु भ्रामक क्षेपकों का बाहुल्य है' साम्प्रदायिक पक्षपात या मतभेद के कारण अनेक ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़ा-मरोड़ा गया। यथा ब्राह्मणों ने अनेक महापुरुषों को अपने-अपने सम्प्रदाय का अनुयायी सिद्ध करने की चेष्टा की : शैवों, वैष्णवो की भांति जैनों और बौद्धों ने भी राम, कृष्ण, नेमिनाथ, ऋषभ, नारद आदि का विभिन्न एवं परस्पर विपरीत चरित लिखा। यदि किसी ब्राह्मण ने किसी स्त्री के साथ व्यभिचार किया तो उसको इन्द्र या वायु जैसे देवताओं के मत्थे मढ़ दिया। इसके सर्वोत्तम उदाहरण हैं—गौतम (गोत्रनाम) पत्नी अहिल्या और जनमेजय (पाण्डव) पत्नी वपुष्टमा,

---

१. सिकन्दर पर पोरस की विजय उसकी (पोरस) की पराजय के रूप में चित्रित किया, यह अब सिद्ध हो चुका है।

२. अनेक मुस्लिम शासकों ने अपने नाम से, पक्षपातपूर्ण एवं प्रशंसात्मक आत्मकथायें लिखवाई जैसे बाबरनामा, जहाँगीरनामा इत्यादि।

केसरीपत्नी अञ्जना (हनुमानमाता) और कुन्ती। यहाँ, गौतम एक गोत्रनाम है, जिसका वास्तविक नाम अज्ञात है—गौतम ऋषि राजा दशरथ के समकालीन था। गौतम पत्नी के साथ छल से किसी पुरुष ने व्यभिचार किया, परन्तु पुराण-संस्कर्त्ताओं ने यह दोष इन्द्र के मत्थे मढ़ दिया—

तस्यान्तरं विदित्वा च सहस्राक्षः शचीपतिः।
मुनिवेषधरो भूत्वा अहल्यामिदमब्रवीत्॥
० ० ०
एवं संगम्य तु तदा निश्चक्रामोटजात् ततः।[1]

जो इन्द्र वेद मे ईश्वर का प्रतिरूप है, उसको महाभारतोत्तकाल में वैष्णव ब्राह्मणों ने किस निम्नकोटि का 'धूर्त' बनाया, यह इससे प्रकट होता है।

जनमेजय की पत्नी वपुष्टता से अश्वमेधयज्ञ मे संज्ञप्त (मृत) अश्व के साथ एक रात्रि सोने के मिथ अध्वर्यु या अन्य किसी ब्राह्मण सदस्य ने व्यभिचार किया, इस कारण जनमेजय का वैशम्पायन ब्राह्मणों से घोर सघर्ष हुआ और राज्य का विनाश भी हुआ। यहाँ भी पुराणकारों ने जनमेजय की पत्नी वपुष्टमा के साथ किए व्यभिचार को देवराज इन्द्र के मत्थे मढ़ दिया।[2]

इसी प्रकार रामायण मे कुशनाभ की १०० कन्याओ के साथ व्यभिचार को वायुदेव के मत्थे मढा है।[3] हनुमान की माता अञ्जना का वायु के संगम की कथा प्रसिद्ध ही है। कुन्ती के साथ किसी दुर्वासासंज्ञकब्राह्मण ने व्यभिचार किया, उसे सूर्य के मत्थे मढ दिया। इसी प्रकार पुराणों से इस प्रकार का मिथ्यापवादों के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिससे प्राचीन इतिहास अत्यन्त विकृत एव दूषित हो गया, जिससे कि सत्य इतिवृत का ज्ञान होना प्रायः अत्यन्त दुष्कर है।

रामायण, महाभारत, हरिवंश एवं विपुल पुराणो मे भ्रष्टपाठो के पर्याप्त उदाहरण है।

उदाहरणार्थ, भ्रष्टपाठो के दृष्टि से रामायण मे निकृष्टतम उदाहरण दिये

---

१. रामायण (१।४८।१७।२२),
२. तां तु सर्वानवद्याङ्गीं चकमे वासवस्तदा।
संज्ञप्तश्वमाविश्य यथा मिश्रीबभूव ह॥ (हरिवंश २।५।१३)
३. रामायण (१।३२)

जा सकते हैं, इसके प्राचीन कोशों में अनेक पाठान्तरों एवं क्षेपकों में से मूल या सत्यपाठ को ग्रहण करना असंभव नहीं तो अत्यन्त दुष्कर कार्य है। इसके तीन प्रधान पाठों (Recensions) दाक्षिणात्य, वंगीय एवं पश्चिमीय पाठों में कठिनाई से आठ सहस्र श्लोक समान होंगे, जबकि सम्पूर्ण रामायण में २४००० श्लोक हैं। एक प्राचीनबौद्धग्रंथ महाविभाषा के अनुसार वाल्मीकि ऋषि ने कुल १२००० श्लोकों की रचना की थी. उत्तरकाल में प्रक्षेप बढते-बढते रामायण का आकार ठीक द्विगुणित हो गया। वाल्मीकि अब से लगभग ७००० वर्ष पूर्व हुये थे, अतः ऐसा होना प्रायः असभव नहीं।

रामायणपाठ की भ्रष्टता

रामायण के उत्तरकालीन प्रतिलिपिकारों, गायको (चारणभाटों) या प्रक्षेपकारों का अज्ञान निम्नता की किस सीमा तक जा सकता था, इसके उदाहरण रामायण में ही इक्ष्वाकुवशावली के दो पाठ है। बालकांड (१।७० सर्ग) और अयोध्याकाण्ड (२।११०) में इक्ष्वाकुवंश अयोध्याशाला की वशावली पठित है, इस वंशावली में शासक पृथु का पुत्र षष्ठ शासक त्रिशंकु हैं, जो पुराणो के सर्वसम्मत पाठ के अनुसार अयोध्या का इकतीसवा शासक था, रामायण मे त्रिशंकु का पुत्र धुन्धुमार पठित है जबकि उसका पुत्र प्रसिद्ध राजा हरिश्चन्द्र ३२वां शासक था। रघु का पुत्र पुरुपादक राजा कल्माषपाद बताया गया है और आगे सुदर्शन, अग्निवर्ण जैसे रघुवंशी राजा दाशरथि राम से पूर्व बताये गये हैं, अज का पिता नाभाग और उसका पिता ययाति बताया गया है। इस प्रकार की महाभ्रष्ट इक्ष्वाकुवंशावली रामायण मे मिलती है। **रामायण में इस प्रकार प्रक्षेपण करने वाले चारणभाट को न तो पुराणपाठों का सामान्य या स्वल्प सा भी ज्ञान था और न उसने रामायण से अर्वाचीनतर कालिदास के रघुवंशमहाकाव्य का ही परायण तो क्या, आँख से उठाकर भी नहीं देखा। इस प्रकार उत्तरकालीन प्रतिलिपिकार या चारणादि किस सीमा पर्यन्त घोर अज्ञान में आकण्ठ निमग्न थे, उससे भारतीय इतिहास का कैसे हित हो सकता था, अतः इतिहास में महान् विकार आना स्वाभाविक था।** इस सम्बन्ध में लेखक प० भगवद्दत्त के इस मत से सहमत नही हैं "विष्वगश्व से लेकर बृहदश्व तक का पाठ रामायण में टूट गया है। इसका कारण स्पष्ट है। अत्यन्त प्राचीनकाल मे किसी रामायण के प्रतिलिपिकर्ता ने दृष्टिदोष से विष्वगश्व के 'श्व' से पाठ छोड़ा और आगे मूलप्रति में बृहदश्व के 'श्व' से पाठ पढ़कर लिखना आरम्भ कर दिया।[1]" **पाठत्रुटि का यह कारण बोधगम्य नहीं है। यदि सामान्य**

---

१. भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, भाग २, पृ० ७१;

त्रुटि की भूल होती तो उस प्रतिलिपिकार ने कल्माषपाद का पुत्र शंखण, उसका पुत्र सुदर्शन, उसका पुत्र अग्निवर्ण, उसका पुत्र शीघ्रग, उसका पुत्र मरु और उसका पुत्र प्रसुश्रुत, उसका पुत्र अम्बरीष इत्यादि राजा कैसे लिख दिये। जब ये सभी राजा कुशलव के बहुत पश्चात् हुये और महाकवि कालिदास ने अग्निवर्ण[1] तक के जिन रघुवंशी राजाओं का वर्णन किया है, ये सभी रामायणपाठ में राम के पूर्वज बना दिये गये हैं, इसे प्रतिलिपिकार का सामान्य दृष्टिदोष नहीं कहा जा सकता। यह तो परममूढ़ता की घोरपराकाष्ठा है, जो दृष्टि किसी प्रमाणिकता का स्पर्श नहीं करती उसको दृष्टिदोषमात्र कैसे कहा जा सकता है। अतः रामायण के तथाकथित उक्त प्रतिलिपिकार को इतिहास का एक प्रतिशत भी ज्ञान नहीं था और न ही उसने पुराण या रघुवंश जैसे सामान्य ग्रन्थों को ही आंख से देखा। यह परम अक्षम्य भूल है। ऐसी स्थिति में पाश्चात्य या कोई विदेशी कहे कि "भारतीयों को इतिहास लिखना नही आता था" तो यह प्रसंग अतिशयोक्ति या पक्षपात नहीं कहा जा सकता। कम से कम रामायण के प्रतिलिपिकारों के सम्बन्ध मे यो यह कथन शतप्रतिशत सत्य है कि उन्होंने ज्ञान, सत्य इतिहास को भी पूर्णतः विकृत कर दिया और उसे गहन अन्धकार मे डुबो दिया। यह अतिखेद का विषय है।

उपरोक्त पाठत्रुटि या भ्रष्टता, प्रतिलिपिकारों का दृष्टिदोषमात्र नही थी, वरन् घोर मूढ़ता या परम अज्ञान का प्रतीक है, इसकी पुष्टि आगे के उदाहर्त्तव्य संकेतों मे भी होगी।

हरिवंश (१।२० अध्याय) एवं अन्य पुराणों के प्रामाणिक इतिवृतों से ज्ञात होता है कि शन्तनु के पिता प्रतीप के समकालीन पाञ्चालनरेश काम्पिल्याधिपति नीपवंशी ब्रह्मदत्त थे।[2] परन्तु रामायण में चूली ब्रह्मदत्त को विश्वामित्र कौशिक के पूर्वज कुशनाभ (या कुशिक) का समकालीन बना दिया है।[3]

---

२. कालिदास ने रघुवंश के अन्तिम एवं उन्नीसवें सर्ग में रघुवंश के अन्तिम राजा अग्निवर्ण का वर्णन इस प्रकार प्रारम्भ किया है—
"अग्निवर्णमभिषिच्य राघवः स्वे पदे तनयमग्नितेजसम्।"
(रघुवंश १९।१)

३. प्रतीपस्य तु राजर्षेस्तुल्यकालो नराधिपः।
ब्रह्मदत्तो महाभागो योगी राजर्षिसत्तमः। (हरिवंश १।२०।११)

४. सराजा ब्रह्मदत्तस्तु पुरीमध्यवसत् तदा।
काम्पिल्यां परया लक्ष्म्या देवराजो यथा दिवम्॥
स बुद्धिं कृतवान् राजा कुशनाभः सुधार्मिकः।
ब्रह्मदत्ताय काकुत्स्थ दातुं कन्याशतं तदा॥
(रामायण १।३३।१९-२०)

इसी प्रकार बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड में अनैतिहासिकवृत्तान्तों की शतश कथायें हैं, यथा उत्तरकाण्ड में रावण का यम, वरुण आदि से युद्ध, मेघनाद का इन्द्र से युद्ध, विष्णु का सुमाल्यादि से युद्ध, रावण सहस्रार्जुन की समकालीनता, शुनःशेप को अम्बरीष का बलिपशु बनाने की कथा इत्यादि। इनमें अन्तिम इतिहास ऐतरेयब्राह्मण एवं पुराणों में प्रसिद्ध है कि शुनःशेप हरिश्चन्द्र का समकालीन था और उसी के पुरुषमेध में वह बलि का पशु बनाया गया था, उसको अम्बरीष का समकालीन प्रदर्शित करना, उसी प्रकार घोर अज्ञानता का प्रतीक है, जिस प्रकार इक्ष्वाकुवंशावली का भ्रष्टपाठनिर्माण।

इस प्रकरण मे हम सम्पूर्ण वंशावलियों की शुद्धता का परीक्षण नहीं कर रहे हैं, केवल भ्रष्टपाठों का उदाहरण संकेतित है, जिससे ज्ञात हो कि इतिहास विकृति में इन भ्रष्टपाठों का कितना भीषण योगदान है।

महाभारत, हरिवंश और पुराणों में पाठभ्रष्टता की न्यूनता नही है वरन् पर्याप्त ही है, यहाँ पर दो-चार उदाहरणों से ही इसकी पुष्टि करेंगे, सम्पूर्ण भ्रष्टपाठों का संकलन करने के लिए तो अनेक पृथुलग्रन्थों की आवश्यकता होगी और ऐसा संकलन करना यहाँ असम्भव ही है।

महाभारतग्रन्थ की रचना के समय और लेखकत्वादि के विषय में यहाँ विचार नहीं करना है, यहाँ पर केवल यह देखना है कि वर्तमानपाठों मे कितनी समरूपता एवं निर्भ्रान्ति है, इस सम्बन्ध में दो-चार बातों पर ही विचार करेंगे।

सर्वप्रथम, यह बात काल्पनिक प्रतीत होती है कि देवयुग के पुरुषों यथा इन्द्र, वरुण, भृगु, सप्तर्षि, वायु, अग्नि, यम आदि शतशः पुरुषों को पाण्डवादि के समकालीन दिखाया गया है। नारदादि[1] सम्बन्धी एक-दो पुरुषों को छोड़ कर इन्द्रादिसम्बन्धी समकालिकता पूर्णतः काल्पनिक प्रतीत होते हैं। इन्द्र की कृष्ण या अर्जुन से तथाकथित भेंटो में ऐतिहासिकता नही है। देवयुगीन नागों और सुपर्णों का सम्बन्ध जनमेजय के नागयज्ञ से जोड़ा गया है, यह समकालीनता भी काल्पनिक है। हाँ, मय, बाण, नरक, (असुर), तक्षक, वासुकि जैसे वंशनाम हैं, क्योंकि मयादि असुर और तक्षकादि नाग देवासुरयुग में हुए थे, उनके वंशज महाभारतयुग मे इसी नाम से अभिहित किए जाते थे। प्रथम मय, शुक्राचार्य

---

१. नारद निश्चय ही, अतिदीर्घजीवी पुरुष थे, जो दक्ष प्रजापति से पाण्डवों तक विद्यमान रहे, इसी प्रकार परशुराम भी दीर्घजीवी थे, इसका विवरण अन्यत्र लिखा जायेगा।

का पौत्र और त्वष्टा का पुत्र था। इसके वंशज भी मय ही कहलाते थे, एक मय का वध[1] दशरथ के समकालीन देवासुरयुद्ध में हुआ था, जिसकी पत्नी हेमा थी और पुत्र दुन्दुभि तथा मायावी थे, इन दोनों मयपुत्रों का वध वानरराज वालि ने किया था। मय के वंशज किसी मय असुर ने युधिष्ठिर की सभा का निर्माण किया था। अतः मय, वासुकि आदि वंशनाम या जातिनाम थे। देवासुरयुगीन और महाभारतकालीन सनामापुरुषों में भ्रम होना स्वाभाविक है, परन्तु ये पृथक्-पृथक् थे।

महाभारत, आदिपर्व में पुरुवंश की वंशावली दो स्थलों पर मिलती है, यथा अध्याय १४ और १५ में पर्याप्त अन्तर है। एक ही ग्रन्थ के दो क्रमिक अध्यायों में वंशावली का भेद होना निश्चय ही चिन्त्य है और इसे केवल प्रतिलिपिकार की भूल नहीं कहा जा सकता।

हरिवंशपुराण में क्षेपक पर्याप्त है, यद्यपि इस पुराण का पाठ पर्याप्त प्राचीन है, परन्तु अनेक भाग प्रक्षिप्त है, यह सहज ही ज्ञात हो सकता है। हरिवंश मूल में केवल १२ सहस्र श्लोक थे[2] अब श्लोकसंख्या १६ सहस्र से भी अधिक है, स्पष्ट है, न्यूनतम चार सहस्र श्लोक क्षेपक हैं। इस पुराण में अनेक कथाओं की द्विरुक्ति है, वे निश्चय ही क्षेपक हैं, इसी प्रकार अनेक असम्भव वर्णनों के क्षेपक माना जाना चाहिए, तथा बालकृष्ण के शरीर से भेड़ियों की उत्पत्ति इत्यादि।[3]

इसी प्रकार समस्त पुराणों में क्षेपकों एवं भ्रष्टपाठों, साम्प्रदायिक-कल्पनाओं, असम्भव घटनाओं के अविश्वसनीय वर्णन पर्याप्त हैं, इसका संकेत तत्तत्प्रकरण में ही किया जाएगा। यहाँ पर सभी का संकेत करने पर भी ग्रन्थ का कलेवर अतिवृद्ध हो जायेगा। केवल उन कारणों का सामान्य उल्लेख करेंगे, जिनके कारण ऐतिहासिक विभ्रम उत्पन्न हुये।

विभ्रमों का प्रारम्भ वेदों से

दिव्य-मानुष-इतिहास—वेदमन्त्रों एवं इतिहासपुराण में भ्रम का मुख्य

---

१. मयो नाम महातेजा मायावी वानरर्षभ।
विक्रम्यैवाशनिं मुक्त्वा जघानेशः पुरन्दरः॥ (रामा० ३।५१।१०,१५)

२. दशश्लोकसहस्राणि विंशच्छ्लोकशतानि च।
खिलेषु हरिवंशे च संख्यातानि महर्षिणा॥ (आदिपर्व २।३८०)

३. गौरात्रिवक्त्रमलस्तस्य स्वतनूरुहजास्तथा।
विनिष्पेतुर्भयंकराः सर्वतः शतशो वृकाः॥ (हरि० २।८।३१)

कारण नामसाम्य, नामपर्याय, सदृशनाम, गोत्रनाम, पक्षिनाम, पशुनाम, ग्रहनाम, नक्षत्रनाम, बहुव्रीहिसमास नाम एवं इसी प्रकार के अनेक कारणों से हुआ। इन समस्तविषयों का सोदाहरण स्पष्टीकरण इसी प्रकरण मे करेंगे। परन्तु यह ध्यातव्य है कि इतिहासपुराणों में इन 'विविध विभ्रमों का बीज वेदमन्त्रो में ही बो दिया गया था। उदाहरणार्थ वेद मे ऋषि प्रायः गोत्रनाम से ही अपना उल्लेख करता है, जैसे गौतम, कण्व, वसिष्ठ, कौशिक इत्यादि, इन गोत्रनामों से इतिहास मे जितना भ्रम उत्पन्न हुआ, उतना भ्रम सम्भवतः और किसी कारण से नही हुआ। वेद में वसिष्ठगोत्र का ऋषि अपने को वशिष्ठ ही कहता है और विश्वामित्र का वंशज अपने को विश्वामित्र या कौशिक कहता है, इससे सर्वत्र आदिविश्वामित्र, जो इन्द्र का शिष्य व गुरु था, उसका भ्रम होता है, अतः इस प्रकरण मे प्रत्येक प्रसिद्धगोत्रप्रवरनामो की सोदाहरण मीमांसा करेंगे। उससे पूर्व वेद मे दिव्यमानुष इतिहास की चर्चा करेगे।

वेद मे इतिहास—हम, इस मत को नही मानते कि वेदो मे इतिहास नही है, प्राचीन ऋषियो ब्राह्मणकर्त्ता ऐतरेय, तैत्तिरीयादि, यास्क, शौनक एव सायणादि वेदभाष्यकारों ने वेदमन्त्रो मे इतिहास माना है और स्वयं वेदमन्त्रो मे मन्त्रकर्त्ता ऋषि अपना नाम लेता है, इसका अपलाप किसी प्रकार भी नही किया जा सकता।[1] तर्क के द्वारा भी वेदमन्त्रों मे इतिहास सिद्ध है। परन्तु इन सबके बावजूद कुछ विद्वानों की यह मान्यता निर्मूल नही है "इतिहासशास्त्र के आधार पर वेद-पाठ करने वाले के हृदय में अनायास ही यह सत्यता प्रकट होगी कि वेदमन्त्रों के आश्रय पर ही अनेक व्यक्तियों के नाम रखे या बदले थे। इसीलिए भगवान् मनु के भृगुप्रोक्त शास्त्र १।२१ मे कहा गया है—

"सर्वेषां तु नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥

अर्थात् वेद के शब्दों से ही आदि में अनेक पदार्थों के नाम रखे गये।"[2] वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि "मन्त्र में उस देवासुरयुद्ध का वर्णन नहीं है, जो इतिहास मे वर्णित है[3]", स्वयं वेदमन्त्र में यही बात कही गई है 'हे

---

१. शुनःशेपो यमह्वद् गृभीतः सोऽस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु।
(ऋ० १।२४।१२)

२. वैदिक वाङ्मय का इतिहास, पृ० २५८ भगवद्दत्त कृत;

३. तस्मादाहुर्नैतदस्ति यद्दैवासुरं यदिदमन्वाख्याने त्वदुद्यत इतिहासे त्वत्।
(श० ब्रा० ११।१।६।९);

इन्द्र ! तुमने न किसी से युद्ध किया और न मघवन्' तुम्हारा कोई शत्रु है, जो युद्ध कहे जाते हैं वे सब माया है, तुम पूर्वकाल में शत्रुओं से लड़े नहीं[1]।

ऋग्वेद और शतपथब्राह्मण के उक्त मन्तव्यों से यह भाव स्पष्टता से निकल रहा है कि मायायुद्धों एवं दिव्य इन्द्र के अतिरिक्त ऐतिहासिकदेवासुरसंग्राम निश्चयपूर्वक हुये थे, परन्तु उनका आशय यह है कि मन्त्र में सर्वत्र ऐतिहासिक वर्णन ही नहीं है, परन्तु उसकी छाया अवश्य है जैसा कि यास्क ने अनेकत्र माना है—"तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्रमृङ्मिश्रं गाथामिश्रं भवति" (नि० ४।६; "मन्त्र, इतिहास मिश्रित, ऋङ्मिश्र और गाथामिश्र होते हैं। यास्क ने यह भी लिखा है कि 'आख्यानयुक्त मन्त्रार्थ (पदार्थ) कथन में ऋषि को प्रीति होती है। भला, जहाँ ऋषि को मन्त्र मे इतिहास कथन में प्रीति या आनन्द मिलता हो, वहाँ यह मानना कि उसमें इतिहास नहीं, कितनी विडम्बना है।

शब्द की निरुक्ति या निर्वचन से पुरुष का ऐतिहासिक अस्तित्व नही मिटाया जा सकता और यह भी नही समझना चाहिए कि अमुक व्यक्ति से पूर्व अमुक पद था ही नही—यथा दशरथ, राम, इन्द्र, विभीषण, सुग्रीव, वृत्र, विष्णु, अदिति, कश्यप, गौतम, कण्व, भरद्वाज, विश्वामित्र, वशिष्ठ, शुक्र, जमदग्नि इत्यादि सहस्त्रोंपदों के निर्वचन करने का यह तात्पर्य नही है कि कश्यप, इन्द्र आदि के जन्म से पूर्व कश्यपादि शब्द थे ही नहीं। पुरुषों के नाम लोक-वेद से ही रखे जाते है, इसका अर्थ यह नही है कि 'राम' शब्द दाशरथि राम से पूर्व था ही नहीं, आखिर यही नाम राम दाशरथि से पूर्व लोक मे था, तभी तो यह नाम रखा गया। यही बात इन्द्र, अदिति, वसिष्ठ, कश्यपादि के सम्ब-न्ध में समझना चाहिए। भाव यह है कि वेदमन्त्र में कहीं इन्द्रादिपदों का ऐतिहासिक अर्थ हो सकता है और कहीं नहीं भी हो सकता। वेद मे वृत्र, उर्वशी, आयु, नहुष, ययाति, पुरु (पुरुष ?), आङ्गिरस, भृगु आदि शब्द ऐतिहासिक (मानुष) भी हो सकते हैं[3] और दिव्य (द्युलोकसम्बन्धी) पदार्थ के

१. न त्वं युयुत्से कतमच्चनाह न तेऽमित्रो मघवन् कश्चनास्ति।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाथ शत्रून्ननु पुरा युयुत्से। (ऋग्वेद)

२. ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवति आख्यानसंयुक्ता (नि० १०।१०),

३. निरुक्त का यही भाव है—'तत्कोवृत्रः ? मेघ इति नैरुक्ताः त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः।" (नि० २।५।१६),।
निम्न मन्त्र में नहुषादिपदों के भी ये दोनों दिव्यमानुष अर्थ सम्भव हैं—
त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन् नहुषस्य विश्पतिम्।
इलामकृण्वन् मनुषस्य शासनीम्।' (ऋ० १।३१।२)

बोधक भी हो सकते है। अतः पं० भगवद्दत्त का मत आंशिक रूप से सत्य है "विश्वामित्र. विश्वरथ, अत्रि, भारद्वाज, श्रद्धा, इला, नहुष आदि नाम सामान्य श्रुतियाँ है। ऋषियों ने ये नाम वेदमन्त्रो से लेकर रख लिए।" साथ ही यह भी सत्य है कि वेद में केवल दिव्य नाम ही नहीं, मानुषनामो का उल्लेख है। स्वयं पं० भगवद्दत्त जी ने अनेक वेद के दिव्य-मानुषनामों की चर्चा की है, परन्तु वे इस गुत्थी को सुलझा नही पाये।[१]

दिव्य और मानुष निश्चय ही पृथक-पृथक पदार्थ थे। दिव्य का सामान्य अर्थ है द्युलोक या सूर्य या आकाशसम्बन्धी (वस्तु) और मानुष का अर्थ है मनुष्य या पृथ्वी सम्बन्धी वस्तु। निम्न मन्त्रों में दिव्यामानुष का उल्लेख द्रष्टव्य है—

तद्विचिषे मानुषेमा युगानि।[२]

विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः।[३]

या ओषधीःपूर्वा जाता देवभ्यस्त्रियुगं पुरा।[४]

दैव्यं मानुषां युगाः।[५]

नाहुषा युगा मह्ना।[६]

सुदास इन्द्रः सुतुकाँ अमित्रानरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः।[७]

जैमिनीब्राह्मण मे स्पष्ट लिखा है कि वेदमंत्रोक्त 'दाशराज्ञयुद्ध' मानुष[८] भी था। 'दिव्यदाशराज्ञयुद्ध' भी सम्भव है, जिसका मनुष्य या पृथ्वीलोक से सम्बन्ध

---

१. "दुःख है कि इस समय वेदविद्या लुप्तप्रायः है। अतः इन सबका यथार्थ अर्थ करना यत्नमाध्य है" (भा० बृ० इ० भाग २ पृ० १२५)।

२. ऋ० (१।१०३।४),

३. ऋ० (५।५२।४),

४. ऋ० (१०।९७।१),

५. शु० यजु० (१२।१११),

६. ऋ० (५।७३।३) (वेद मे नहुष, पुरु, आयु आदि का, अर्थ मनुष्य भी है।)

७. ऋ० (७।१८।९),

८. "क्षत्रं वै प्रातर्दनं दाशराज्ञो दश राजानः पर्यतन्त मानुषे," (जै० ब्रा० ३।२४५); "एवं क्षत्रस्य मानुषात् व्युपापतत मनव! (जै० ब्रा० ३।२४८)

नहीं " वेद में मानुषीप्रजा का उल्लेख है।[1]

दिव्य का एक अर्थ होता सौर या सूर्यसम्बन्धी अतः दिव्यवर्ष या दिव्य-युग का अर्थ हुआ सूर्यसम्बन्धी वर्ष या युग। मूल में सौरवर्ष ३६० या ३६५ दिन का होता है। इस 'दिव्य' शब्द से इतिहास में इतना बड़ा भ्रम उत्पन्न हुआ कि चतुर्युग के १२००० (द्वादशसहस्र) मानुषवर्षों को पुराणो में ४३२०००० (तैंतालीस लाख बीस हजार) मानुषवर्ष बना दिया गया जो मानव इतिहास में पूर्णतः असम्भव है। तात्पर्य यह है कि वेद के मानुष और दिव्य शब्दो ने इतिहास में ऐसा अप्रतिम और महान् भ्रम को जन्म दिया, जिससे कि भारतयुद्ध से पूर्व की ऐतिहासिकतिथियों का आधुनिक या प्राचीन इतिहासकार निर्णय ही नही कर सके।[2] इतिहास में एक शब्द[3] से ही कितना विकार हो सकता है, यह ज्वलन्त उदाहरण इसका प्रमाण है दिव्यशब्द।

नामसाम्य से इतिहास में विकृति

उपाधिनाम से भ्रम—अर्वाचीन या उत्तरकालीन इतिहास में जिस प्रकार विक्रम (विक्रमादित्य), साहसांक, शक, शंकराचार्य, कालिदास जैसे नाम उपाधि बन गये और इतिहास मे भ्रम उत्पन्न करने लगे, उसी प्रकार पुराणों (किंवा वेदो) मे भी प्रजापति, ब्रह्मा, प्रचेता, इन्द्र, व्यास, सप्तर्षि, आदित्य, बृहस्पति, पञ्चजन जैसे उपाधिबोधक शब्द महान् भ्रमोत्पादक बन गए।

प्रजापतिपद—सर्वप्रथम 'प्रजापति' शब्द को ही ले, पुराण या रामायण, महाभारत मे 'प्रजापति' का सामान्यतः अर्थ चतुरानन ब्रह्मा या स्वयम्भू अर्थ लिया जाता है। इसी प्रकार ब्राह्मणग्रंथों में बहुधा 'प्रजापति' का बिना विशेषनाम लिए सामान्य निर्देश किया गया है, जबकि प्रमुख प्रजापति २१ या इससे भी

---

१. पावकोऽग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु (ऋ० ६।७)

२. मानुषयुग का अर्थ है १०० वर्ष और दिव्ययुग का अर्थ है ३६० वर्ष। दिव्य (सौर) और चान्द्रवर्ष में स्वल्प अन्तर था, इसका आभास पंडित भगवद्दत्त को हो गया था। पाश्चात्यलेखक तो 'मानुषयुग' का अर्थ समझ ही नहीं पाये एतदर्थ द्रष्टव्य—लोकमान्यतिलक कृत—आर्कटिक होम ऑफ दी वेदाज (पृ० १४०-१४८ मानुषयुगसम्बन्धी विवेचन); इसका (युग का) विशेष परिशीलन युगसम्बन्धी अध्याय में करेंगे।

३. इसलिए वैयाकरणों ने कहा "एक ही सुप्रयुक्त शब्द स्वर्गलोक में कामदुघ होता है।" "एकः शब्दः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुक् भवति।"

अधिक हुए थे। मुण्डकोपनिषद् (१।१।१) मे 'ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव' में 'ब्रह्मा' शब्द 'आदित्य वरुण प्रजापति' का बोधक हैं, क्योंकि अथर्वा या भृगु ऋषि वरुण के ज्येष्ठपुत्र थे, परन्तु सामान्य पाठक यहाँ 'ब्रह्मा' का अर्थ स्वयम्भू या चतुरानन (प्रथम प्रजापति) ग्रहण करेगा। इसी प्रकार निम्न ब्राह्मणप्रवचनों में 'प्रजापति' शब्द भ्रमोत्पादक है—(१) प्रजापतिरिन्द्रमसृजत आनुजावरं देवानाम् (तै० ब्रा० २।२।१०।६१), (२) इन्द्रो हैव देवानाम् अभिप्रवव्राज विरोचनोऽसुराणाम्········तौ समित्पाणी प्रजापतिसकाशमाजग्मतुः (छा० ५।८।७); सामान्यतः जिस पाठक को इतिहास का ज्ञान नही होगा, वह यहां 'प्रजापति' शब्द से 'ब्रह्मा' का ही ग्रहण करेगा, परन्तु इतिहासविज्ञ ही जान सकता है कि यहाँ देवासुरों के जनक 'कश्यप मारीच' प्रजापति का उल्लेख है। पुराणों के वर्तमानपाठों मे इस भ्रम की पुनरावृत्ति 'ब्राह्मणग्रन्थो' के कारण भी हुई है, जहां वे प्रजापतिविशेष का नामनिर्देश नही करते।

इसी प्रकार दक्ष के पिता का नाम 'प्रचेता' था, जो एक महान् प्रजापति हुए और 'वरुण आदित्य' को भी 'प्रचेता' कहते है, सप्तर्षियो के 'जन्मद्वयी' के सम्बन्ध मे प्रचेता' या वरुण (ब्रह्मा) शब्द से यह भ्रम उत्पन्न हुआ है, स्वयं पुराणकार इस भ्रम में फंस गये, फिर सामान्य पाठक इस प्रसंग मे सत्य इतिहास को कैसे जान सकता है।

आदित्यपद—आदित्य, सूर्य, विवस्वान् और देवादि शब्द भी इतिहास में घोर भ्रम उत्पन्न करते हैं। कश्यप और अदिति के द्वादशवरुणइन्द्रादिपुत्र 'आदित्य' कहे जाते हैं। 'मार्तण्ड' आकाशस्थ सूर्य को विवस्वान् या आदित्य भी कहते हैं। वेदार्थ मे इसी दिव्य (सूर्य) और मानुष विवस्वान् से महान् भ्रान्ति होती है और वही भ्रान्ति इतिहासपुराणों मे यथावत् विद्यमान है। इतिहास में यम और मनु का पिता विवस्वान् पृथ्वी का राजा और मनुष्य था। आकाश के विवस्वान् या सूर्य और आदित्य को हम प्रत्यक्ष देखते है। ऐतिहासिक वरुण, इन्द्र, विष्णु आदि सबकी 'आदित्य' संज्ञा प्रसिद्ध थी। बिना व्यक्तिविशेष का नाम लिए केवल 'आदित्य' कहने मे इतिहास मे भ्रम के लिए महान् अवकाश है और ऐसा भ्रम वेदमंत्रों और इतिहासपुराणो मे है ही। इस भ्रान्ति का निराकरण अतिदुष्कर कर्म है, तथापि इस ग्रन्थ मे यथाप्रसंग यथार्थ 'आदित्य' का यथार्थ ऐतिहासिक उल्लेख किया जायेगा।

---

१. यथा बृहद्देवता (७।४६।६०) में वैकुण्ठ इन्द्र का वर्णन—
प्राजापत्यासुरी त्वासीद् विकुण्ठा नाम नामतः।
तस्यां चेन्द्रः स्वयं जज्ञे जिघांसुर्दैत्यदानवान्॥

इन्द्रपद—इन्द्र भी अनेक हुए हैं, पुराणों में चौदह मन्वन्तरों के इन्द्रादिदेवों का पृथक् निर्देश है। वैदिकग्रंथों में काश्यप इन्द्र के अतिरिक्त अन्य इन्द्रों का भी उल्लेख है।[1] सामान्यतः लोग एक ही इन्द्र को जानते हैं।

व्यास-उपाधि—भारतीय इतिहास में २८ या ३० व्यास हुये हैं, पुराणों में इनका बहुधा वर्णन है, सामान्यजन क्या बड़े-बड़े संस्कृतज्ञ भी केवल एक ही व्यास पराशर्य कृष्णद्वैपायन से परिचित है, अतः अनभिज्ञ व्यक्ति निश्चय ही भ्रम मे पड़ जाएगा, अतः 'व्यास' पदवी से यत्र तत्र सर्वत्र पाराशर्य व्यास का भ्रम होता है, कुछ विद्वानों के मत में गीता के निम्न श्लोक में चौबीसवें व्यास ऋक्ष वाल्मीकि का उल्लेख है—

मुनीनामहं व्यासो कवीनामुशना कविः।[1]

सप्तर्षिपद-उपाधि—व्यासपदवी के समान 'सप्तर्षि' एक महती पदवी थी। १४ मन्वन्तरो में १४ सप्तर्षिगण हुए। अतः बिना विशिष्ट मन्वन्तर के उल्लेख से यह ज्ञात नही हो सकता कि किस सप्तर्षिगण का उल्लेख है। प्रत्येक मन्वन्तर मे इन सात ऋषियों का एक प्रधानवंशज सप्तर्षि हुआ—अत्रि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ। यथा दशम मन्वन्तर में पुलहपुत्र हविष्मान् भृगुवंशी सुकृति. अत्रिवंशी आपोमूर्ति, वसिष्ठवंशी अष्टम, पुलस्त्यपुत्र प्रमिति, कश्यपगोत्रीय नभोग और अंगिरावंशी नभस नाम के सप्तर्षि थे।[2] यहाँ पर सप्तर्षियों के नाम दे दिये हैं, यदि केवल इनको वसिष्ठ, अत्रि आदि ही कहा जाए जैसा कि पुराणों मे बहुधा कहा गया है, तब भ्रम के लिए पूर्ण स्थान रहता है।

चाक्षुषमन्वन्तर (षष्ठ) में पृथुवैन्य के राज्यकाल में अत्रि आदि सप्तर्षियों के वंशज चित्रशिखण्डी नाम के सप्तर्षि थे, जिन्होंने लक्षश्लोकात्मकधर्मशास्त्र बनाया। नामो से आदिम अत्रि आदि का भ्रम पूर्णसंभव है।

---

१. श्रीमद्भगवद्गीता (१०।३६), द्रष्टव्य श्री रामशंकर भट्टाचार्यकृत इतिहासपुराण अनुशीलन।

२. दशमे त्वथ पर्याये द्वितीयस्यान्तरे मनोः।
हविष्मान् पौलहश्चैव सुकृतिश्चैव भार्गवः।
आपोमूर्तिस्तथात्रेयो वासिष्ठश्चाष्टमः स्मृतः।
अंगिरा नभसः सप्तैते परमर्षय॥
(हरिवंश० १।७।६५, ६६)

इसी प्रकार 'पंचजन' संज्ञक अनेक जातियाँ विभिन्न कालों में हुई यथा देवयुग में—असुर, देव, गंधर्व, सुपर्ण और नाग पंचजन थे, ययाति के पाँच पुत्रों के वंशजो यथा यादव, पौरव आदि भी पंचजन थे, भार्म्यश्व के मुद्‌गल आदि पाँच पुत्र भी पंचजन या पांचाल कहलाये। इस प्रकार की तुल्य या सामान्य संज्ञाओं से इतिहास में भ्रम हुआ है।

इसी प्रकार ब्रह्मा, बृहस्पति आदि भी पदवियाँ थी, यह पदवी किसी भी विशिष्ट विद्वान् की हो सकती थी। वरुण प्रजापति को भी 'ब्रह्मा' पदवी प्राप्त थी, यज्ञ में ब्रह्मा एक ऋत्विक् होता था। अतः इन पदों ने भी इतिहास में भ्रमोत्पादन में सहयोग दिया।

नामसादृश्य से भ्रम—एक ही नाम के अनेक राजा, ऋषि या अन्य पुरुष विभिन्न समयों में होते है और हुए हैं, पुराण के एक श्लोक[१] में बताया गया है कि ब्रह्मदत्त, जनमेजय, भीम इत्यादि नामों के सौ-सौ राजा हो चुके हैं, अतः जब तक उसका वंश, कालादि ठीक-ठीक ज्ञात नहीं हो तो भ्रम उत्पन्न होता है। इसी प्रकार 'राम' नाम के अनेक पुरुष या महापुरुष हुये हैं। अतः बिना विशेषण के भ्रम के लिए पूर्ण स्थान है, यथा गीता के निम्न श्लोकार्थ में उल्लिखित राम मे टीकाकार 'दाशरथि राम' और 'परशुराम भार्गव' दोनों ही अर्थ लेते हैं। "रामः शस्त्रभृतामहम्[२]"

दोनों ही श्रेष्ठशस्त्रविद् थे, परन्तु इतिहास से ज्ञात है कि भार्गव राम ही विशेष शस्त्रविद् या धनुर्वेदपारग थे, अतः गीता मे उन्ही का उल्लेख माना जाना चाहिये। यह रहस्य सत्य इतिहासवेत्ता ही ज्ञात कर सकता है।

इसी प्रकार दशरथ, कृष्ण, अर्जन, भीम आदि शतशः उदाहरण नामसादृश्य के दिये जा सकते हैं। परन्तु इतने ही पर्याप्त हैं।

नामपर्याय से भ्रम—पुराणों मे पृथु के एक पुत्र के अन्तर्धि का नाम अन्तर्धान भी मिलता है।[३] इसी प्रकार 'अरिमर्दन' नाम के राजा को 'शत्रुमर्दन' भी कहा गया है।[४] पिप्पलाद को पिप्पलाशन, कणाद को कणभक्ष, शिलाद को

---

१. शतं ब्रह्मदत्ताणामशीतिर्जनमेजयाः।
शतं वैप्रतिविन्ध्यानां शतं नागाः सहैहयाः॥
(ब्रह्माण्ड 0२।३।७४।२६६-६७)

२. गीता (१०।३१)

३. द्रष्टव्य विष्णुपुराण (१।१४।१)

४. मार्कण्डेयपुराण (२६।६, २६।१, २६।२०)

शिशायन कहा गया है ।[1] इसी प्रकार हिरण्याक्ष के लिए हिरण्यचक्षु[2] अग्निवेश को वह्निवेश हुताशवेश आदि नामपर्याय पुराणों में मिलते हैं । कहीं-कहीं नाम के आदिम भाग मे किंचित् परिवर्तन से भी भ्रम हो सकता है यथा नेदिष्ट के लिए दिष्ट, सुबाहु के लिए बाहु, परशुराम के लिए पर्शुराम ।[3] नाम के साथ विशेषण का सांकर्य भी सम्यग् इतिहासबोध मे बाधक होता है, यथा कृष्णात्रेय, श्वेतात्रेय, पीतात्रेय अथवा दृप्तबालाकिगार्ग्य (श० ब्रा० १४।१।१।१), सौर्यायणि गार्ग्य (प्रश्नोपनिषद्), शैशिरायण गार्ग्य यत्र-तत्र इतिहास पुराणों में बाष्कल को ही बाष्कलि (वि० पु० ३।४।१६-१७), उत्तम को औत्तमि (वि० पु० ३।१।२२), अगस्त्य को अगस्ति, पुलस्त्य को पुलस्ति, कुशिक को कौशिक, कात्यायन को कात्य, मार्कण्ड को मार्कण्डेय, च्यवन को च्यावनेय, यम को मृत्यु, धर्मराज यमराज या अन्तक, बुध को वीरसोम, शुक्र को भृगु, भृगुपति या भार्गवमात्र, परशुराम को भृगु या भार्गव या भृगुपति कहा गया है । ये सभी नाम पर्याय इतिहास मे भ्रमोत्पादक अथवा इतिहासबाधक बन सकते हैं, यदि पाठक सम्यक् रूप से इतिहास का गम्भीरज्ञाता न हो । परन्तु ऐसी स्थिति में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ विद्वान् को भ्रम हो सकता है और स्वयं पुराणकारों या प्रतिलिपिकारों ने पुराणपाठो मे अनेक भ्रमों या कल्पनाओं को जन्म दिया, जिससे इतिहास विकृत हुआ है और जिसका संशोधन आज अतिदुष्कर एवं कष्टसाध्य कर्म प्रतीत होता है ।

समासनाम—समासनामों से भी इतिहास मे बाधा होती है, जैसाकि 'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व' का उदाहरण तैत्तिरीयसंहिता एवं व्याकरणशिक्षा ग्रन्थों में दिया जाता है, इसी प्रकार षण्मुख, षाण्मातुर पतंजलि, चक्रधर, पीताम्बर, हलायुद्ध वृकोदर, कानीन, मेघनाद, इन्द्रजित् कश्यप, प्रज्ञाचक्षु जैसे अनेकविध समासनाम इतिहास में कभी-कभी महान् बाधा उत्पन्न करते हैं । पुराणों में इस प्रकार के नाम बहुधा प्रयुक्त हुए हैं ।

गोत्रनामों से महती भ्रान्ति—जैसाकि पूर्व संकेतित है कि गोत्रनामों द्वारा ऐतिहासिक भ्रान्ति का बीज वेदमन्त्रो में ही बो दिया गया था और इतिहासों एवं पुराणों में इसकी पूरी फसल काटी गई है । इस भ्रान्ति के शिकार यास्क

---

१. द्रष्टव्य—इतिहासपुराण अनुशीलन पुस्तक में—पौराणिकव्यक्तिनामघटित समस्यायें शीर्षक लेख ।

२. वामनपु० (१०।४५)

३. ब्रह्माण्ड २।५०।१४, विष्णु ४।१।५ और ब्रह्मवैवर्त० (३।२५।२०)

जैसे वेदाचार्य और उनसे पूर्व जैमिनीयब्राह्मण के कर्ता व्यासशिष्य जैमिनि ऋषि तक हो गये। इसका सर्वप्रसिद्ध उदाहरण 'विश्वामित्र' या 'वसिष्ठ' के गोत्र-नामों से दिया जा सकता है। निम्न ब्राह्मणवाक्य में 'विश्वामित्रजमदग्नी' पद निश्चय ही इन ऋषियों के किन्हीं वंशजों के लिए आया है, जो कुरु के पिता संवरण के समय हुये थे—

'भरता ह वै सिन्धोरपतार आसुः इक्ष्वाकुभिरुद्बाढ़ाः।
तेषु ह विश्वामित्रजमदग्नी ऊषतुः ॥' (जै० ब्रा० ३।२३८)

यहाँ पर स्वयं 'भरत' और 'इक्ष्वाकु' शब्द इन्ही राजाओं के वंशजों के लिए प्रयुक्त है इसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता नही है। वेदमन्त्रों और इतिहासपुराणों मे गोत्रनामों पर विचार करने से पूर्व पाणिनिव्याकरण के निम्न सूत्र द्रष्टव्य है—

(१) अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमागिरोभ्यश्च।[1]
(२) यस्कादिभ्यो गोत्रे।[2]
(३) बह्वच इञः प्राच्यभरतेषु।[3]
(४) आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिन च।[4]

इन सूत्रो का अर्थ है—(१) अत्रि आदि के गोत्रप्रत्यय का बहुवचन में लुक् होगा अर्थात् अत्र्यादि के वंशज भी अत्रयः (या अत्रिः), भृगु. (भृगवः), कुत्सः (कुत्साः), वसिष्ठः (वसिष्ठाः), गौतमः (गौतमाः), अंगिरसः (अंगिराः) कहलाएँगे। (२) यस्कादि गोत्रे मे बहुवचन मे प्रत्ययलुक् होगा—यथा यस्क के वंशज भी यस्काः, मित्रयु के वंशज मित्रयवः कहलाएँगे। (३) प्राच्यगोत्रों एवं भरतगोत्र मे बह्वच के परे इञन्त प्रत्यय का लुक् होगा यथा युधिष्ठिर के वंश भी युधिष्ठिरः या युधिष्ठिराः या भरतः के भरताः कहे जाएँगे। (४) आगस्त्य (अगस्त्यवंशज) और कौण्डिन्य (कुण्डिन वंशज) क्रमशः अगस्ति या अगस्त्यः, कुण्डिन या कुण्डिनाः कहलाएँगे। इसी प्रकार पुलस्त्य (पौलस्त्य) वंशज पुलस्ति या पुलस्तयः कहलायेंगे।

---

१. अष्टाध्यायी (२।४।६५),
२. वही, (२।४।६३),
३. वही, (२।४।६६),
४. वही, (२।४।६०),

ये उदाहरण मात्र है। इनके प्रकाश मे निम्न वेदमंत्र द्रष्टव्य है :—

(१) त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने ।[1]

(२) द्युम्नवद् ब्रह्म कुशिकास एरिरे ।[2]

(३) भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोन: ।[3]

(४) प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठा: ।[4]

(५) कण्वा इन्द्रं यदक्रत ।[5]

उपर्युक्त मन्त्रों में गृत्समद, कुशिक, भारद्वाज, वसिष्ठ और कण्व शब्द बहुवचन में प्रयुक्त हुये हैं, स्पष्ट है ये शब्द तत्तद् ऋषिवंशजों के लिए प्रयुक्त हुये हैं। वेद, उपनिषद् एवं इतिहासपुराणों में अनेकत्र एकवचन में भी ऋषि, प्राय: अपने वास्तविक नाम के स्थान पर गोत्रनाम को लेता है, जैसे वसिष्ठ या विश्वामित्र या कण्व या भारद्वाज का वंशज, चाहे उनसे पचास या सौ पीढ़ी के अनन्तर, अपने को वसिष्ठ या वासिष्ठ, विश्वामित्र या कौशिक, कण्व या काण्व, भरद्वाज या भारद्वाज कहे तो उसका वास्तविक परिचय या इतिहास ज्ञात नहीं हो सकेगा और वह इतिहास तिमिरावृत्त ही होता चला जायेगा। आज भी वसिष्ठ, भरद्वाज, पराशर, कश्यप गोत्रनामधारी शतश: सहस्रश: व्यक्ति (ब्राह्मण) मिलेंगे। स्पष्ट है, यदि हम केवल गोत्रनाम या जातिनाम लेंगे तो निश्चय ही उत्तरकाल में भ्रम उत्पन्न होगा। कुछ पुराणों के प्राचीन पाठों में यथा वायु-पुराण और ब्रह्माण्डपुराण तथा बृहदारण्यकोपनिषद् जैसे कुछ उपनिषदों में पिता के साथ पुत्र का नाम उल्लिखित है, वहाँ इतिहासबोध में सुविधा या सौकर्य रहता है, यथा बृहदारण्योकपनिषद् में द्रष्टव्य है—नैध्रुविकाश्यप, शिल्पकाश्यप, हरितकाश्यप (१।६।४) इत्यादि विशिष्ट काश्यप ऋषियों का सम्यक् बोध होता है। इसी प्रकार जैमिनिपायनिषद् में ऋष्यश्रृंगकाश्यप,

---

१. ऋ०, (२।४।६),

२. ऋ०, (३।२६।१५),

३. ऋ०, (६।२३।२०),

४. ऋ०, (७।३३।३),

५. ऋ०, (८।६।३),

मूल गोत्र प्रवर्तक ऋषि ये थे—मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ। अन्यत्र भृगु को प्रधानता दी है। गोत्रप्रवर्तक ऋषि शतश: हुये, जिनका परिचय अन्यत्र लिखा जायेगा।

पुलुष प्राचीनयोग्य, सत्ययज्ञ पौलुषि इत्यादि नामों मे पितासहित ऋषिनाम है। पुराणों में एतादृश निदर्शन द्रष्टव्य हैं—रोमहर्षक के षट् शिष्यों के नाम हैं—

आत्रेयः सुमतिर्धीमान् काश्यपो ह्यकृतव्रणः ।
भारद्वाजोऽग्निवर्चाश्च वासिष्ठो मित्रयुश्च यः ।
सावर्णिः सौमदत्तिस्तु सुशर्मा शांशपायनः ।।
(वायु० पु० ६।१५५-५६)

गोत्रनाम मे इतिहास में भ्रान्ति के चार निदर्शन उदाहृत करके गोत्रभ्रान्ति प्रकरण को समाप्त करेंगे—(१) आगस्त्यः (२) पुलस्त्य (३) वसिष्ठ और (४) विश्वामित्र कौशिक।

अगस्त्य—प्रथम या आदिम अगस्त्य मैत्रावरुण अर्थात् मित्र और वरुण के पुत्र और वसिष्ठ के सहोदर भ्राता थे, इन्होंने ही नहुष को शाप दिया था, जिससे वह दससहस्रवर्ष अजगरयोनि में पड़ा रहा।[1] एक अगस्त्य लोपामुद्रा के पति विदर्भराज के समय में हुये, तृतीय अगस्त्य दाशरथि राम के समकालीन थे। अतः सभी अगस्त्य एक नहीं हो सकते। इनके समयों मे सहस्रों वर्षों का महदन्तर था। पाणिनि के सूत्र से स्पष्ट है कि अगस्त्य के वंशज भी अगस्त्य या अगस्ति कहलाते थे, जो कुछ 'अगस्त्य' पर लागू है, वही 'पुलस्त्य' पर लागू होता है। आदिम पुलस्त्य, अगस्त्य से भी प्राचीनतर ऋषि थे और स्वायम्भुव मनु, मरीचि आदि ब्रह्मा (स्वयम्भू) के दश मानसपुत्रों में से एक थे। स्पष्ट है वे उन आदिम सप्त ऋषियों में से एक थे जिनसे पृथ्वी पर समस्त प्रजा उत्पन्न हुई।[2] कुबेर वैश्रवण और रावण के पितामह तथा विश्रवा के पिता पुलस्त्य आदिम पुलस्त्य नही हो सकते। दोनों पुलस्त्यों मे न्यून से न्यून बाईससहस्रवर्षों का अन्तर था। बाईससहस्रवर्ष की आयु प्रायः असम्भव है और यदि सम्भव भी हो तो इतनी वृद्धायु में कोई ऋषि सन्तान उत्पन्न नहीं करेगा। अतः निश्चय दोनों पुलस्त्य भिन्न-भिन्न थे। सत्य यह है कि पुलस्त्य के वंशज भी 'पुलस्त्य' या पुलस्ति कहे जाते थे।

वसिष्ठ—इसी प्रकार ब्रह्मा के मानसपुत्र वसिष्ठ और मैत्रावरुणि वसिष्ठ एक ही नही थे, यह तो पुराणों मे ही स्पष्ट लिखा है कि वरुण के यज्ञ में भृगु,

---

१. दशवर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महान् ।
विचरिष्यसि पूर्णेषु पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि । (उद्योगपर्व १७।१५)

२. महर्षयः सप्तपूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ।। (गीता १०।६)

वसिष्ठादि सप्तर्षियों का द्वितीय जन्म हुआ था।[1] इसी यज्ञ में वसिष्ठ के साथ अगस्त्य का जन्म हुआ।[2] इक्ष्वाकुवंशियों का पुरोहित कम से कम वैवस्वत मनु से दाशरथि राम तक मैत्रावरुणि वसिष्ठ को कहा गया है। परन्तु यह एक वसिष्ठ नहीं था, स्पष्ट है वसिष्ठ के वंशज भी वसिष्ठ ही कहे जाते थे जैसा कि वेदमन्त्र से भी सिद्ध होता है—

"प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः।" (ऋ० ७।३३।३)

विश्वामित्र—इसी प्रकार, वसिष्ठ के समान विश्वामित्र के वंशज विश्वामित्र या 'कौशिक' कहे जाते थे। इस गोत्रनाम के कारण, सम्भवतः यास्क भी भ्रम में पड़ गये और आदिम विश्वामित्र और सुदास पांचाल पुरोहित विश्वामित्र को ही माना,[3] यद्यपि उन्होंने ऐसा स्पष्ट नहीं लिखा, परन्तु प्रतीति ऐसी ही होती है। परन्तु इस भ्रांति का मूलबीज वेदमंत्र में ही है जैसा कि हम पहले ही संकेत कर चुके हैं।[4] यह भ्रांति गोत्रनाम विश्वामित्र और कौशिक से होती है। रामायण मे वर्णित प्रसिद्ध कौशिक या विश्वामित्र के सम्बन्ध में भी यही भ्रान्ति है।[5] इन सभी भ्रान्तियों का विस्तृत निराकरण "सप्तर्षिवंश ग्रन्थ" में ही होगा। यहाँ पर इन सबका संक्षिप्त उल्लेख इसलिए किया गया है कि पाठको को ज्ञात हो कि इतिहासविकृति के प्राचीन कारण कौन-कौन से हैं'

---

१. भृगुर्महर्षिर्भगवान् ब्रह्मणा वै स्वयम्भुवा।
वरुणस्य क्रतौ जातः पावकादिति नः श्रुतम्॥ (आदिपर्व ५।८)

२. स्थले वसिष्ठस्तु मुनिसंभूतः ऋषिसत्तमः।
कुम्भे त्वगस्त्यः संभूतोजशे मत्स्यो महाद्युतिः॥ (बृहद्देवता ५।१५१)

३. "विश्वामित्र ऋषिः सुदासः पैजवनस्य पुरोहित आस," (निरुक्त २।७।२४)

४. प्रसिन्धुमच्छा बृहती मनीषाऽवस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः (ऋ० ३।३३।५)
द्रष्टव्य है कि जमदग्नि के वंशज 'जमदग्नयः' कहे जाते थे—
'सूर्यक्षयादिहाहृत्य ददुस्ते जमदग्नयः।' (बृहद्दे० ४।११४)
स्पष्ट है—जमदग्नि के वंशज भी जमदग्नयः या जमदग्नि कहे जाते थे।

५. श्रीध्रमाख्यात मां प्राप्तं कौशिकं गाधिनः सुतम्। (रामा० ।१८।४०)
कुशिकस्य सुनुः और 'कौशिक' शब्द भ्रान्तिजनक है। सुनु शब्द भी वंशज के अर्थ में है। वेद में विश्वामित्र के वंशजों को भी 'विश्वामित्र' ही कहा जाता था।

मनुष्य के नक्षत्रनाम

वेदमन्त्रों के समान पुराणों में मनुष्यों और नक्षत्रों के नाम समान हैं, उदाहरणार्थ ध्रुव, आदित्य सूर्य (विवस्वान्), सोम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, रोहिणी आदि २७ सोमपत्नियाँ, सप्तर्षि, इसी प्रकार चान्द्र तिथियों के नाम कुहू, सिनीवाली इत्यादि, भूतेश (रुद्र), कार्तिकेय (कृत्तिका देवियाँ, नक्षत्र), अगस्त्य, कश्यप इत्यादि शतशः नाम हैं जो भ्रमों की सृष्टि करते हैं। वेदों और पुराणों में इस नामसाम्य के आधार पर दिव्य या पार्थिव घटनाओं का ऐतिह्यदोहन असंभव नहीं तो अत्यन्त दुष्कर अवश्य है। इस भ्रान्ति के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

वैदिकग्रन्थों मे ध्रुव और ध्रुवग्रह (सोमपात्र) का बहुधा उल्लेख है ध्रुव-वंशवर्णन के प्रसंग में श्रीमद्भागवतपुराण में यह वर्णन द्रष्टव्य है[1]—

प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः।
उपयेमे भ्रमिं नाम तत्सुतौ कल्पवत्सरौ॥
स्वर्वीथिर्वत्सरस्येष्टा भार्यासूत षडात्मजान्।
पुष्पार्णं तिग्मकेतं च इषमूर्जं वसुं जयम्॥
पुष्पार्णस्य प्रभा भार्या दोषा च द्वे बभूवतुः।
प्रातर्मध्यंदिनं सायमिति ह्यासन् प्रभासुताः।
प्रदोषो निशीथो व्युष्ट इति दोषासुतास्त्रयः।
व्युष्टः सुतः पुष्करिण्यां सर्वतेजमादधे॥

(भागवत ४।१३।११-१४)

उपर्युक्त वर्णन में 'ध्रुव' निश्चय ही स्वायम्भुव मनुपुत्र उत्तानपाद का पुत्र था, शेष के विषय में यह निश्चय करना कठिन है कि भ्रमि, वत्सर आदि वास्तव में मानव (या मानवी) थे या द्युलोक या अन्तरिक्ष के नक्षत्रादि। 'भ्रमि' के विषय में पं० जगन्नाथ भारद्वाज का व्याख्यान है' "पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, इसीलिये पृथ्वी को 'भ्रमि' कहा गया है।"[2]

खगोलविज्ञान मे ध्रुव, भ्रमि, शिशुमार, स्वर्वीथि आदि शब्द भले ही आकाशीय नक्षत्रादि हों, परन्तु इतिहास में ध्रुवादि निश्चय ही ऐतिहासिक पुरुष थे। परन्तु मानव इतिहास और ज्योतिष के नाम समान हो जाने पर भ्रान्ति

---

१. द्रष्टव्य—भारतीय खगोलविज्ञान पृ० ७७ पं जगन्नाथ भारद्वाज

२. भारतीयखगोलीयविज्ञान (पृ० ७४) (२) वनपर्व (२३०।८-११), दक्ष की अट्ठाइस कन्याओं के नाम पर २८ नक्षत्रों (रोहिणी आदि) के नाम पड़े, वे सभी सोम (अत्रिपुत्र) की पत्नियाँ थीं—

के लिए पूर्ण अवसर है और इससे यह समझना कठिन है कि यह ज्योतिष का वर्णन है या मानव इतिहास का। इसके कुछ और उदाहरण द्रष्टव्य है...

(१) अभिजित् स्पर्धमाना तु रोहिण्याः कन्यसी स्वसा।
इच्छन्ती ज्येष्ठतां देवी तपस्तप्तुं वनं गता।
तत्र मूढाऽस्मि भद्रं ते नक्षत्रं गगनात् च्युतम्।
कालं त्विमं परं स्कन्द ब्रह्मणा सह चिन्तय।
धनिष्ठादिस्तदा कालो ब्रह्मणा परिकल्पितः।
रोहिणी ह्यभवत् पूर्वमेवं संख्या समाभवत्।
एवमुक्ते तु शक्रेण कृत्तिकास्त्रिदिवं गता।
नक्षत्रं सप्तशीर्षाभं भाति तद्वह्निदैवतम्॥[1]

इन श्लोकों के अर्थ के सम्बन्ध मे श्री शंकर बालकृष्णादीक्षित ने लिखा है— "ये श्लोक स्कन्दाख्यान के हैं। सब वाक्यों का भावार्थ समझ में नहीं आता। अभिजित्, धनिष्ठा, रोहिणी और कृत्तिका नक्षत्रों से सम्बन्ध रखने वाली भिन्न-भिन्न प्रचलित कथायें यहाँ गुँथी हुई-सी दिखाई देती हैं। इससे इनके पारस्परिक सम्बन्ध का ठीक पता नहीं चलता।"[2] (परन्तु इतना स्पष्ट है कि सोम और उसकी रोहिणी आदि पत्नियाँ ऐतिहासिक व्यक्ति थे और आकाशी पिण्ड भी हैं)।

(२) वेदों और पुराणो मे अदिति के आठ या बारह पुत्रों की उत्पत्ति की कथा है। इसमें मार्तण्ड (सूर्य या विवस्वान्) के जन्म का विशेष उल्लेख है।[3] इस कथा मे भी मानव इतिहास और ज्योतिष का घोरसंमिश्रण है। वायु-पुराणादि मे इसका ऐतिहासिक घटना (मानवइतिहास) के रूप में ही वर्णन है।[4]

(३) रुद्र (महादेव) के द्वारा तारामृग (मृगशीर्ष या यज्ञियमृग) के पीछे दौड़ने की घटना का इस प्रकार उल्लेख इतिहासपुराणों में मिलता है...

---

१. अष्टाविंशतिर्याः कन्या दक्षः सोमाय ता ददौ।
सर्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्योतिषे परिकीर्तिताः॥ (ब्रह्माण्ड० ३।२।५३)

२. भारतीय ज्योतिष—(पृ० १५६),

३. अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वस्परि।
देवाँ उपप्रैत्सप्तभिः परा मार्तण्डमास्यत्।
सप्तभिः पुत्रैरदितिरुपप्रैत्पूर्व्यं युगम्।
प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुनर्मार्तण्डमाभरत्॥ ऋ० १०।७२।८-६)

४. अष्टानां देवमुख्यानामिन्द्रादीनां महात्मनाम्॥ (वायु० ३४।६२)

अन्वधावन्मृगं रामो रुद्रस्तारामृगं यथा ।[1]

शुक्रग्रह को भृगुपुत्र कहा जाता है—

भृगुसुनुधरापुत्रौ शशिजेन समन्वितौ ।[2]

तथ्य यह है कि देवयुग में, आज से लगभग १५ या १४ सहस्र वर्ष पूर्व जब दैत्यदानव (असुर) भारतवर्ष में देवों के साथ ही रहते थे, उसी समय ऋषि-मुनियों के नाम पर ग्रहों, ताराओं और नक्षत्रों के नाम रखे गये। यथा कश्यप-पुत्र विवस्वान् के नाम पर सूर्य की आदित्य या विवस्वान् संज्ञा प्रथित हुई, भृगुपुत्र शुक्र के नाम पर शुक्रग्रह का नाम रखा गया। पुनः ग्रहों के नाम पर सात वारों के नाम रखे गये।

यह नामकरण, उसी समय हुआ, जैसा कि हमने ऊपर बताया है, जब असुर और देव भारतवर्ष में रहते थे, तदनन्तर ही बलिकाल मे असुरों ने पाताल (योरोप, अफ्रीका, अमेरिका) में पलायन कर उपनिवेश बसाये।

इस कालनिर्धारण का प्रमाण है, इन संज्ञाओं की असुरों और देवों में साम्यता। अत्रिपुत्र सोम या चन्द्रमा के नाम से पृथ्वी के उपग्रह को चन्द्र कहा गया, अंग्रेजी का मून (Moon) शब्द चन्द्रमा या सोम शब्द का ही अपभ्रंश है, इसी प्रकार सोमपुत्र बुध के नाम पर अंग्रेजी का वेडनेसडे (Wednesday) आज तक प्रसिद्ध है। 'वेडन' शब्द 'बुध' शब्द का विकार है, इसको प्रत्येक मनुष्य मानेगा।

अपने मत की पुष्टि में हम दो-तीन और उदाहरण देकर नक्षत्रनामसाम्य प्रकरण को समाप्त करेंगे।

ज्योतिष में लघु और गुरु सप्तर्षि विख्यात है। अत्यन्त प्राचीनकाल में भारत में सप्तर्षियों को 'ऋक्ष' कहते थे।

सप्तर्षीनु ह स्म वै पुरर्क्ष इत्याचक्षते ।[3]
अमी ह ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तम् ।[4]

गुरु सप्तर्षि को यूरोप में ग्रेट बीयर (Great Bear) कहते है। अतः

---

१. वनपर्व (२७८।२०)
२. शल्यपर्व (११।१८)
३. श० ब्रा० (२।१।२।४)
४. ऋ० (१।२४।१०),

सप्तर्षियों का ऋक्ष या बीयर (भालू) नामकरण उस समय का संकेत करता है, जब असुर और देव साथ-साथ भारत में रहते थे।

यूरोपियन ज्योतिष में नौविस (Novis) नक्षत्र का उल्लेख वेद में 'हिरण्मय-नौ' के नाम से उल्लेख है। 'हिरण्यमयी नौश्चरद् हिरण्यबन्धना दिवि' अथर्व, (५।४।४)।

कालकञ्ज दैत्यों के नाम ही दो दिव्य श्वानों का वेद में उल्लेख है, जिनको यूरोपियन Canis Major और Canis Minor कहते हैं। यहाँ 'कैनिस' नाम कालकञ्ज का ही विकार है—

शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना हविषा विधेम ।
ये त्रयः कालकञ्जा दिवि देवा इव श्रिताः ।[1]

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।[2]

इसी प्रकार यूरोपियन ज्योतिष का 'कैसोपिया' नक्षत्र प्रसिद्ध प्रजापति ऋषि कश्यप के नाम से प्रसिद्ध हुआ। स्वाति नक्षत्र के निकट ऊपर यूरोपियन ज्योतिष में 'बूटेश' नक्षत्र है जो 'भूतेश' (रुद्र) का अपभ्रंश है।[3]

ये सभी प्रमाण हमारे इस मत को पुष्ट करते हैं कि देवासुरयुग में नक्षत्रों का नामकरण उसी समय हुआ जब देवासुरगण भारत में ही साथ-साथ रहते थे।

पशुपक्षिनाम से मानवनामसादृश्य-भ्रमजनक

वेदपुराणों में कुहू, सिनीवाली आदि देवपत्नियाँ भी हैं[4] और ज्योतिष में ये अमावस्या की संज्ञा है।

स्पष्ट है उपर्युक्त नक्षत्रनामकरण मानव इतिहास में भ्रान्तिजनक है।

वेदों और इतिहासपुराणों में अनेक पशुपक्षियों के नामों के साथ ऐतिहासिक पुरुषों के नाम में सादृश्य है यथा :

---

१. कालकञ्जा वै नामासुरा आसन्…तौ दिव्यौ श्वानावभवताम्
(तै० ब्रा० १।१।२);

२. ऋ० (१०।१४।११)

३. द्रष्टव्य — भा० ज० वि० (पृ० ४१)

४. सिनीवालीकुहूरिति देवपत्न्याविति नैरुक्ता अमावास्येति याज्ञिकाः ।"
(नि० ११।३१);

पशुनाम—मत्स्य, वराह, कश्यप, महिष, खर, आखु (आखुराज), हिरण (हिरण्य), मण्डूक, नाग, अश्व, अश्वतर, श्वेताश्वतर इत्यादि ।

पक्षिनाम—शुक, भरद्वाज, तित्तिरि, कपिञ्जल, कपोत, हंस इत्यादि । वरुण का एक पुत्र मत्स्य (महामत्स्य)[1] था—

उपरिचरवसु के एक पुत्र का नाम मत्स्य था, जिनसे जनपद का नाम 'मत्स्य, पड़ा । विराट मत्स्यो का राजा था जो अभिमन्यु का श्वसुर और उत्तरा का पिता था ।

'वराह' नाम का एक दैत्य, जो हिरण्यकशिपु का भ्राता, अपरनाम हिरण्याक्ष था । कश्यप कच्छप (कछुआ) को भी कहते है । प्रसिद्ध प्रजापति ऋषि का नाम भी कश्यप ही था, महिष एक दैत्य हुआ अथवा अनेक असुरो का यह प्रसिद्ध नाम था, जिसके नाम से माहिष्मती नगरी और महिषपुर (मैसूर) प्रथित हुये, एक महिषासुर का वध दुर्गा ने किया था, जिसका दुर्गासप्तशती म वर्णन है । एक महिष रामायणकाल मे हुआ जो मयवशी था, इसका वध बालि ने किया था । रामायण मे खरराक्षस का विशेष आख्यान है । महिष और खर पशुओ (भैंसा और गधा) के नाम भी हैं । उत्तरकाल मे अज्ञानीजन उपर्युक्त असुरों को पशु ही समझने की भ्रान्ति मे पड़ गये । प्राचीन मन्दिरो मे महिषासुर की मूर्तियों को भैंसे के रूप में ही बनाया गया है । यही बात खरादि के सम्बन्ध में समझनी चाहिये ।

वेदमन्त्रो मे आखुओ के एक राजा चित्र का उल्लेख है ।[2] महाभारत वन-पर्व में मण्डूको के राजा का वर्णन है । शौनकऋषिवंश मे एक ऋषि का नाम मण्डूक था, जिसने माण्डूक्योपनिषद् रचा । ऋषभ नाम प्रसिद्ध है जो अनेक मनुष्यों ने धारण किया । सूर्य (विवस्वान्) या नक्षत्रों को 'अश्व' या सर्प या 'नाग' भी कहते थे । अनेक राजाओं के नाम अश्वान्त थे...यथा हर्यश्व, हरिदश्व, भार्म्यश्व, हिरण्याश्व, युवनाश्व इत्यादि । इस प्रकार के नामों से मनुष्य को घोड़ा समझने की भूल हो सकती है । एक ऋषि का नाम श्वेताश्वतर था, संस्कृत में अश्वतर खच्चर को कहते हैं । एक या अनेक राजाओ का नाम हस्ती था । हस्ती हाथी को कहा जाता है । हस्ती के नाम से हस्तिनापुर प्रथित हुआ ।

---

१. कुम्भेत्वगस्त्यः संभूतो जले मत्स्यो महाद्युतिः (बृहद्दे० ५।१५२)

२. आखुराजोऽभिमानाच्च प्रहर्षितमनाः स्वयम् ।
संस्तुतो देववत् चित्र ऋषये तु ददौ ददौ । (बृहद्देवता ६।६०)

३. आसीत् दीर्घतपाः कपोतो नाम नैऋतः । (बृह० ८।६७)

महाभारत में हस्तिनापुर को 'नागपुर' भी कहा गया है। हस्ती का पर्याय नाग है, इसलिये पर्यायनाम का प्रयोग किया गया। इन पर्यायनामों से भी भ्रान्ति होती है। इसी प्रकार नकुल नेवले को कहते हैं परन्तु एक पाण्डव का नाम नकुल था। इस प्रकार बभ्रु (नकुल) नाम के अनेक व्यक्ति हुये थे। इसी प्रकार अनेक पुरुषों के नाम पक्षिनामसदृश थे, यथा—शुक, कपोत, भरद्वाज, हंस, तित्तिरि, कपिञ्जल, श्येन इत्यादि।

वैयासकि पाराशर्यपुत्र का नाम शुक प्रसिद्ध था। अनेककथाओ मे वैयासकि शुक को तोतारूप में चित्रित किया है। एक ऋषि का नाम कपोत था। वेद में कपिञ्जल आदि भी ऋषियो के तुल्य प्रतीत होते हैं।[1] कपिञ्जल तीतर को कहते हैं। व्यासशिष्य प्रसिद्ध वैदिक ऋषि वैशम्पायन के एक प्रधान शिष्य तित्तिरि थे। इससे विष्णुपुराण[2] मे एक भ्रान्तिजनक कथा घड़ ली। भरद्वाज एकपक्षी का नाम होता है, जिसे हिन्दी मे भारद्वल कहते है।

इसी प्रकार अनेक अन्य पशुपक्षियो के नामवाले पुरुषो के नाम विशाल संस्कृत वाङ्मय मे मृग्य है, जिससे भ्रान्तिनिराकरण मे सहायता हो। यहाँ थोड़े से उदाहरण ही दिये गये है।

पर्वतनदीस्थाननामसाम्य से भ्रम

अनेक पर्वतों, नदियो, सरोवरो, तीर्थस्थानादि के नाम अनेक पुरुषो या स्त्रियो के नाम पर रखे गये और सभी जनपदों के नाम—यथा अंग, वंग, कलिंग, विदर्भ, अश्मक, अवन्ति, केरल, चोल, आन्ध्र, पुलिन्दादि सभी राजपुरुषो के नाम पर रखे गये, अनेक नगरों या राजधानियो के नाम भी राजाओं (शासकों) के नाम पर रखे गये, यथा श्रावस्त से श्रावस्ती, कुशाम्ब से कौशाम्बी, काशि से काशी, मधु से मथुरा इत्यादि। इन सभी का राजवंशों के प्रकरण में उल्लेख होगा। स्थाननामों मे सर्वाधिक भ्रम नदीनामसाम्य और पर्वतनामसाम्य से होता है—यथा हिमालय (पर्वत) जो, शिव के श्वसुर, पार्वती के पिता और नारद के मातुलेय (मामा के पुत्र) थे। पुराणो और कालिदास ने हिमालय पर्वतराज का ऐसा भ्रामक वर्णन किया है कि सामान्य पाठक ही नहीं अत्यन्त विज्ञजन भी 'पर्वतराज' को पहाड़ ही समझते हैं—

---

१. स्तुतिं तु पुनरेवेच्छन्निन्द्रो भूत्वा कपिञ्जलः। (वही ४।६३)

२. यजूंष्यथ विसृष्टानि याज्ञवल्क्येन वै द्विज।
जगृहुस्तित्तिरा भूत्वा तैत्तिरीयास्तु ते ततः॥ (वि० पु० ३।५।१२)

"अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।"[१]

वास्तव में यह 'पर्वत' पत्थर का पहाड़ नहीं, दक्ष प्रजापति का वंशज हिमालयप्रदेश का 'राजा' था। शतपथब्राह्मण (२।४।४।१-६) में एक राजा—दक्षपार्वति का उल्लेख है, यह दक्ष, इसी पर्वतराज का पुत्र था। पर्वतप्रदेश का राजा होने से राजा का नाम भी 'पर्वत' पड़ गया और उत्तरयुगों में यह भ्रम हो गया कि पर्वतसंज्ञकपुरुष पहाड़ ही था। राजा पर्वत की पुत्री होने से भवानी (भवपत्नी) का नाम पार्वती (उमा) प्रसिद्ध हुआ। यही पार्वतीपिता पर्वतऋषि होकर नारद के साथ भ्रमण करता था, यथा षोडशराजोपाख्यान (द्रोणपर्व महाभारत) में इन्हीं पर्वतनारद का उल्लेख है। ऐतरेयब्राह्मण के वर्णन के अनुसार पर्वतनारद ऋषिद्वयी ने हरिश्चन्द्र[२] को उपदेश दिया, इन्हीं दोनों ऋषियों ने आम्बष्ट्य राजा और औग्रसेनि युधांश्रोष्टि[3] का यज्ञ कराया।

नदियों के नाम यथा नर्मदा, गंगा (भगीरथी), यमुना, कौशिकी, सरस्वती इत्यादि अनेक नदियों के नाम राजकन्याओं या ऋषिकन्याओं के नाम पर प्रथित हुये। यथा दध्यङ् आथर्वण (दधीचि) की पत्नी[४] का नाम सरस्वती था जिसके नाम पर संभवतः नदी का नाम पड़ा। सरस्वती के पुत्र होने के कारण नवम व्यास अपान्तरतमा 'सारस्वत' कहलाये, जो शिशु आंगिरस भी कहलाते थे, वे ही सारस्वतवेद के उद्धारक या शैशवसामसंहिता के भी प्रवर्तक थे।[५]

वैवस्वत यम की भागनी यमी या यमुना थी, जिससे यमुना नदी का नाम पड़ा। विश्वामित्र की भगिनी कौशिकी के नाम से कौशिकी नदी का नाम पड़ा। मान्धाताऐक्ष्वाकपुत्र पुरुकुत्स का नाम तपस्या करते हुये पड़ा, पर्वतकन्या या नागकन्या नर्मदा से विवाह किया, इसलिए कुत्सित (निन्दित) कर्म करने के कारण राजा का नाम पुरुकुत्स हुआ।[६] नर्मदा के नाम से नदी का नाम पड़ा। मूर्खजन इन नामसाम्यों से भ्रम में पड़ जाते हैं।

---

१. कुमारसम्भव (१।१),
२. ऐ० ब्रा० (७।१३),
३. ऐ० ब्रा० (८।२१),
४. तथाङ्गिरा रागपरीतचेतः सरस्वतीं ब्रह्मसुतः सिषेवे।
सारस्वतो यत्र सुतोऽस्य जज्ञे नष्टस्यवेदस्य पुनः प्रवक्ता ॥ (बु० च०)
५. तथा द्रष्टव्य हर्षचरित में बाणवंशवर्णन।
६. पुरुकुत्सः कुत्सितं कर्म तपस्यन्नपि मेकलकन्यामकरोत्
(हर्षचरित ३ उच्छ्वास)।

नदीनामों में सर्वप्रथम भ्रम गंगा या भागीरथी के नाम से होता है, जो कौरव राज शान्तनु की पत्नी और भीष्म की माता थी, इसको महाभारत में ही इस प्रकार चित्रित किया है, जैसे की वह जलमयी नदी हो,[1] वास्तव में वह कोई राजकन्या थी, जिसका नाम गंगा था, जिससे भीष्म गांगेय कहलाते थे। इसी का नाम दृषद्वती या माधवी भी था।

पुराणों में निम्नलिखित विचित्र या अद्भुत वर्णनों से इतिहास में भ्रम या बाधा या अश्रद्धा (अविश्वास) होती है, अतः इनका समाधान आवश्यक है—

(१) योनिसमस्या। (६) आयुसमस्या
(२) पंचजनसमस्या। (७) मन्वन्तर-युगसमस्या-दिव्यमानुषयुग।
(३) वरदानशापसमस्या। (८) राज्यकालसमस्या।
(४) भविष्यकथनादिसमस्या (९) संवत्समस्या।
(५) अद्भुत या असंभव घटना।

अब इन समस्याओं का संक्षेप में उल्लेख कर समाधान करेंगे।

योनिसमस्या

प्राचीन भारतीय इतिहास की एक विकट समस्या है कि नाग, किंनर, वानर, सुपर्ण, ऋक्ष, कपि, प्लवंगम, किम्पुरुष गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य, दानव, देव जैसी जातियों को मनुष्येतर समझा जाता है। परन्तु, अब प्रायः सभी एकमत हैं कि पुराणादि में वर्णित नागादि सभी मनुष्य ही थे और मनुष्यों के समान ग्रामों एवं नगरों में बस्तियाँ बसाकर और भवनादि बनाकर रहते थे।

नागजाति निश्चय ही मनुष्यतुल्य प्राणी थी, वे साँप नहीं थे, इसका प्रमाण है अनेक नागकन्याओं का विवाह अनेक राजर्षियों एवं ऋषियों से हुआ। कुछ प्रसिद्ध उदाहरण हैं, नागकन्या नर्मदा का ऐक्ष्वाक पुरुकुत्स से, रामपुत्र कुश का विवाह नागकन्या कुमुद्वती से और वासुकिनाग की भगिनी का विवाह जरत्कारु ऋषि से हुआ। इसी प्रकार के अनेक तथ्य इतिहासपुराणों में उल्लिखित हैं। जनमेजय का नागयज्ञ इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना थी, जिसमें सहस्रों नागपुरुषों का वध हुआ। श्रीकृष्ण ने बाल्यकाल में यमुनातट पर प्रसिद्ध कालियनाग का दमन किया। नागों राजाओं ने अनेक नगर बसाये। गुप्तकाल

---

१. अथ गंगा सरिच्छ्रेष्ठा समुपायात् पितामहम् (महाभारत १।९६।४)
महाभिषं तु तं दृष्टवा नदी··। (१।९६।९ वही)
तामूचुर्वसवो देवाः शप्त स्मो वै महानदि। (१।९८।१२, वही)

तक नागों का इतिहास ज्ञात होता है। महाभारतयुग में गंगातट पर नागों की बस्तियाँ थीं, जहाँ वे घर बनाकर रहते थे—

> बहूनि नागवेश्मानि गंगायास्तीर उत्तरे।
> यस्य वासः कुरुक्षेत्रे खाण्डवे चाभवत् पुरा॥
> कुरुक्षेत्रं च वसतां नदीमिक्षुमतीमनु।
> जघन्यजस्तक्षकस्य श्रुतसेनेति विश्रुतः॥[1]

नाग इन्द्रप्रस्थ (खाण्डवप्रस्थ=दिल्ली) में यज्ञ किया करते थे—'एते वै सर्पाणां राजानश्च राजपुत्राश्च खाण्डवप्रस्थे सत्रमासत पुरुषरूपेण विषकामाः।"[2] आज भी दिल्ली के निकट 'नांगलोई' नाम का ग्राम है, जो 'नागलोक' शब्द का विकार है, इसी 'नागलोक' में दुर्योधन ने भीम को विष के लड्डू खिलाये थे, जहाँ नागों ने भीम पर आक्रमण किया, परन्तु भीम बच गये।[3] आज भी भारत मे नागजाति प्रसिद्ध है। बंगाल मे पुरुषों के नागनामान्तगोत्र हैं।

रामायण महाभारत में वर्णित वानर, ऋक्ष, कपि, हरि, प्लवगम, किन्नर, किंपुरुस, यक्षराक्षस, गन्धर्वादि एवं सुपर्ण (गरुड़-जटायु आदि) भी मनुष्यजाति की विभिन्न नस्लें प्रतीत होती है। यह सम्भव है कि इन जातियों में कुछ जातियाँ 'कामरूप' हों अर्थात् इच्छानुसार रूप बना सकती थी, यथा नागों के विषय में कहा गया है कि वे कामरूप अर्थात् इच्छानुसार रूप बना सकते थे। अथवा वानरों का पूरा शरीर तो मनुष्यतुल्य ही था केवल पूँछ उनमें अतिरिक्त विशेषता थी, क्योंकि इतिहासपुराणो में वानरों की पूँछ का इस प्रकार उल्लेख है कि उस पर सहसा अविश्वास नही किया जा सकता। अभी हाल मे, १२ मई ८२ के नवभारत टाइम्स मे 'क्या पूँछ वाले मानव का अस्तित्व है' लेख श्री सुरेन्द्र श्रीवास्तव का प्रकाशित हुआ है, जिसमें बताया गया है कि मलाया, लाओस इत्यादि हिन्दचीन के देशों मे पूँछवाले मनुष्यों की चर्चा बहुधा सुनी जाती है, तिब्बत, लंका आदि मे भी ऐसे मनुष्यो का अस्तित्व देखने सुनने में आया है। प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलो ने लिखा है—"यहाँ के निवासियों की पूँछें हैं कुत्तों जैसी, पर उन पर बाल बिल्कुल नही हैं।" टर्नर नामक यात्री ने तिब्बत में पूँछवाले जंगली मनुष्य देखे थे, जिनकी पूँछ इतनी सख्त थी कि उन्हें भूमि

---

१. महा (१।३।१३६, १४१),
२. बौधायनश्रौतसूत्र (१७।१८),
३. आक्रामन्नागभवने तदा नागकुमारकान्।
पोथयमास तान् सर्वान् केचिद्भीताः प्रदुद्रुवुः॥ महा० १।१२७।५५, ५६

पर बैठने से पहिले गड्ढा खोदना पड़ता था । महाभारत में वर्णित है कि भीम ने हिमालय प्रदेश (तिब्बत) में पूंछ बिछाये हुये हनुमान् के दर्शन किये थे—

जृम्भमाणः सुविपुलं शक्रध्वजमिवोच्छ्रितम् ।
आस्फोटयच्च लांगूलमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥[1]

वानरों का पीला रंग होने के कारण हरि और कपि कहा जाता था, वे तैरना विशेषरूप से जानते थे, अतः उन्हें 'प्लवंगम' कहा जाता था । ये मनुष्य के तुल्य ही थे अतः वानर, किंनर और किंपुरुष कहा जाता था । इनमें केवल पूंछ की विशेषता थी, शेष सभी प्रवृत्तियाँ भाषा बोलना, विवाह करना, घरों में रहना इत्यादि सब कुछ मनुष्यों की भाँति था, अतः रामायणकाल में पूंछ वाले मानव (वानर) पृथ्वी पर बहुसंख्या में, विशेषतः नगर बसाकर पर्वतों एवं जंगलों में रहते थे ।[2] ऋक्ष भी वानरों का एक कुल था । रामायण में ऋक्षराज जाम्बवान् को बहुधा वानर भी कहा गया है—

............प्लवगर्षभः ॥

जाम्बवानुत्तमं वाक्यं प्रोवाचेदं ततोऽङ्गदम् ॥
संचोदयामास हरिप्रवीरो हरिप्रवीरं हनुमन्तमेव ॥
ततः कपीनामृषभेण चोदितः प्रतीतवेगः पवनात्मजः कपि ।[3]

उपर्युक्त श्लोकों में प्लवगर्षभः हरिप्रवीर, कपिऋषभ जाम्बवान् के विशेषण हैं अतः ऋक्षों और वानरों में कोई विशेष अन्तर नहीं था, वे भी मनुष्यतुल्य ही थे ।

यही सम्भव है कि देवयुगीन सुपर्णजाति भी पक्षयुक्त मनुष्य ही हों । सुमेर आदि अन्य प्राचीनदेशों की पौराणिक कथाओं में पंखयुक्त देवों या मनुष्यों की कथायें वर्णित हैं, अतः सम्भावना है कि सुपर्ण पक्षयुक्त मानव थे, देवयुग में गरुड़ सुपर्णों का राजा था, शतपथब्राह्मण में तार्क्ष्य वैपश्यत (गरुड़ के वंशज विपश्यत का पुत्र) को सुपर्णों का राजा कहा गया है ।[4] रामयुग में इस जाति के

---

१. महाभारत (३।१४६।७०)

२. हृष्टपुष्टजनाकीर्णा पताकाध्वजशोभिता ।
बभूवनगरी रम्या किष्किन्धा गिरिगह्वरे ॥ (रामा० ४।२६।४१)

३. रामा० (४।६५, ३३, ३५), वही (४।६६।३८),

४. श० ब्रा० (१३।४।३।१३)
"तार्क्ष्यो वैपश्यतो राजेत्याह तथा वयांसि विशः ।"
"तानुपदिशति पुराण...वेदः ।" (श० ब्रा०)

इक्का-दुक्का निदर्शनमात्र प्रतिनिधि अवशिष्ट रह गये थे—जटायु और सम्पाति। सुपर्णों के उड़ने के अतिरिक्त शेषकार्य मनुष्यतुल्य ही थे—यथा मानुषी-वाक् में बोलना।[1]

यक्ष, राक्षस, दैत्य, दानव, नाग, गन्धर्व आदि सभी मनुष्य ही थे, इसी प्रकार इन्द्रादिदेव भी पृथ्वीवासी मनुष्य थे, यह सब इतिहास, विस्तार से अग्रिम अध्यायों में, उनका कालनिर्णय करते समय लिखा ही जायेगा।

उत्तरकाल में इन्ही यक्षादि की संज्ञा किरात, निषाद आदि हुई। इनमें किरात वर्तमान मंगोलनस्ल के थे, निषाद हब्सी, पिग्मी जैसी जाति थी। निषादों के साथ यक्ष राक्षस अफ्रीका एवं पूर्वी द्वीपसमूह तथा लंका, अण्डमान निकोबार आदि देशों में रहते थे।

यक्षराक्षसों की उत्पत्ति के साथ उनके मूलनिवासस्थान का निर्णय करना भी कठिन समस्या है।

रामायण में राक्षसों के द्वीप या देश का नाम कहीं नहीं मिलता, केवल द्वीप की राजधानी लंका का बारम्बार उल्लेख है।[2] रामायण में सुन्दरकाण्ड के नामकरण का यह रहस्य प्रतीत होता है कि द्वीप का नाम 'सुन्दद्वीप' था क्योंकि रावण से पूर्व राक्षसेन्द्र 'सुन्द' उस द्वीप का अधिपति था। प्राचीन पाठों में काण्ड का नाम 'सुन्दकाण्ड' होना चाहिए, क्योंकि प्रायः शेषकाण्डों के नाम भौगोलिक स्थानों के नाम पर हैं, सुन्दरता से सुन्दरकाण्ड का कोई सम्बन्ध नहीं। उत्तरकाल में सुन्दद्वीप की विस्मृति होने से इस काण्ड को सुन्दरकाण्ड कहने लगे। लंका और सिंहल का पार्थक्य हिन्दी कवि जायसी तक को ज्ञात था, अतः सिंहल और लंका पृथक्-पृथक् द्वीप थे। ऐसी सम्भावना है, लंकानगरी सम्भवतः पूर्वी द्वीपसमूह में कोई में द्वीप थी, क्योंकि हनुमान् का लंका की ओर प्रयाण महेन्द्र पर्वत[3] (उड़ीसा) से प्रारम्भ हुआ था, इधर से पूर्वी द्वीपसमूह निकट है, न कि सिंहलद्वीप। यद्यपि सिंहलद्वीप लंका भी हो सकती है।

---

१. रामा० (३।६७)।

२. अध्यास्ते नगरीं लंकां रावणो नाम राक्षसः।
इतो द्वीपे समुद्रस्य सम्पूर्णे शतयोजने।
तस्मिल्लंका पुरीरम्या निर्मिता विश्वकर्मणा ॥ (रा० ४,५८।१९,२०)

३. ततस्तु मारुतप्रख्यः स हरिर्मारुतात्मजः।
आरुरोह नगश्रेष्ठं महेन्द्रमरिमर्दनः। (रामा० ४।६७।३९)

अगस्त्य की स्मृति भी पूर्वी द्वीपसमूह में विद्यमान है जहाँ 'भट्टगुरु' के नाम से उनकी पूजा होती है। राम से पूर्व अगस्त्य और पौलस्त्य ब्राह्मणों ने अनेक पूर्वी द्वीपसमूहों की राजा तृणबिन्दु के साथ यात्रा की थी। अगस्त्य द्वारा समुद्र को पीने का तात्पर्य यही है कि उन्होंने दक्षिणी समुद्र (हिन्दमहासागर) की दूर-दूर यात्रायें की थीं, और असुरसंहार में देवों की सहायता की।[1] अगस्त्य ने अपने दक्षिणाभियान में यक्षराक्षसों को सुसंस्कृत किया। पुलस्त्य ने यक्ष-राक्षसों से वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित किये।[2] पुलस्त्य के वंश में वैश्रवण कुबेर यक्षराज और राक्षसराज रावणादि उत्पन्न हुये।

पंचजन या दशजन

इस समस्या का पूर्व पृष्ठ ५५ पर उल्लेख कर चुके हैं, इन जातियों का अधिक विस्तृत वर्णन आगामी अध्यायों में करेंगे।

वरदान-शाप समस्या

इतिहासपुराणो में वरदानों और शापों की शततः घटनायें उल्लिखित हैं, जिन सबकी सत्यता पर विश्वास होना कठिन है। वरदानों और शापों की समस्त घटनाओं का उल्लेख न तो यहाँ पर सम्भव है और न हमारा यह उद्देश्य है। हमारा उद्देश्य केवल इस समस्या की ओर ध्यान आकर्षित करना है।

वरदान का मुख्य या मूल अर्थ था कि प्रसन्न होकर श्रेष्ठ वस्तु का दान देना, जैसे राजा दशरथ ने देवासुरसंग्राम में कैकयी की सहायता से प्रसन्न होकर दो वर दिये।[3] वरदान की यह घटना सत्य है। परन्तु ब्रह्मा द्वारा रावणादि को अवध्यतादि[4] के वरदान अथवा देवों द्वारा हनुमान् को वरदान[5]

---

१. समुद्रं स समासाद्य वारुणिर्भगवानृषिः।
समुद्रमपिबत् क्रुद्धः सर्वलोकस्य पश्यतः॥ (महा० १।१०५।१,३)

२. पुलस्त्यो नाम महर्षिः साक्षादिव पितामहः।
तृणबिन्दुस्तु राजर्षिस्तपसा द्योतितप्रभः।
दत्त्वा तु तनयां राजा स्वाश्रमपदंगतः। (रामा० ७।२।४, २८)

३. पुरा देवासुर युद्धे सह राजर्षिभिः पति;।
तुष्टेन तेन दत्तौ ते द्वौवरौ शुभदर्शने॥ (अयो० ९ सर्ग)

४. अवध्योऽहं प्रजाध्यक्ष देवतानां च शाश्वत (उत्तर० १०।१९),

५. वही (सर्ग ३६);

अथवा परशुराम की प्रार्थना पर जमदग्नि द्वारा रेणुका को पुनर्जीवित[1] करने का वरदानादि असत्य प्रतीत होते हैं।

सत्यहृदय से निकली आह कभी-कभी सत्य हो जाती है जैसे दशरथ के प्रति श्रमणकुमार के पिता की वाणी सत्य सिद्ध हुई कि तुम भी पुत्रवियोग में मेरे समान प्राण त्यागोगे।[2] परन्तु कुछ ऐसे अद्भुत शाप केवल गप्प प्रतीत होते हैं, जैसे देवयुग मे कद्रू ने अपने पुत्र नागों को यह शाप दिया कि तुम कलियुग मे जनमेजय के यज्ञ मे अग्नि में जलाये जाओगे—[3]

तत्र पुत्रसहस्रं तु कद्रूर्जिह्मं चिकीर्षती।
नावपद्यन्त ये वाक्यं तान्छशाप भुजंगमान्।
सर्पसत्रे वर्तमाने पावको वः प्रधक्ष्यति।
जनमेजयस्य राजर्षेः पाण्डवेयस्य धीमतः॥

महा० (१।२०।६, ७, ८)

परन्तु कुछ ऐसे शापो के विषय मे निर्णय करना कठिन है, जैसे अगस्त्य द्वारा नहुष को दशसहस्रवर्ष अजगर होने का शाप देना, यद्यपि युधिष्ठिरादि की अजगर से भेंट हुई, परन्तु यह पूर्वजन्म का नहुष था, यह दिव्यदृष्टि से ही जाना जा सकता है—

सोऽहंशापादगस्त्यस्य च ब्राह्मणानवमत्य च।
इमामवस्थामापन्नः···(वनपर्व १७६।१४)।

शाप का मूलार्थ था 'क्रुद्ध होकर गाली देना', परन्तु पुराणो मे शापों का जिस रूप मे वर्णन है, उसी रूप मे आज के युग मे उन पर विश्वास करना कठिन है। परन्तु जिस प्रकार के वरदान और शाप तथ्य हो सकते है, उसका संकेत पूर्व किया जा चुका है। सभी शापो या वरदानो पर विचार तत्तत्प्रकरण मे ही होगा।

भविष्यकथनादिसमस्या

भविष्यकथन, यद्यपि असंभव नही है, आज के युग मे भी दिव्यज्ञानसम्पन्न योगी या अतीन्द्रियपुरुष सत्य भविष्यवाणी कर देता है, अनेक सच्चे ज्योतिषी भी भविष्य जान लेते हैं। परन्तु पुराणो मे महाभारतोत्तरयुग के जिन कलियुगीन

---

१. स वव्रे, मातुरुत्थानमस्मृतिं च वधस्य वै (महा० ३।११६।५७),
२. तेन त्वामपि शप्स्येऽहं सुदुःखमतिदारुणम्
एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन् कालं करिष्यसि॥
(रामा० २।६४।५३, ५४)

राजवंशों[1] का वर्णन है वह भविष्यकथन नहीं होकर बाद में जोड़ा गया प्रक्षेप ही प्रतीत होता है। आज निश्चय ही भविष्यकथनसम्बन्धी वर्णन प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं, परन्तु प्राचीनयुगों में भविष्यज्ञ श्रुतर्षि एवं भविष्यपुराण की परम्परा सत्य प्रतीत होती है। पाराशर्यव्यास या पूर्व के श्रुतिर्षियों द्वारा कल्कि अवतार की भविष्यवाणी सत्य प्रतीत होती है,[2] यह भविष्यवाणी महाभारतकाल में ही कर दी गई थी। परन्तु वर्तमानपुराणों के उत्तरकाल मे अनेक बार संस्करण या प्रक्षेपण हो चुके हैं।

भविष्यकथन की एक बड़ी घटना सत्य नही होती तो आज मानवजाति उस जल प्रलय से नहीं बच सकती, जिसमें एक मत्स्य ने अथवा भविष्यज्ञों ने प्रलय से अनेकवर्ष पूर्व वैवस्वतमनु को जलप्रलय से बचने की तैयारी करने का[3] निर्देश दे दिया था। अतः दिव्यज्ञानी सत्यभविष्यकथन अवश्य करते थे, यह मानना पड़ेगा।

महाभारतयुग से पूर्व ही एक या अनेक भविष्यपुराण रचे जा चुके थे, जिनमें भविष्यज्ञश्रुतर्षिगण भविष्य की घटनाओं का वर्णन कर दिया करते थे। स्वयं वाल्मीकि ऋषि के प्रमाण से ज्ञात होता है कि ऋषि द्वारा रामायण रचना से बहुत पूर्व निशाकर ऋषि ने सम्पाति को रामाविर्भाव का इतिहास बता दिया था—

"पुराणे सुमहत्कार्य भविष्यं हि मया श्रुतम्।
दृष्टं मे तपसा चैवश्रुत्वा च विदितं मम॥"
राजा दशरथो नाम कश्चिदिक्ष्वाकुवर्धनः।
तस्य पुत्रो महातेजा रामो नाम भविष्यति॥
आख्येया राममहिषी त्वया तेभ्यो विहंगम।
देशकालौ प्रतीक्षस्व पक्षौ त्वं प्रतिपत्स्यसे॥[4]

रामायण का यह वर्णन काल्पनिक प्रतीत नही होता, अतः इससे भविष्य-

---

१. एतत्कालान्तरं भाव्यमाँध्रान्ताद्याः प्रकीर्तिताः।
भविष्यज्ञैस्तत्र संख्याताः पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः।
(ब्रह्माण्ड० ३।७४।२२६);

२. कल्की विष्णुयशानाम द्विजः कालप्रचोदितः।
उत्पत्स्यते महावीर्यो महाबुद्धिपराक्रमः॥ (वनपर्व १९०।९३)

३. द्रष्टव्य वनपर्व (१८७ अध्याय), श० ब्रा० (१।८।१)

४. रामायण (४।सर्ग ६२)

कथन की पुष्टि होती है। तथापि भविष्यपुराण के सभी भविष्यवर्णनों को वास्तविक भविष्यकथन नहीं माना जा सकता, यह प्रायः धूर्तवंचना ही है।

अद्भुत एवं असम्भव घटनायें

पुराणों में ऐसी अनेक अदभुत, विचित्र एवं असम्भव-सी प्रतीत होने वाली घटनाओं का वर्णन है, जिनपर तथाकथित आधुनिक वैज्ञानिक विश्वास नहीं करते। निश्चय ही अनेक घटनाओ को तोड़ा मरोड़ा गया है, कुछ को बढ़ा चढ़ाकर वर्णित किया है, परन्तु सभी अद्भुत घटनायें असम्भव हों, ऐसा आवश्यक नही है। जैसे कुछ प्राणियों का कामरूप (इच्छानुसार रूप) होना, स्वयम्भू से मानसी या अमैथुनी सृष्टि,[1] पुख या पक्षयुक्त मानव[2] (देव) या पुच्छयुक्त मनुष्य[3] (वानर), षडक्ष त्रिशिरा की उत्पत्ति[4], चतुर्भुज मनुष्य की उत्पत्ति[5] (यथा वामन विष्णु) त्र्यक्षमनुष्य[6] (यथा शिशुपाल) का जन्म, युवनाश्व के उदर से मान्धाता का जन्म[7] कुम्भकर्ण जैसे विशाल शरीरवाला राक्षस[8], कबन्ध[9] या कुबेर या अष्टावक्र जैसे विचित्र शरीर, कुम्भकर्ण का षण्मासशयन, पुष्पकादि विमानों का अस्तित्व।[10] ऐसी अनेक घटनाओ का पूर्ण आंशिकरूप सत्य था, क्योंकि आज के युग मे भी मनुष्ययोनि (स्त्री) से विचित्र आकार के प्राणी उत्पन्न होते देखे गए हैं, भले ही वे अधिक समय तक जीवित नही रहे हों। आज भी समाचारपत्रों मे यह समाचार पढते हैं कि अमुक युवक या युवती

---

१. ततोऽभिध्यायतस्तस्य मानस्यो जज्ञिरे प्रजाः। (ब्रह्माण्ड पु० ।।८।१);

२ महाभारत आदिपर्व मे नाग और सुपर्ण का जन्म (अध्याय १६),

३. रामायण मे वानरो की उत्पत्ति,

४ त्वष्टुर्ह वै पुत्रः। त्रिशीर्षा षडक्ष आस···विश्वरूपो नाम (श० ब्रा० १।६।३।१)

५. चेदिराजकुले जातस्त्र्यक्ष एष चतुर्भुजः। (महा० २।४३।१);

६. त्र्यक्षं चतुर्भुजं श्रुत्वा तथा च समुदाहृतम् (महा० २।४३।२१),

७. वामं पार्श्वं विनिर्भिद्य सुतः सूर्य इव स्थितः (महा० ३।१२६।२७),

८. कुम्भकर्णो महाबलः। प्रमाणाद् यस्य विपुलं प्रमाणं नेह विद्यते। (रामा० ७।६।३४)

९. सक्थिनी च शिरश्चैव शरीरे संप्रवेशितम्। (रामा० ३।७१।११) विबुद्धमाशिरोग्रीवं कबन्धमुरेमुखम् (रामा० ३।६६।२७);

१०. पुष्पकं तस्य जग्राह विमानं जयलक्षणम्। मनोजवं कामगमं कामरूपं विहंगमम्॥ (रामा० ७।१५।३८, ३६);

का योनिपरिवर्तन (यानी लड़की का लड़का होना या लड़के की लड़की होना) हो क्या या ही रहा है जबकि सुद्युम्न का इला होने पर और शिखण्डी का शिखण्डिनी होने पर हम अविश्वास करते हैं। मानुष उदर से भ्रूण उत्पन्न होने के समाचार भी प्रकाशित हुए हैं।

ऐसी अनेक सत्य घटनाओं की सम्भावना के बावजूद पुराणों मे अनेक अति-रंजित काल्पनिक घटनाओं का वर्णन है, जैसे कुम्भकर्ण द्वारा दो सौ महिषों का मांस[1] भक्षण, वसिष्ठ की गौशबली से शकयवनादिम्लेच्छों की उत्पत्ति, इल्व-लवातापि द्वारा मेष बनना, मारीच का मृग बनना इत्यादि घटनायें असम्भव हैं, परन्तु अन्तिम दो घटनाओं में आंशिक सत्यता यह है कि वे राक्षस माया (या कौशल) से पशु का चर्म आदि ओढकर पशुरूपधारण कर सकते थे, जैसे मारीच का हिरणरूप धारण करना।

अतः इतिहासपुराण की समस्त ऐसी विचित्रघटनाओं का नीरक्षीरविवेक करना आवश्यक है।

कालगणनासमस्या

इतिहासरूपीभवन की भित्ति है युगगणना और तिथियाँ या कालगणना, बिना सही कालगणना के पौराणिक इतिहास प्रायः मिथ्या ही समझा जाता है, यही एक महती बाधा है जिसको भगवद्दत्त जैसे विद्वान पूरी तरह सुलझा नहीं सके और अधर मे ही लटके रहे। इस समस्या को हमने पर्याप्तरूप मे हल कर लिया है, जिसका दिग्दर्शन कराना ही इस शोधग्रन्थ का प्रमुख विषय रहेगा। कालगणनासम्बन्धी प्रमुखतः ये समस्यायें हैं। (१) दीर्घायुष्ट्व, (२) कल्प, मन्वन्तर और युग, वर्ष (दिव्यमानुष युग-वर्ष), राज्यकालगणना एवं संवत्-कलिसंवदादि-निर्णय।

इस प्रकरण में कालगणनासम्बन्धी समस्याओं के प्रति उनकी विकटता या काठिन्य का संकेतमात्र करना भर है, इन समस्याओं का विस्तृत विवेचन और समाधान अग्रिम अध्यायों में होगा।

---

१. पीत्वा घटसहस्रे द्वे (रा० ६।६०।६३)

२. असृजत् पह्लवान् पुच्छात् प्रस्रवाद् द्रविडाञ्छकान्।
योनिदेशाच्च यवनान् शकृतः शबरान् बहून्॥ (महा० २।१७४।३६)

३. भ्रातरं संस्कृतं कृत्वाततस्वं मेषरूपिणम् (रामा० ३।११।५७)
मेषरूपी च वातापिः कामरूप्यभवत् क्षणात् (महा० ३।९९।८)

वर्तमानपुराणपाठों के अनुसार न केवल कल्पमन्वन्तरयुगादि लाखों, करोड़ों कि वा अरबों वर्षों के थे, वरन् ऋषिमुनियों का जीवन भी लाखों करोड़ों वर्षों का था, दश-दश सहस्र या लाख-लाख वर्ष तपस्या करना तो उनके लिए पलक झपने के तुल्य था, और एक-एक राजा का राज्यकाल दस हजार से कम तो होता ही नहीं, किसी-किसी राजा का राज्यकाल साठ हजार वर्ष, अस्सी या नब्बे हजार वर्ष, यहाँ तक कि हिरण्यकशिपु जैसों का राज्यकाल लाखों वर्ष का होना बताया गया है, उसने तप ही एक लाख वर्ष तक किया ।[1] ऐसे अतिरंजित एवं असम्भाव्य वर्णनों में किसी भी सचेता मनुष्य की अश्रद्धा होना स्वाभाविक है । परन्तु, ऐसे अविश्वसनीय वर्णनों का कारण क्या है, यह पुराणकारों ने जानबूझकर किया या अज्ञानवश किया । अधिकांशतः ऐसे वर्णन भ्रम या संशयज्ञान की उत्पत्ति है, जान बूझकर ऐसे वर्णन प्रायः नहीं किये गये । केवल साम्प्रदायिक मतान्धवर्णन ही जान बूझकर किये गये हैं ।

इस संशयज्ञान या भ्रम के मूल में था—दिव्य, दैवी या दैव वर्षों या युगों की कल्पना । अब इस मूलभ्रान्ति पर प्रहार करेंगे, जिससे कि घोरतम का निवारण होकर सूर्यरूपी निर्मलज्ञान का प्रकाश प्रस्फुटित होगा ।

दिव्यकालगणना से भ्रान्ति

वर्षगणना मे भ्रम का मूल तैत्तिरीयब्राह्मण का यह वाक्य था—"वर्षं देवानांयदहः ।[2]" मनुस्मृति में १२००० वर्षों का दैवयुग माना है ।[3] यहाँ ये वर्ष मानुषवर्ष ही हैं । पुराणों की मूलगणना (मूलपाठों में) मानुषवर्षों में ही थी—जैसा कि बार-बार उल्लिखित है—

> त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः ।
> त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि मत सप्तर्षिवत्सरः ।
> पित्र्य. संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते ।

मूल में 'दिव्यसंवत्सर' 'सौरवर्ष' का नाम था, क्योंकि सूर्य को ही 'द्यु' कहते हैं । सूर्य या 'देव' से सम्बन्धित वर्ष ही 'दिव्यसंवत्सर' था, सप्तर्षियों का युग २७०० वर्ष का होता था, उसे भी 'दिव्यगणना' के अनुसार कहा गया है—

---

१. शतं वर्षसहस्राणां निराहारो ह्यधशिराः ।
 वरयामास ब्रह्माणं तुष्टं दैत्यो वरेण ह ॥ (ब्रह्माण्ड० २।३।३।१४);

२. तै० ब्रा०

३. एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते (मनु० १।७१)

४. वायुपुराण (५७।१७),

"[illegible]विना युग ह्य तद्दिव्यया संख्यया स्मृतम् ।"[1] उत्तरकाल मे इस 'दिव्यवर्ष' (सौरवर्ष) को भ्रम से ३६० वर्षों का माना गया—

त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणियानि तु ।
दिव्यसंवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः ।।[2] (पाठत्रुटि)

पुराणों के उपर्युक्त प्रमाणों को देखकर पं० भगवद्दत्त ने लिखा—'इस प्रकरण के सब प्रमाणों से मानुष और दिव्य संख्या का स्वल्प सा अन्तर दिखाई पड़ता है ।[3] भ्रम का मूल यही 'दैव'—या 'दिव्य' शब्द था जो मूल्य में 'सौर' वर्ष था । मनुस्मृति में साधारण मानुषवर्षों का ही दैवयुग माना गया है, उसको उत्तरकालीनटीकाकारों ने भ्रमवश ३६० का गुणा करके भ्रामक एवं मिथ्या-गणना की । आर्यभट्ट के समय तक 'युग' और 'युगपाद' समान (१२०० वर्ष) के माने जाते थे, प्राचीन ईरानी साहित्य मे द्वादशवर्षसहस्रात्मकदैवयुग को समानकालिक (३००० वर्ष के) चार युगों में विभक्त किया गया था—"Four ages or periods of Trimillannia......according to the Budohishan Time was for Twelve thousand years (A Dict. of comp. Relegion by S. G. F. Brandon p. 47).

बेबीलन देश में दिव्यवर्ष गणना

In Eridu Alulum became king and reingned 28800 years, Alalagar reingned 36000 years.

Five Cities were they. Eight Kings reigned 211200 years. (The greatness that was Babylon p. 35 by. H.W.F. Saggs).

आर्यभट्ट के समय 'युग' और युगपाद (१२०० वर्ष) समान माने जाते थे, परन्तु ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट्ट का खंडन किया ।[4] वास्तव मे ब्रह्मगुप्त ने युगपादों के रहस्य को समझा नही । आर्यभट्ट का मत ठीक था कि प्राचीनयुगों में युगपाद समान थे । बैरोसस के अनुसार ८६ राजाओं ने ३४०६० वर्ष राज्य किया और १० राजाओं (या राजवंशो) ने ४ लाख ३ हजार वर्ष राज्य किया ।

(विश्व की प्रा० सभ्यता पृ० ५०)

---

१. वायु० (९९।४१९),
२. ब्रह्माण्ड (१।२।२८।१६),
३. भा० वृ० इ० प्र० भाग पृ० १६५ ।
४. न समा युगमनुकल्पाः कल्पादिमतं कृतादियुगानि तंच ।
स्मृत्युक्तैरार्यभटो नातो जानाति मध्यगतिम् ।। (ब्रह्मस्फुटसि०)

दशराजाओं का राज्यकाल=४०३००० वर्ष (दिन)=१११० वर्ष; पुराणों और बेरोसस की 'दिव्यवर्षगणना' का ऐतिहासिक अर्थ, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। अथर्ववेद[1], मनुस्मृति[2] और वायुपुराणादि से ज्ञात होता है चतुर्युग साधारण वर्षों (क्रमशः एक सहस्र, द्विसहस्र, त्रिसहस्र और चतुःसहस्र) वर्षों के थे।[3] महाभारत में स्पष्ट लिखा है कि नहुष, जो कृतयुग के आदि में हुए, से युधिष्ठिर, जो द्वापर के अन्त और कलियुग के आरम्भ में हुए, केवल दशसहस्रवर्ष व्यतीत हुए।[4] यदि ये युग तथा कथित दिव्यवर्षों के होते तो नहुष से युधिष्ठिरपर्यन्त लाखों मानुषवर्ष व्यतीत होते।

पुराणों में भ्रामकगणना का एक और महान् कारण है, जिसका अनुसंधान महती सूक्ष्मेक्षिका का कार्य है।

पुराणों में २८ किंवा युगों या परिवर्तों (परिवर्तनों) में २८ या ३० व्यास हुए, ये २८ या व्यास क्रमशः युगानुयुग होते रहे। एकयुग में एकव्यास का अवतरण हुआ। वेदों में दिव्य और मानुष युगों का उल्लेख है इसमें दिव्ययुग ३०० या ३६० वर्ष का और मानुषयुग १०० वर्ष का होता था। यह हमारी कल्पना नहीं, ब्राह्मणग्रन्थों में लिखा है—कि प्रजापति (कश्यप) ने देवों से कहा है कि तुम्हारी आयु ३०० वर्ष की होती है अतः यह सत्र ३०० वर्षों में समाप्त करोगे—"देवान्नब्रवीदेतानि यूयं त्रीणि शतानि वर्षाणां समापयथेति।"[5] ऋग्वेद में लिखा है—'दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे।[6] अर्थात् दीर्घतमा दश (मानुष) युग जीवित रहा। इसकी व्याख्या शांख्यायन ने इस प्रकार की है—"तत उ ह दीर्घतमा दश पुरुषायुषाणि जिजीव" (शां० ब्रा २।१७), मनुष्यायु (पुरुषायु मानुषयुग) १०० वर्ष होती है—

> शतं वर्षाणि पुरुषायुषो भवन्ति (ऐ० ब्रा०)
> "शतायुर्वै पुरुषः।" (श० ब्रा० १२।४।११।१५)

---

१. अथर्व० (८।२।२१) तेयुऽतं हायनान्···॥
२. मनुस्मृति (१।६९-७१) इत्यादि श्लोक चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां कृतं युगम्।
३. वायु० (५७।२२-२९) अत्र संवत्सरासृष्टा मानुषेण प्रमाणतः)।
४. दशवर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महान्। विचरिष्यसि पूर्णेषु पुन. स्वर्गमवाप्स्यसि॥ (उद्योगपर्व १७।१५)
५. जै० ब्रा० (१।३),
६. ऋ० (१।१५८।६)।

स्पष्ट है कि दशपुरुषायु=दशमानुषयुग=१००० वर्ष तक दीर्घतमा जीवित रहा। इसका कोई दूसरा अर्थ हो ही नहीं सकता। अतः मानुषयुग १०० वर्ष का था और देवयुग ३६० वर्ष का था और इस प्रकार ३० व्यास ३० युगों (३६०×३०=१०८०० वर्ष) में हुए। अतः नहुषादि युधिष्ठिर से ठीक १०००० वर्ष पूर्व हुए थे।

पुराणों में उपर्युक्त परिवर्त या युग का मान ३६० वर्ष था, जो वेदों में एक दिव्य या देवयुग कहा जाता था। 'देवयुग' शब्द से पुनः भ्रम उत्पन्न हुआ, जिससे महायुग=चतुर्युग=१२००० (द्वादशसहस्र) वर्षों में ३६० का गुणा किया जाने लगा। इसी महान् भ्रम के कारण आजकल वैवस्वतमन्वन्तर का २८वां कलियुग माना जाता है।[1] जबकि वैवस्वत मनु महाभारतकाल से केवल ११ सहस्रवर्ष पूर्व हुए थे, २८ चतुर्युगों को बीतने की बात भ्रममात्र है।

'युगसमस्या' का पूर्ण समाधान अन्यत्र होगा। अतः यह विस्तार केवल स्पष्ट करने के लिये लिखा गया है कि युग, मन्वन्तर और कल्प की वर्षगणना में क्यों भ्रम उत्पन्न हुआ।

१३ मनु, वैवस्वतमनु से पूर्व हो चुके थे अथवा कुछ मनु वैवस्वत के समकालीन थे, अत १४ मनुओं में लाखों वर्षका अन्तर नहीं था, कुछ शताब्दियों का अन्तर ही था, यह 'विकासवाद' के खण्डनप्रसंग में लिख चुके हैं। अतः कल्प का वर्षमान केवल एक करोड़ बीस लाखवर्ष था न कि चार अरब वर्ष, जैसा कि वर्तमान पुराणों के आधार पर कुछ आधुनिक लेखक पृथ्वी की आयु मानने लगे हैं। यह भी सब भ्रम है, जिसका पूर्वप्रतिवाद हो चुका है।

उपर्युक्त दिव्यवर्षसम्बन्धी भ्रमनिवारण के साथ राजाओं के राज्यकालसम्बन्धी समस्या सुलझ जाती है। सर्वप्रथम दाशरथिराम के राज्यकाल[2] को ही लीजिए। उपर्युक्त भ्रम के प्रयास में ३० वर्ष ६ मास और २० दिन को दिव्य मानकर उनको ११००० मानुषवर्षों में परिणित कर दिया, वास्तव में उनका राज्यकाल ३० वर्ष (मानुष) ६ मास और २० दिन था।

बेबीलनदेश में दिव्यगणना सम्बन्धी परिपाटी या भ्रान्ति

भारतवर्ष में इतिहासपुराणों एवं ज्योतिषग्रन्थों (यथा सूर्यसिद्धान्त) में बहु

---

१. अब्दं दिव्ययुगमस्मात् यातमेतत्कृतं युगम् (सूर्यसिद्धान्त (१।२३)

२. दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति॥ (रामा० १।१)

'दिव्यगणनासम्बन्धी' परिपाटी प्रविष्ट किस काल में की गई इसका समय ठीक ज्ञात नहीं होता, तथापि बौद्ध और जैनग्रन्थों में भी यह गणनापद्धति प्रचलित थी, यथा निदानसंज्ञक ग्रन्थ में बुद्धघोष २४ बुद्धों की आयु इस प्रकार बताता है—

प्रथम बुद्ध—दीपंकर—आयु—एकलाख वर्ष (दिन) = २७७ वर्ष

द्वितीयबुद्ध कौडिन्य " " " = २७७ वर्ष

परन्तु कनिष्क समकालिक अश्वघोष के समयतक यह 'दिव्यगणना' पद्धति प्रचलित नहीं हुई थी, अतः उसने सामान्य मानुषवर्षों में पौराणिक व्यक्तियों का का समय लिखा है—

विश्वामित्रो महर्षिश्च विगाढोऽपि महत्तपः ।
दशवर्षाण्यहर्मेने घृताच्याप्सरसा हृतः ॥ (बुद्धचरित ४।२०)

परन्तु सूर्यसिद्धान्त में दिव्यवर्षगणनापद्धति मिलती है, और मनुस्मृति, महाभारत में नही। परन्तु पुराणों में यह पद्धति प्रविष्ट कर दी गई—न्यूनतम विक्रम से पूर्व तीन शती पूर्व। क्योंकि बैबीलन के प्रसिद्ध इतिहासकार बैरोसिस ने जो विक्रम से लगभग तीन शतीपूर्व हुआ, राजाओं का राज्यकाल, भारतीय-पुराणों के सदृश दिव्यवर्षों में लिखा है। पूर्व पृ० ९६ पर आधुनिक इतिहासकार सेग्जस (saggs) के सन्दर्भ से लिखा जा चुका है कि बैबीलन के दो राजाओं ने कुल ६४८०० वर्ष राजा किया—राज्य एललम (इलिल भरतपूर्वज ९८८०० वर्ष २८८०० दिन)

राजा अलालगर = ३६००० दिन दिन
योग = ६४८०० वर्ष = १८० वर्ष

दाशरथिराम के उदाहरण से समझा जा सकता है कि २८८०० दिनों के ८० वर्ष और ३६००० दिन के १०० वर्ष होते हैं अतः दोनों राजाओं का कुल राज्यकाल केवल १८० वर्ष (सौरवर्ष) था।

इसी प्रकार बैरोसस ने प्रलयपूर्व के ८ राजाओं का राज्यकाल २४१२०० वर्ष (दिन) बताया है, अतः उनका राज्यकाल केवल ६७० वर्ष हुआ।

अतः उपर्युक्त गणना भारत और बैबीलन में अश्वघोष के पश्चात् प्रचलित हुई अतः इस प्रकार से अश्वघोष का समय बैरोसस के पूर्व, लगभग चार शती विक्रमपूर्व निश्चित होता है।

इसी महती भ्रान्ति के कारण, रामायण मे १६ वर्ष के एक बालक की

आयु पाँचसहस्रवर्ष[1] बताई है, भला बालक भी पाँचहजारवर्ष का हो सकता है, इससे आक्षेपकारों की भ्रान्ति उद्घाटित होती है।

कुछ अन्य राजाओं का राज्यकाल पुराणों ने इस प्रकार उल्लिखित है—

भरत दौष्यन्ति का राज्यकाल = २७००० वर्ष = ७५ वर्ष, ४ मास

सगर ,, = ३०००० वर्ष = ८३ वर्ष, ४ मास

अत: भरत दौष्यन्ति ने लगभग ७५ वर्ष और सगर ने ८३ वर्ष राज्य किया। यह राज्यकाल प्राचीनयुग के मानव के लिए पूर्ण सम्भव, अत: सत्य है। सुमेर और बेबीलन के अनेक प्रारम्भिक राजाओं का राज्यकाल भी इसी प्रकार लगभग १००-१०० वर्ष के आसपास था, द्रष्टव्य पृष्ठ ९६।

ऋषियों का दीर्घायुष्ट्व

योगसिद्धि एव रसायनविद्या के अभाव में दीर्घायुष्टव् के रहस्य को नही समझा जा सकता। प्राचीनयुगों में मनुष्य विशेषत: देवसंज्ञकमनुष्य और ऋषि दीर्घजीवी होते थे। वेद, पुराण, अवेस्ता और बाइबिल में दीर्घायुष्ट्व के प्रमाण मिलते है। आज रूस में लगभग २०० वर्ष आयु के अनेक पुरुष जीवित हैं। अत: दीर्घजीवन में अविश्वास करना सर्वथा अलीक है। दीर्घायु पूर्णत: सम्भव एवं सत्य ऐतिहासिक तथ्य था।

नारद, परशुराम, अगस्त्य, मार्कण्डेय, लोमश, दीर्घतमा, भरद्वाज आदि की दीर्घायु आज के तथाकथित वैज्ञानिको के लिए दुर्गम समस्या है। पाश्चात्य-लेखकगण तो पुराणो के इतिहास पर विश्वास ही नही करते, परन्तु जो विश्वास करते थे, वे भी दीर्घजीवन के रहस्य को न समझकर मिथ्यालेखन करते रहे, यथा पार्जीटर का मत द्रष्टव्य है—"प्राय: ऋषि अनेक कालों (युगों) में दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु क्षत्रियराजा कालक्रम को भंग कर उपस्थित नहीं होता।"[2]

वेदमन्त्र के प्रमाण (ऋ० १।१५८।६) से पिछले पृष्ठ पर लिखा जा चुका

---

१. अप्राप्तयौवनं बालं पंचवर्षसहस्रकम्। अकाले कालमापन्नम्...॥
(अप्राप्तयौवन का अर्थ है यौवन के निकट, यह १५ वर्ष का ही सम्भव है, पाँच वर्ष का नही (रामा० ७।७३।५)

2. It is generally rishis who appear on such Occasions in defiance of chronology and rarely that Kings so appear (A.I, H, T. by Pargiter p. 141),

है कि दीर्घतमा एकसहस्रवर्ष तक जीवित रहा। वैदिककल्पसूत्रों एवं ब्राह्मण-ग्रन्थों में उल्लिखित है कि दश विश्वसृज (प्रजापतियों) ने वर्षसहस्रात्मक यज्ञ किया था। कश्यप प्रजापति ने ७००, वर्ष का यज्ञ किया—"स सप्त शतानि वर्षाणां समाप्येमामेव जितिमजयत्।[1], प्रजापति ने सहस्रवर्ष तप किया—"स तपोऽतप्यत सहस्रपरिवत्सरान्।"[2] नारदादि एव भरद्वाजादि ऋषियों की दीर्घायु का वैदिकग्रन्थो एवं पौराणिक ग्रन्थो मे बहुधा उल्लेख है, अत: दीर्घजीवीपुरुषों का इतिहास एक पृथक् अध्याय मे संकलित करेंगे। परन्तु दीर्घजीवन के घटाटोप मे गोत्रनामो से भ्रम होता है, वह जगत्प्रसिद्ध है। जैसा कि वशिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य, अत्रि इत्यादि के गोत्रनामों से इनके वशजो को भी वशिष्ठ या वासिष्ठ, विश्वामित्र या कौशिक, अगस्त्य या अगस्ति, अत्रि या आत्रेय कहते थे। यह नियम प्रायः सभी गोत्रप्रवर्तक ऋषियो यथा याज्ञवल्क्यादि सभी पर लागू होता है। आदिम यज्ञवल्क्य या याज्ञवल्क्य आदिम विश्वामित्र के पुत्र थे, जो कृतयुग मे हरिश्चन्द्र ऐक्ष्वाक से पूर्व हुये, परन्तु पाण्डवकालीन वाजसनेय याज्ञ-वल्क्य का गोत्रनामसाम्य होने से सर्वत्र एक ही याज्ञवल्क्य का भ्रम होता है, यह दीर्घजीवन का उदाहरण नहीं है केवल गोत्रनामसाम्य से भ्रम होता है। इसी प्रकार का भ्रम पं० भगवद्दत्त को भरद्वाज ऋषि के विषय मे हो गया, जबकि पडितजी को ज्ञात होगा कि भरद्वाजगोत्र के प्रत्येक व्यक्ति को भरद्वाज या भारद्वाज कहा जाता था और इतिहासपुराणो एव चरकसंहिता मे उनका पृथक्-पृथक् नामत उल्लेख भी है। यदि बृहस्पतिपुत्र भरद्वाज और द्रोणाचार्य के पिता भरद्वाज (भारद्वाज) को एक माना जाय तो उन दोनों मे ६००० (छः सहस्र) वर्ष का अन्तर है, इतनी वृद्धावस्था में आदिम भरद्वाज का द्रोणाचार्यपुत्र को उत्पन्न करना, न केवल असंभव, किंच हास्यास्पद भी है, जो शरीरविज्ञानी किंवा योगी के लिए भी अनुचित है।[3] तैत्तिरीयब्राह्मण[4] के अनुसार इन्द्र ने भरद्वाज बार्हस्पत्य को तीन पुरुषायु (३०० वर्ष की आयु) प्रदान की और चतुर्थ पुरुषायु का प्रस्ताव किया था। भला, जो भरद्वाज इन्द्र की कृपा (रसायनसेवन) से ४०० वर्षमात्र जीवित रहा, उसका ६००० वर्ष की आयु मे पुत्र उत्पन्न करना केवल गोत्रनामसाम्य का भ्रममात्र के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। अतः भरद्वाज एक नही, उनके वंशज अनेक (शतशोऽथ सहस्रशः) हुए, जो सभी भरद्वाज या

---

१. जै० ब्रा० (१।३),

२. श० ब्रा० (१०।४।४।१),

३. द्र० भा० वृ० इ० भाग १; अध्यायदीर्घजीवीपुरुष, पृ० १४९;

४. द्र० तै० ब्रा० का मूल उद्धरण, (३।१०।११।४५)

भारद्वाज कहलाते थे। अतः वास्तविक दीर्घजीवन और गोत्रनामसाम्यभ्रम के भेद का ध्यान रखकर असद्ग्राहों से बचना चाहिए।

सम्वत्समस्या

केवल कलिसम्वत् का उल्लेख ही पुराणों में है। परन्तु काण्वोत्तरकालीन या भारतोत्तरकालीन भारतीय इतिहास में सम्वतों का इतना बाहुल्य है कि सहज ही भ्रमोत्पत्ति होती है। प्राचीन भारत में अनेक संवत् थे, जिनमें अनेक सम्वतों को 'शकसम्वत्' कहा जाता था और शकसम्वत् का प्रारम्भ और अन्त भी शक कहलाता था। एक शकसम्वत् आन्ध्रसातवाहनों के राज्यकाल के मध्य में शकराज्योत्पत्ति के समय अर्थात् २४५ वि० पू० से प्रारम्भ हुआ, शकों का राज्य ३८० वर्ष रहा, पुनः जब चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय, सांहसाक ने १३५ वि० सं० में शकराज्य का अन्त किया, तब द्वितीय शकसम्वत् चला, जैसा कि ज्योतिषियों ने लिखा है—"शका नाम म्लेच्छजातयो राजानस्ते यस्मिन् काले विक्रमादित्यदेवेन व्यापादिताः स कालो लोके शक इति प्रसिद्धः।"[1] आधुनिक लेखक शकसम्वत् का सम्बन्ध कुषाणशासक कनिष्क से स्थापित करते हैं, यह सर्वथा मिथ्या है। शकों, कुषाणों, हूणों, तुषारों, मुरुण्डशकों आदि सभी के राज्यवर्ष या सम्वत् पृथक्-पृथक् शिलालेखादि पर उल्लिखित हैं, इसी प्रकार मालवगणसम्वत्, शूद्रकसम्वत्, हर्षसम्वत्, विक्रमसम्वत् आदि सभी पृथक्-पृथक् सम्वत् थे, आधुनिक लेखक, इन सभी सम्वतों को एक मानकर इतिहास के साथ घोर व्यभिचार और अनाचार करते हैं। इसी प्रकार गुप्त-सम्वत् दो थे, एक गुप्तसम्वत् गुप्तराज्यप्रारम्भ से और द्वितीय गुप्तसम्वत् गुप्तराज्य के अन्त के वर्ष से चला। इन दोनों में २४२ वर्षों का अन्तर था, आधुनिक ऐतिहासिक लेखकों ने गुप्तराज्य का प्रारम्भ उस समय से माना, जब गुप्तराज्य का अन्त हो गया था। इससे गणना में २४२ वर्ष का अन्तर उत्पन्न किया गया।

अतः सम्वत्बाहुल्य से कुछ भ्रम उत्पन्न हुआ और कुछ भ्रम जानबूझकर फ्लीट आदि लेखकों ने किया। इन सभी भ्रमों एवं समस्याओं का निराकरण आगामी अध्यायों में किया जायेगा।

---

१. बृहत्संहिता भट्टोत्पलटीका (८।२०), शिलालेखों में उल्लिखित 'शकनृप-कालातीतसंवत्सरः' का ही यह भाव है कि शकसम्वत् शकराज्य के अन्त से प्रवर्तित हुआ। भास्कराचार्य ने भी यही लिखा है—"शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः" (सि० शि० कालमानाध्याय १।२८),

३

भारतीय ऐतिहासिक कालमान तथा परिवर्तयुग

कालमान एवं तिथिगणना किसी भी देश के इतिहास की सुषुम्नानाड़ी या रीढ़ की हड्डी है, जिस पर इतिहासरूपीशरीर निलंबित रहता है। आधुनिक तथाकथित इतिहासकारों ने मिस्र, सुमेर, चीन, बेबीलन, मयसभ्यतासहित प्राचीन इतिहास की सभी तिथियाँ बिना किसी प्रमाण के अपने मनमानी कल्पना के आधार पर निश्चित की, सर्वाधिक भ्रष्ट कल्पनायें भारतीय इतिहास की काल-गणना में की गई और सर्वाधिक प्रसिद्ध काल्पनिक या असत्य या भ्रामकतिथि, जो भारतीय इतिहास में घढ़ी गई वह है चन्द्रगुप्त और सिकन्दर यूनानी की सम-कालीनता की कहानी। सन् ३२७ ई० पू० में सिकन्दर के भारत आक्रमण की तुच्छतमघटना को मूलाधार बनाकर अंग्रेजों ने प्राचीनभारतीय इतिहास का मूल ढांचा बनाया। हमारा उद्देश्य इस भ्रष्ट या असद् ढांचे को तोड़कर सत्य की भित्ति पर इतिहासभवन बनाना है।

प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक कालगणना का मूलाधार युगगणना है, युग-गणना के अनेक प्रकार थे। महाभारतकाल से पूर्व परिवर्तयुगगणना (या वैदिक 'दिव्यमानुषयुग' गणना) प्रचलित थी।[1] महाभारतकाल से कुछ शतीपूर्व 'द्वादश-सहस्रात्मक चतुर्युगगणना' पद्धति का प्राबल्य हो गया।

युगगणनापद्धतियों के सम्यग् बोधार्थ, सर्वप्रथम, संक्षेप में भारतीयकालमिति (कालविज्ञान) या कालमानों की सारणी प्रस्तुत करेंगे।

प्राचीन भारत और मयसभ्यता (मध्यअमेरिका-मैक्सिको)···ये दो ही ऐसे प्राचीनतम देश थे, जहाँ आधुनिक सैकेण्ड से सूक्ष्मतर और प्रकाशवर्ष (Light Year) से महत्तर कालमान प्रचलित थे। मयसंस्कृति में शुक्रग्रह के आधार पर कालगणना विशेषरूप से प्रचलित थी, क्योंकि विश्वकर्मा मय, स्वयं शुक्राचार्य का पौत्र और त्वष्टा (शिल्पी) का पुत्र था। मय के वंशजों ने अनेक देशों से

---

1. वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण के प्राचीनपाठों मे 'परिवर्त' या पर्याय-युगगणना का ही मुख्यतः उल्लेख मिलता है।

अपनी सभ्यता स्थापित की। इस सभ्यता की मुख्य दो विशेषतायें थी, स्थापत्य-कला (भवननिर्माण) और सूक्ष्म ज्योतिषगणना। प्राय: अब सभी इतिहासविद् मानने लगे हैं कि प्राचीन विश्व मे सर्वोच्चकोटि के भवनों का निर्माण मय-जाति के लोगों (शिल्पियों) ने किया था, यथा मिस्र, भारत और मध्य अमेरिका मे मैक्सिको, होण्डुरान्स, द० अमेरिका में प्राचीन पेरू, बोलवीया इत्यादि देशो मे।

मयासुरो के कालगणनासम्बन्धी वैशिष्ट्य का उल्लेख करते हुए एक विद्वान् ने लिखा है "उनके अभिलेखो मे ९००००००० (नौ करोड) और ४००००००० (चार करोड) वर्ष पूर्व की ठोस संगणनाओ द्वारा निर्धारित तिथियो का वर्णन है, उन्होने पृथ्वी के सौरवर्ष की ही संगणना नहीं की, चन्द्रलोक का परिशुद्ध पंचाग भी तैयार किया और शुक्रग्रह की सयुक्त परिक्रमाओ का भी अचूक परिकलन किया।"[1] मयासुरो की कालगणना २० या कौडी के आधार पर चलती थी और २३०४०००००० दिनो का एक अलाउटुन नाम का 'युग' होता था, जो २० कालावटुन के तुल्य था। कालमानो के नाम थे—२० किन =१ यूइनल (मास—शुक्रमास), १८ यूइनल=१ टुन (३६० दिन वर्ष) २० टुन=१ काटुन (७२०० दिन), २० काटुन =१ बाक्टुन, २० बाक्टुन= १ पिकटुन। मयलोग शुक्र[2] (ग्रह या शुक्राचार्य) की विशेष पूजा करते थे, क्योकि वही उनके पूर्वज थे। आदि मयासुर को ज्योतिषज्ञान उसके बहनोई (सुरेशपति) विवस्वान् ने दिया था, जैसा कि सूर्यसिद्धान्त मे लिखा है - "ग्रहाणा चरित प्रादान्मयाय सविता स्वयम्"। अत: मयजाति का गुरु भारत ही था। यहाँ पर प्राचीनकाल मे युग, मन्वन्तर, कल्प जैसे महत्तम और सूक्ष्मतम कालांश (सेकेण्ड का पंचम भाग तक) प्रचलित थे—'यावन्तो निमेषास्तावन्तो लोमगर्ता यावन्तो लोमगर्तास्तावन्तो स्वेदायनानि यावन्ति स्वेदायनानि तावन्त एते स्तोका वर्षन्ति।" (श० ब्रा० १२।३।२।४-५), शतपथब्राह्मण (१२।३।२।४-५) मे ही मुहूर्त क्षिप्र, एतर्हि, इदानि और प्राणसंज्ञक सूक्ष्मतम कालांशो का उल्लेख है।

द्वादशसहस्रात्मक या दशसहस्रात्मक महायुग का मूलाधार—प्राचीन वैज्ञानिक उक्तियाँ है—

'योऽसावादित्ये पुरुष: सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म' (ई० उ० १७)
'यावन्त: पुरुषे तावन्तो लोक इति (चरकसंहिता ४।१३)

---

१. दी एग्जैक्ट साइंसेस इन ऐंटिक्विटि, ले० न्यूगे बाऊर से धर्मयुग (३ मई, १९८१) मे उद्धृत।

२. मयलोग शुक्र को भगवान् कुकुलकन (कवि उशना शुक्र) कहते थे और इसकी मूर्ति पूजते थे।

'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' ब्रह्माण्ड या सूर्यलोकसम्मित ही मनुष्यशरीर है। एक दिन (अहोरात्र - २४ घण्टे) में मनुष्य १०८०० प्राण और इतने ही अपान ग्रहण करता है—

> शत शतानि पुरुषः समेनाष्टौ शता यन्मित तद्वदन्ति ।[1]
> अहोरात्राभ्या पुरुषः, समेन तावत्कृत्वः प्राणिति चानिति ।।

अग्निचयन नाम के अतियज्ञ में इतनी ही (१०८००) इष्टिकायें रखी जाती थीं। अथर्ववेद मे शतमानुषयुगो मे दशसहस्रवर्ष बताये गये हैं, और इनको चार भागों में विभक्त किया गया है—(कृत, त्रेता, द्वापर और कलि)—

''शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः ।''[2]

प्राचीन भारत मे बहुधा प्रचलित क्रमिक और सूक्ष्म कालांश इस प्रकार थे

१/४ निमेष	= १ त्रुट	१५ मुहूर्त	= १ अहोरात्र
२ त्रुट	= १ लव	१५ अहोरात्र	= १ पक्ष
२ लव	= १ निमेष	७ अहोरात्र	१ सप्ताह
५ निमेष	= १ काष्ठा	२ सप्ताह	१ पक्ष
३० काष्ठा	= १ कला	२ पक्ष	= १ मास
४० कला	१ नाडिका	१२ मास	१ वर्ष
२ नाडिका	= १ मुहूर्त	३० दिन	= १ मास

लोक और वेद मे चन्द्रमा या प्रजापतिपुरुष की षोडशकलायें प्रसिद्ध हैं। 'कला' और 'काल' शब्द 'कल' धातु (गणना) से व्युत्पन्न हैं। कलाओं का सुपरिणाम काल है।[3]

प्राचीन भारत में होरा (घण्टा), मुहूर्त, रात्रि-दिन, पक्ष, मास तथा वर्षों के नाम भी रख दिए थे।[4] नक्षत्र, वार और ग्रहों के नाम वेद के आधार पर प्राचीनविश्व में रखे गये थे, इसकी एक लघु झांकी यहां प्रस्तुत की जा रही है। यूरोप में १५, ३० और ६० का विभाजन प्राचीन भारत से ही बेबीलन और ग्रीस के माध्यम से गया। पुराणों का प्रसिद्ध श्लोक है—

---

१. श० ब्रा० (१२।३।२।८)
२. अथर्ववेद (८।२।२१),
३. 'कलानांसुपरीणामात् काल इत्यभिधीयते' (वायुपु० १००।२२५),
४. तैत्तिरीयब्राह्मण (३।१०) मे शुक्लपक्षादि के मुहूर्तों के नामादि द्रष्टव्य हैं।

काष्ठा निमेषा दश पंचैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत् कलान्तम् ।
त्रिंशत्कलाश्चैव भवेन्मुहूर्तस्तैस्त्रिंशतो राज्यहनी समेते ।।[1]

"१५ निमेष की एक काष्ठा होती है, ३० काष्ठा की एक कला और ३० कलाओ का एक मुहूर्त और ३० मुहूर्त का एक अहोरात्र होता है । महीने में ६० अहोरात्र होते हैं ।"

ग्रहवारनाम

आधुनिक लेखक प्राय: यह उद्घोष करते है कि प्राचीन भारत मे राशियों और वारो के नाम अज्ञात थे, परन्तु जिन ऋषियों या राजर्षियों के नाम पर ग्रहो और वारो के नाम रखे गए थे, वे सभी देवासुरयुगीन भारतीयपुरुष थे, यह हम पहले ही संकेत कर चुके हैं कि यह नामकरण वामनविष्णु द्वारा असुरेन्द्र-बलि की पराजय एवं भारतपलायन से पूर्व ही हो चुका था, हमारे मत की पुष्टि वारनामो से भी होती है, यथा भारतीयनाम—आदित्य (सूर्य) वार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार, शुक्रवार और शनिवार । अदितिपुत्र विवस्वान् (सूर्य या आदित्य) के नाम पर रविवार (आदित्यवार=ऐतवार) को यूरोप मे 'सनडे' अत्रिपुत्र सोम या चन्द्रमा के नाम से मूनडे (मनडे), भौम मंगल या वैदिकदेवता 'मरुत्' (मार्स) नाम मे ट्यूजडे, सोमपुत्र राजर्षिबुध के नाम पर बुधवार (वेडनेसडे), देवपुरोहित बृहस्पति (आंगिरस) के नाम पर थर्स्डडे, शुक्र के नाम पर शुक्रवार (फ्राईडे) और सूर्यपुत्रशनि के नाम से शनिवार (Saturday) रखा गया । पुरूरवा का पिता बुध जब भारत में ही रहता था, तभी वार का नाम 'बुधवार' रख दिया गया था, जब दैत्य भारत से भाग कर यूरोप मे बसे तब इसी नाम को वहाँ ले गये, यह प्रत्यक्ष है इसको अन्य प्रमाण की क्या आवश्यकता है ।[2] 'शनि और सेटर्न' शब्दों का साम्य स्पष्ट है । ट्यूज (मंगल) 'मरुत्' शब्द का और 'थर्स्ड' बृहस्पति (बृहस्) शब्द का विकार है ।

---

१. वा० पु० (५०।१६९),

२. वैदिक मरुत् को यूरोप मे मार्स (मृत्युदेव) कहते हैं, वेद मे भी मरुत्-गण या मंगल विघ्नेश मृत्युदेव हैं । 'बृहस्पति' के 'बृहस्' का विकार 'थर्स' रूप बन गया । बुध का 'वेडन' रूप स्पष्ट विकार है । शुक्र का ही एक नाम 'प्रिय' था, यह प्रेम (काम) या विवाह का देवता भी था । 'प्रिय' (प्रेम) शब्द ही बिगड़कर फ्राई (डे) हो गया । विवाह शुक्रोदय में ही होते हैं ।

वैदिकग्रन्थों मे त्रिविध मासनाम मिलते है, इनमें प्रथम, चैत्रादि नाम अर्वाचीन और अधिक प्रचलित हैं, 'मधुमाधव' आदि नाम केवल वैदिक हैं तथा अरुणादि नाम केवल तैत्तिरीयब्राह्मण (३।१०) मे ही मिलते हैं। १२ मासों का 'सम्वत्सर' या वर्ष जगत्प्रसिद्ध है। वर्ष को वैदिक-ग्रन्थों मे सम्वत्सर आदि कहा जाता था और ऋतुओ के नाम पर शरद्, हिम, वर्ष इत्यादि भी कहा जाता था। वर्ष का प्राचीनतम नाम वेद मे हिम था, क्योंकि 'हिमयुग' मे 'हेमन्त' ऋतु या 'शरदृतु' का प्राबल्य था।

कल्प, मन्वन्तर और युगसम्बन्धीभ्रान्तिनिराकरण

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते।
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥ (कालिदास)

"सन्त (या सत्यशोधक) परीक्षण के अन्तर ही तथ्य स्वीकार करते हैं, परन्तु मूढ (मूर्ख) केवल दूसरो की बात पर ही विश्वास कर लेते है।"

पुराणो में यद्यपि अनेक तथ्यात्मक ऐतिहासिक घटनाओ का प्रामणिक वर्णन है, तथापि अनेक भ्रष्टपाठो के कारण तथा उनमें निरन्तर परिवर्तन होते रहने के कारण, उनके वचन प्रायः श्रद्धेय (विश्वसनीय) नही समझे जाते। पुराणो मे सर्वाधिक परिवर्तन विक्रम सम्वत् आरम्भ से एक दो शती पूर्व, युगगणना या कालगणनासम्बन्धीपाठो मे कर दिया गया, जिससे पुराणोल्लिखित सत्य इतिहास भी इतिहास न रहकर कल्पनालोक की वस्तु रह गया। पाश्चात्य षड्यन्त्रकारी लेखको ने पुराणो के प्रति अश्रद्धा को और बढाया और गौतम बुद्ध और बिम्बसार से पूर्व के किसी भी ऐतिहासिक पुरुष, जिसका इतिहास पुराणो मे उल्लेख था, उसे ऐतिहासिक नही माना। मैगस्थनीज के आधार पर उन्होने चन्द्रगुप्त मौर्य की एक काल्पनिक तिथि घड ली और इसी काल्पनिक तिथि के आधार पर गौतम बुद्ध से गुप्तकाल तक की तिथियां निश्चित की।

ऐसे अज्ञानावृत वातावरण मे एक प्रकाशस्तम्भ का उदय हुआ—पंडित भगवद्दत्त के रूप मे – जिन्होने पाश्चात्य चेष्टाओं पर प्रहार करते हुये इतिहास पुराणो के आधार पर स्वायम्भुव मनु से गुप्तकाल तक के इतिहास का पुनरुद्धार किया। पण्डितजी का प्रयत्न, बहुत प्रारम्भिक, परन्तु साहसिक था। इतिहास पुराणों के आधार पर, उन्होंने भारतयुद्ध एवं उससे पूर्व की तिथियां निश्चित करने का विद्वत्तापूर्ण प्रयत्न किया और भारतीय इतिहास का प्रारम्भ विक्रम से १४००० वि० पू० माना अर्थात् सिद्ध किया। युगसमस्या का स्पर्श करने पूर्व हम पण्डितजी के कुछ मूलवचन, उनकी पुस्तकों से उद्धृत करते हैं। क्योंकि मुझे सत्य इतिहास मे अनुसंधान करने एवं लिखने की प्रेरणा पं० भगवद्दत्त के ग्रंथों

के ही मिली और वे ही पुराणों से सच्चा इतिहास निकालने वाले, वर्तमान युग में प्रथम अनुसंधाता थे, जो मेरी प्रेरणा के स्रोत थे, अतः सर्वाधिक मत उन्हीं के उद्धृत किये जायेंगे। पण्डितजी ने पुराणोल्लिखित युगगणना एवं तिथिसंबन्धी कुछ समस्याओं को आंशिकरूप से सुलझा लिया था, और कुछ समस्याओं को नहीं सुलझा पाये। अब उनके कुछ मूलकथन दृष्टव्य है—

(१) ब्रह्माजी का काल बहुत पुराना है। जर्मनभाषा के आधार पर भारतीय इतिहास की जो रूपरेखा उपस्थित की गई है वह अविश्वसनीय सिद्ध हो चुकी है। महाभारतग्रंथ का काल (विक्रम से ३००० वर्षपूर्व) निर्धारित हो चुका है। तदनुसार जलप्लावन के लिये हमने कलि से पूर्व लगभग ११००० वर्ष का काल माना है। ४८०० वर्ष कृतयुग, ३६०० वर्ष त्रेतायुग, २४०० वर्ष द्वापरयुग। पूरा योग बना १०८०० वर्ष। इसके साथ कलि और प्रवृद्धकलि के ५००० से कुछ अधिक वर्ष जोड़ने पर लगभग १६००० वर्ष बनते हैं। यह न्यूनातिन्यून काल है। पूर्ण सम्भव है, यह काल इससे अधिक हो। आने वाले विद्वान् इस विषय पर अधिक प्रकाश डाल सकेंगे।"[1]

निश्चय ही पण्डितजी ने एक सत्य, आंशिक सत्य का आधुनिककाल में उद्घाटनकिया है। परन्तु ब्रह्मा एक नही अनेक हुये हैं, यथा कश्यप, वरुण आदि भी ब्रह्मा या प्रजापति कहे जाते थे। आगे हम सिद्धि करेंगे कि विक्रम से १४००० वर्षपूर्व कश्यप प्रजापति (ब्रह्मा) हुये थे, न कि स्वयम्भू ब्रह्मा और उनका पुत्र स्वायम्भुव मनु। यास्क के निरुक्त (३/४) में जिस विसर्गादि[2] (आदिकाल = आदियुग) का उल्लेख है, वह विक्रम से ३०००० वर्ष पूर्व का काल था, इसका आगे विस्तार से विवेचन करेंगे।

पं० भगवद्दत्त ने ही, सर्वप्रथम वायुपुराणोल्लिखित त्रेता और उसके अवान्तर विभागों की ओर ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने लिखा "वायुपुराण में २४ त्रेता और २८ द्वापर माने गए हैं। इनमें आद्यत्रेता स्वायम्भुव अन्तर में था। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित श्लोक देखने योग्य है :

(क) तस्मादादौ तु कल्पस्य त्रेतायुगमुखे तदा/वायु० ९/६४

(ख) त्रेतायुगमुखे पूर्वमासन् स्वायम्भुवेऽन्तरे, ॥ ,, ३१/३

(ग) स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमाद्ये त्रेतायुगे तदा ॥ ॥ ३३/५

"——वायु का युगविभाग महाभारत से कुछ भिन्न प्रकार का है। वायु

---

१. भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, भाग १, पृ० २५४,

२. "मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥"

का वैवस्वतमनु का आरम्भ त्रेता से होता है। वायु का वर्तमानरूप भारत युद्ध के पश्चात् महाराज अधिसीमकृष्ण के काल का है। परन्तु वायु की बहुत सी सामग्री अतिपुरातनकाल की है। उसका कालविभाग अन्य प्रकार का था, अतः निम्नलिखित श्लोक भी दृष्टि में रखने होंगे। भावी विद्वानों को इस समस्या की पूर्ति करनी चाहिये —

कल्पस्यादौ कृतयुगे प्रथमे सोऽसृजत्प्रजा ।
त्रेतायां युगमन्यतु कृतांशमृषिसत्तमाः ॥

वायु के त्रेता एक ही त्रेता के अवान्तरविभाग—वायु के बहुत से त्रेता एक ही त्रेता के अवान्तर विभाग हैं। वायु के अनुसार आद्यत्रेता से लेकर चौबीसवें त्रेता तक निम्नलिखित व्यक्ति हुये थे—

दक्ष प्रजापति	—	आद्य त्रेतायुग
बारह देव	—	आद्य त्रेतायुगमुख
करन्धम	वायु ८६/७	त्रेतायुगमुख
अविक्षितपुत्र	आश्वमेधिक पर्व ४/१७	त्रेतायुगमुख
तृणविन्दु	—	तृतीय त्रेतायुग
दत्तात्रेय	—	दशम त्रेतायुग
मान्धाता	—	पन्द्रहवां
जामदग्न्यराम	—	उन्नीसवां
दाशरथिराम	—	चौबीसवां

× × ×

"अवान्तरत्रेताओं की अवधि=यदि इन अवान्तर त्रेताओं की अवधि तथा आदियुग, देवयुग और त्रेतायुग आदि की अवधि जान ली जाये, तो भारतीय इतिहास का सारा कालक्रम शीघ्र निश्चित हो सकता है। हम अभी इस बात को पूर्णतया जान नहीं पाये।"

(भा० वृहद्० भाग १० पृ० १५८-१५९)

इस सम्बन्ध में, यहाँ अति संक्षेप[1] में निम्न बातें ध्यातव्य है—

(१) वायु के वर्तमान पाठो में भी अनेक भ्रष्टपाठ हैं, इसका प्रमाण है कि इसी पुराण का पाठान्तर है ब्रह्माण्डपुराण, जिसमे अवान्तर विभागों के लिए त्रेता के स्थान पर 'द्वापर' शब्द का प्रयोग किया गया है—दोनों ही के नाम भ्रान्तिजनक हैं।

---

१. युगों पर विस्तृत अनुसंधान ही आगे के अध्यायो में होगा।

प्रथमे द्वापरे व्यस्ताः स्वयं वेदाः स्वयम्भुवा ।
द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः ॥[1]

वायु के ही अन्यत्र पाठ में त्रेता, या द्वापर के स्थान पर युग, पर्याय और परिवर्त शब्दों का प्रयोग है—

परिवर्ते पुनः षष्ठे मृत्युर्व्यासो यदा विभुः ॥
यदा व्यासः सुरक्षस्तु पर्यायश्च चतुर्दश ॥

अतः सत्य या यथार्थपाठ पर्याय या परिवर्त युग था, इसका व्याख्यान (स्पष्टीकरण) विस्तार से होगा ।

उपर्युक्त युगसमस्या की कुन्जी 'व्यासपरम्परा' में ही निहित है, जिसका पृथक् अध्याय में विस्तार से विवेचन करेंगे ।

कल्प, मवन्तर और दिव्यवर्ष या दिव्ययुग पुराणों या वैदिकग्रन्थों मे यत्र तत्र प्रयुक्त हुये, जिससे भी महती भ्रान्तियाँ उत्पन्न हुईं ।

वर्तमान पुराणपाठ से पं० भगवद्दत्त को भी यह भ्रान्ति हुई कि विभिन्न अवान्तरत्रेता एक ही त्रेतायुग के विभाग हैं । परन्तु पुराणों, विशेषतः वायु पुराण व ब्रह्माण्डपुराण के सूक्ष्म अनुशीलन से सुस्पष्ट प्रतिभान होता हैं कि उपर्युक्त तथाकथित त्रेता न तो अवान्तर त्रेता थे और न ही महात्रेता के विभाग थे । मूल में वे स्वतन्त्र एवं पृथक् ऐतिहासिकयुग थे, जिन्हें उत्तरा-कालीन पुराणप्रक्षेपकारों या प्रतिलिपिकारों ने कही त्रेता कही 'द्वापर' और कही कलियुग[2] कह दिया है । स्पष्ट ही यह महती भ्रान्ति है जो प्राचीन यथार्थ युग या परिवर्त का बोध न होने, उसकी विस्मृति से उत्पन्न हुई । यह वर्तमानभ्रान्तपाठों के कारण ही उत्पन्न हुई । अतः हम पूर्वपक्ष के रूप में प्रथम, वर्तमानपुराण-पाठों के आधार पर प्रचलित युगगणना का सिंहावलोकन करेंगे ।

युगगणनासम्बन्धी वर्तमान पुराणपाठ

वर्तमान पुराणपाठो से ऐतिहासिकयुगगणना[3] में किस प्रकार महती भ्रान्तियाँ उत्पन्न हुईं, इन कारणों को खोजने से पूर्व इस द्विविधयुग गणना का निर्दशन यहां प्रस्तुत करते हैं—

---

१. ब्रह्माण्ड० (१।२।३५)

२. परिवर्ते चतुर्विंशे ऋक्षो व्यासो भविष्यति ।
तथाहं ब्रह्मन् कलौ तस्मिन्युगान्तिके ॥ वायु० पृ०२३

३. यह युगगणना द्विविध थी एक चतुर्युगीगणना और प्राचीनतर परिवर्त-युगगणना ।

तेषां द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुष्टयम्।
अत्र संवत्सराः सृष्टा मानुषेण प्रमाणतः।
कृतस्य तावद् वक्ष्यामि च निबोधत।
सहस्राणां शतान्याहुश्चतुर्दश हि संख्यया।
चत्वारिंशत्सहस्राणि तथान्यानि कृतम् युगम्।
तथा शतसहस्राणि वर्षाणि दशसंख्यया।
अशीतिश्च सहस्राणि कालस्त्रेतायुगस्य सः।
सप्तैव नियुतान्याहुर्वर्षाणां मानुषेण तु।
विंशतिश्च सहस्राणि कालः स द्वापरस्य च।
तथा शतसहस्राणि वर्षाणां त्रीणि संख्यया।
षष्टिश्चैव सहस्राणि कालः कलियुगस्य च।
एवं चतुर्युगे काल ऋते संध्यांशकैः स्मृतः।
नियुतान्येव षड् विंशान्निरसानि युगानि वै।
चत्वारिंशत्तथा त्रीणि नियुतानीह संख्यया।
विंशतिश्च सहस्राणि च समध्यश्च चतुर्युगः॥

(ब्रह्माण्ड० १।२।२९।२९-३६)

'चारों युग (कृत, त्रेता, द्वापर और कलियुग) कुल १२००० वर्ष के होते है। यह गणना स्पष्ट ही मानुष वर्षमान के आधार पर है।'' कृतयुग के वर्ष (बिना संध्या के) १४ लाख ४० सहस्र होते है। त्रेतायुग १० लाख ८० सहस्र वर्ष का होता है। द्वापरयुग सात लाख २० हजार वर्ष का होता है। और कलियुग ३ लाख ६० हजारवर्ष का होता है। यह बिना संध्यांश के कालगणना है। संध्यांशों को मिलाकर चारो युग (चतुर्युग) ४३ लाख और २० हजारवर्ष के होते है।''

अत कहा गया है कि इस प्रकार के ७१ चतुर्युग मिलकर एक मन्वन्तर होता है, मन्वन्तर की अवधि ३० करोड़ ६७ लाख और बीस सहस्र मानी गई। और १४ मन्वन्तरो का एक कल्प=(ब्रह्मा=सृष्टि=का एक दिन)=४ अरब ३२ करोड़ वर्षों का माना गया। यह अर्धकल्प है। कल्प के दिनरात्रि मिलकर ८ अरब ६४ करोड़ वर्षो के हैं।

यह है संक्षेप मे कल्प, मन्वन्तर और चतुर्युग का वर्षमान, जो वर्तमान पुराणपाठों से उद्घाटित होता है। निश्चय ही यह कालगणना ऐतिहासिक नहीं है और नहीं इसका इतिहास में कोई उपयोग है। पुराणों में भी इसका ऐतिहासिक उपयोग कहीं नहीं है। केवल सिद्धान्त के रूप में अथवा यों कहिये

भ्रान्तिरूप में ही पुराणों में इसका वर्णन है। हमने भ्रान्ति के निराकरणार्थ ही इसको यहाँ उद्धृत किया है।

'कल्प' शब्द का व्याख्यान—भ्रान्तिनिराकरण—मूलपुराणो में महाभारत-काल एवं उससे पूर्व—द्विविध ऐतिहासिक युगगणना प्रचलित थी। पूर्वकाल में 'पर्याय' या 'परिवर्तयुग'गणनापद्धति प्रचलित थी, उत्तरकाल मे—, महाभारतयुद्ध से लगभग १००० वर्ष पूर्व (४००० वि० पू०) चतुर्युगीयगणना पद्धति का प्राबल्य हो गया। पर्याय या परिवर्त (युग) का मान ३६० मानुष वर्ष था और चतुर्युग का मान था—'द्वादशसहस्रवर्ष'[1] (१२०००) मनुस्मृति मे इसी को एक 'देवयुग'[2] कहा गया है। यह देवयुग' पद महती भ्रान्ति का कारण बन गया, इसका विशेष व्याख्यान एवं स्पष्टीकरण आगे विस्तार से करेंगे मूल में कल्प शब्द ब्रह्माण्डरचना या पृथ्वीरचना आदि का पर्याय था—

> कल्पस्यादौ सुबहुला यस्मात्संस्थाश्चतुर्दश।
> कल्पयामास वै ब्रह्मा तस्मात्कल्पो निरुच्यते ॥[3]

प्राचीनसंस्कृतवाङ्मय मे 'कल्प'शब्द अनेक अर्थों मे प्रयुक्त हुआ है। यथा वेद का एक वेदाग है—'कल्प' (सूत्र)

अर्थवाद और ऐतिह्यविधि को भी कल्प कहा जाता था—

> 'पुराकल्प इत्यर्थवादः (न्यायसूत्र २।१।६४)
> ऐतिह्यसमाचरितो विधिः पुराकल्पः (वात्स्यायनन्यायभाष्य)

पुराकल्प एक ऐतिहासिकशास्त्र भी था—

> श्रूयते हि पुराकल्पे नृणां व्रीहिमयः पशुः।[4]
> पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते (यमस्मृति)

वायुपुराण अनुषगपाद मे ब्रह्मकल्प भुवकल्प; तपकल्प, गन्धर्वकल्प, षड्जकल्प, मनुकल्प, रवतकल्पसंज्ञक ३१ प्रकार के कल्प (रचना या सृष्टियो) का उल्लेख है। अतः पुराणो में ही कल्पशब्द केवल 'कालमान' के रूप ही प्रयुक्त नहीं हुआ, अन्य बहुत से अर्थों में प्रयुक्त है, तथापि पुराणों में इसका 'कालवाची' अर्थ भी माना जाता है।

---

१. तेषां द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुष्टयम् ॥ (ब्रह्माण्ड० १।२९-३०)
२. एतद् द्वादशसहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥ (मनु० १।६)
३. ब्रह्माण्ड० १।२।६।७४)
४. अनुशासनपर्व

हम पूर्वपृष्ठ पर संकेत कर चुके हैं कि पुराणों में द्विविध ऐतिहासिक युगगणना पद्धतियाँ प्रचलित थीं । उन दोनों के संमिश्रण से ही वर्तमान 'अनैतिहासिकयुगपद्धति' का आविष्कार हो गया, जिसका इतिहास में कोई उपयोग नहीं । व्यासपरम्परा पर एवं अन्य संकेतों के आधार हमने परिवर्त या (तथाकथित अवान्तर त्रेताओं) का कालमान ज्ञात कर लिया, जिसको परमश्रद्धेय पं० भगवद्दत्त ज्ञात नहीं कर सके ।

ब्रह्माण्डपुराण (१।२।६।७४) के पूर्वोक्तश्लोक में कहा गया है कि स्वयम्भू ने १४ प्रकार की संस्थाओं (देव, गन्धर्व, मानुष, पिशाचादि की सृष्टि की (कल्पयामास), अतः इस सृष्टि को 'कल्प' कहा गया । वर्तमानकल्प को 'वाराह'कल्प[1] कहा जाता है । इससे पूर्व पृथिवी पर सहस्रकल्प व्यतीत हो चुके थे—

एतेन क्रमयोगेन कल्पमन्वन्तराणि च ।
सप्रजानि व्यतीतानि शतशोऽथ सहस्रशः ।
मन्वन्तरान्ते संहारः संहारान्ते च संभवः ।[2]

वाराहकल्प का प्रारम्भ अबसे लगभग ३२ सहस्रवर्षपूर्व हुआ था, जब वाराहसंज्ञकमेघ[3] ने पृथ्वी का समुद्र से पुनरुद्धार किया—(१) स (प्रजापतिः) वाराहो रूपं कृत्वोपन्यमज्जत् स पृथिवीमध आर्च्छत् । तस्मा उपहत्योप न्यमज्जत् । तत् पुष्करपर्णेऽप्रथयत् । तत् पृथिव्यै पृथिवित्वम्[4] "वह प्रजापति निश्चय ही वराह का रूप धारण करके समुद्र मे चला गया । वह उसके नीचे गया और बाहर निकला । उसे पुष्करपर्ण पर फैलाया । यही पृथिवी का पृथिवीत्व है ।'

निरुक्त (२।४) में यास्क ने व्याख्यान किया है कि 'वराहो मेघो भवति ।'

वायुपुराण में स्पष्ट लिखा है कि ब्रह्मा ने वायु (मेघ) का रूप धारण करके सलिल (समुद्र) मे विचरण किया और जल से संछादित भूमि को जल से बाहर निकाला ।

---

१. यस्मायं वर्तते कल्पो वाराहः साम्प्रतः शुभः । (ब्रह्माण्ड १।२।६।६)
२. ब्रह्माण्डपु० (१।२।६।२)
३. वाराहं रूपमास्थाय मयेयं जगती पुरा ।
मज्जमाना जले विप्र वीर्येणासीत् समुद्धृता ।।(वनपर्व १९२।१९)
४. तै० ब्रा० (१।१।३।६,७)

यह वर्तमान 'वाराहकल्प' सहस्रोंकल्पों से एक है जो पृथिवी पर व्यतीत हुये तथा यह 'वाराहकल्प' पूर्वकल्प का अवान्तर कल्प (विभाग) ही है[1]—
यस्त्वायं वर्तते कल्पो वाराहः साम्प्रतः शुभः ।

> अस्मात्कल्पात्तु यः पूर्वः कल्पोऽतीतः सनातनः ।
> तस्य चास्य च कल्पस्य मध्यावस्थां निबोधत ॥
> प्रत्यागते पूर्वकल्पे प्रतिसंधि विनाऽन्यथाः ।
> अन्यः प्रवर्तते कल्पो जनलोकादयं पुनः ॥[2]

अत पुराणप्रामाण्य से ज्ञात होता है कि यह कल्प (जीवसृष्टि) बिना प्रतिसन्धि के ही पूर्व सनातन (चिरकालीन) कल्प का एक अवान्तरविभाग है। इस अवांतर वाराहकल्प को प्रारम्भ हुये अभी लगभग ३२ सहस्र व्यतीत हुये हैं, यह स्वायम्भुव मनु की तिथि निश्चित करते समय, सिद्ध किया जायेगा।

अनेकवार जीवसृष्टि एवं प्रलय (कल्प=सर्ग और प्रतिसर्ग=पृथिवी पर अनेकवार उष्णयुग या हिमयुग व्यतीत हो चुके हैं, जिनमें अनेक बार आंशिक या पूर्ण सृष्टि नष्ट हुई और पुनरुत्पन्न हुई। प्राचीन साहित्य से ज्ञात होता है कि मनुष्य को केवल दो प्रलयों की स्मृतशेष है। इसमें, प्रथम महाप्रलय में अग्निदाह के पश्चात् वराह (मेघ=ब्रह्मा) की कृपा से सलिलमय पृथिवी का उद्धार हुआ और स्वायम्भुव मनु ने नवीन मानवसृष्टि उत्पन्न की। पूर्व कल्पान्त या युगान्त मे पृथिवी के दग्ध होने पर पृथिवीवासी वैमानिक देवगण (पूर्वप्रजा) विमानों मे बैठकर दूसरे लोकों मे चले गए।

> चतुर्युगसहस्रान्ते सह मन्वन्तरैः पुरा
> क्षीणे कल्पे ततस्तस्मिन् दाहकाल उपस्थिते ।
> तस्मिन् काले तदा देवास्तस्मिन् प्राप्ते ह्युपप्लवे ।

---

1. ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन् वायुभुत्वा तदाचरन् ।
   स तु रूपं वराहस्य कृत्वाऽपः प्राविशत् प्रभुः ॥
   अद्भिः संछादितामुर्वींसमीक्ष्याथ प्रजापतिः ।
   उद्धृत्योर्वीमथाद्भ्यस्तु अपस्तासु स विन्यसन् (वायु० ८।२,७,८)
2. ब्रह्माण्ड० (१।२।६।६—८) तथा द्रष्टव्यरामायण (११०।३-४)
   सर्वसलिलमेवासीत् पृथिवी यत्र निर्मिता
   ततः समभवद् ब्रह्मा स्वयंभूर्दैवतैस्सह ॥
   स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुन्धराम् ॥

तदोत्सुका विषादेन त्यक्तस्थानानि भागशः।

महर्लोकाय संविग्ना दधिरे मनः। (ब्रह्माण्डपु० ६)

"चतुर्युगसहस्र के अन्त में मन्वन्तरो का अन्त होने पर, कल्पनाश के समय दाहकाल उपस्थित होने पर पृथिवीवासीदेवगण संताप से संविग्न होकर पृथिवीलोक छोड़कर महर्लोक बसने चले गए।"

उपर्युक्त पृथिवीवासी वैमानिकदेवगण स्वायम्भुवमनु से पूर्व पृथिवी की प्रजा (निवासी) थे। वे दाहकाल का आगमन देखकर किसी अन्य ऊर्ध्वलोक में चले गये, पुराण के उक्त संकेत में अतिरिक्त प्राक्स्वायम्भुव इन देवों का इतिहास पूर्णतः अज्ञात है। वर्तमान पुराणों मे मुख्यतः इतिहास स्वायम्भुव मनु से ही प्रारम्भ होता है, इससे पूर्व का इतिहास आज अज्ञात है।

उपर्युक्त पुराणप्रमाण से हमारे इस मत की पुष्टि होती है कि, पृथिवी पर अनेक बार मानवसृष्टि और सभ्यता का उदय और अस्त हुआ था। और कुछ आधुनिक वैज्ञानिकों के इस मत को बल मिलता है कि प्राणिवर्ग एवं मनुष्य दूसरेग्रह से आकर पृथिवी पर बसे और उड़नतश्तरियों में बैठकर आज भी तथाकथित अन्तरिक्ष मानव या देवगण पृथिवी पर आते रहते हैं। इस सम्बन्ध में हम प्रसिद्ध अन्तरिक्ष वैज्ञानिक सर फ्राइड हायल का मत अपनी पूर्व पुस्तक 'भारतीय इतिहास पुनर्लेखन क्यों ?' पृष्ठ २१ पर लिख चुके हैं। आधुनिकयुग में, इस विषय पर सर्वाधिक अनुसन्धाता प्रसिद्ध जर्मन इतिहासकार एरिच वान डेनीकेन ने अनेक पुस्तकें लिखी हैं, जिसमें प्रमुख— (Chariots of gods) और प्राचीनदेवों की खोज (In search of ancient gods) इत्यादि।

कल्प की यथार्थ अवधि या कालमान—कल्प, मन्वन्तर और चतुर्युग के वर्तमान पाठों में अविश्वसनीय काल क्यों प्रचलित हुये, इस भ्रान्त धारणा का यहां विस्तृत विवेचन करेंगे। परन्तु, इससे पूर्व 'कल्प' का यथार्थ वर्षमान ज्ञातव्य है।

मनुस्मृति में स्पष्ट लिखा है कि १२००० वर्षों (चतुर्युग) का एक 'देवयुग' या 'महायुग' या 'युग' होता है—

एतद् द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते। (मनु० १।६)

यह द्वादशसहस्रवर्ष मानुषवर्षगणना के आधार पर थे, ऐसा पुराण में स्पष्ट लिखा है—

तेषां द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता ।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुष्टयम् ।
अत्र संवत्सराः सृष्टा मानुषेण प्रमाणतः (ब्रह्माण्ड० १।२९-३०)

पाश्चात्य लेखक व्हिटने आदि का मत पूर्णतः ठीक है। कि इन १२००० वर्षों को देववर्ष मानने की कल्पना मनु की नहीं है।[1] यही मत श्री लोकमान्य तिलक का था।[2] अतः प्राचीनशास्त्रों के मूलवचन द्रष्टव्य है—

सहस्रयुगपर्यन्तम् अहर्यद् ब्रह्मणो विदुः (गीता ८।१६)
सहस्रयुगपर्यन्तम् अहर्ब्राह्म स राध्यते। (बृ० ८।१८)
युगसहस्रपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः ॥
रात्रिर्युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः (निरुक्त १४।४।१७)
दैविकाना युगानां तु सहस्रं परिसंख्यया।
ब्राह्ममकेमहर्ज्ञेय तावतीं रात्रिमेव च ॥ (मनु० १।७२)

उपर्युक्त ग्रन्थो मे यह रञ्चमात्र भी संकेत नही है कि ब्रह्मा का एक दिन जो 'सहस्रयुगपर्यन्त' होता है, वह दिव्यवर्षोंमें है जब मनुस्मृति के अनुसार देवयुग सामान्य मानुष—१२००० वर्षों का था, तब सहस्रदेवयुगो को भी मानुषवर्षों का समझना चाहिए। अतः यदि 'सहस्र' शब्द यथार्थसंख्या का ही बोधक है तो 'कल्प' कुल १२०००००० (एक करोड बीस लाख) मानुषवर्षों का था न कि चार अरब बत्तीस करोड़ (वर्षों) का। यदि कल्प का आरम्भ स्वायभुव मनु से हुआ था तो इसके केवल ३२ सहस्रवर्ष व्यतीत हुए हैं, न कि दो अरब वर्ष। यही तथ्य वक्ष्यमाण 'मन्वन्तरो की अवधि' से पुष्ट होगा।

मन्वन्तरों का क्रम और अवधि—सर्वप्रथम १४ मनुओ का क्रम द्रष्टव्य है। पुराणनुसार उनका क्रम इस प्रकार है—

(१) स्वायम्भुव मनु	(८) सावर्णि मनु
(२) स्वारोचिषमनु	(९) दक्षसावर्णि
(३) उत्तम मनु	(१०) ब्रह्मसावर्णि
(४) तामस मनु	(११) धर्मसावर्णि
(५) रैवत मनु	(१२) रुद्रसावर्णि
(६) चाक्षुषमनु	(१३) रौच्य मनु
(७) वैवस्वतमनु	(१४) भौत्यमनु

१. भारतीय ज्योतिष — श्री बालकृष्ण दीक्षित (पृ०१४८,२५०)
२. आर्कटिक होम इन दी वेदाज पृ० ३५०

जब पुराणों में इनका कालक्रम और वंशसम्बन्ध अष्टव्य है—

स्वारोचिषश्चोत्तमोऽपि तामसो रैवतस्तथा।
प्रियव्रतान्वया ह्येते चत्वारो मनवः स्मृताः॥
(ब्रह्माण्ड० १।२।३६।६५)

सावर्णमनवस्तात पंच तांश्च निबोध मे॥
दक्षस्यैते सुतास्तात मेरुसावर्णतां गताः॥
दक्षस्यैते दौहित्राः प्रियायास्तनयाँ नृप॥ (ब्रह्माण्ड०)

'स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत—ये चार मनु (स्वायम्भुव मनु के पुत्र) प्रियव्रत के वंशज थे।'

पांच सावर्ण मनु परमेष्ठी (कश्यप) के पुत्र और दक्ष के दौहित्र तथा उसकी पुत्री प्रिया के पुत्र थे जो मेरुसावर्णता को प्राप्त हुये।

प्रथम सावर्णि को वायुपुराण (४।१००।५८,३०) में दक्षपुत्र रोहित कहा गया है—

प्रथमं मेरुसावर्णेर्दक्षपुत्रस्य वै मनोः।
दक्षपुत्रस्य पुत्रास्ते रोहितस्य प्रजापतेः॥

अष्टम मनु रोहित या मेरुसावर्णि का समय निम्न पुराणवचनों से ज्ञात होता है—

वैवस्वते ह्युपस्पृष्टे किंचिच्छिष्टे च चाक्षुषे।
जज्ञिरे मनवस्ते हि भविष्यानागतान्तरे॥ (वायु० १००।२६)

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते समुत्पत्तिस्तयोः शुभा (३२) रौच्यमनु का समय पुराण मे निर्दिष्ट है—

चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वतस्य च।[1]
रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नामाभवत्सुतः। (वायु १००।५४)
............भौत्यो नामाभवत्सुतः।
वैवस्वतेऽन्तरे राजन् द्वौ मनू तु विवस्वतः॥

'चाक्षुष मन्वन्तर के व्यतीत होने पर और वैवस्वतमन्वन्तर के प्राप्त होने (आरम्भ से पूर्व) रुचिप्रजापति का पुत्र रौच्यमनु हुआ।' 'भौत्यमनु और दो वैवस्वत मनु भी (लगभग) उसी समय हुये।' उपर्युक्त सभी मनु, भविष्य के नहीं, भूतकाल के प्राणी थे, कुछ मनु, वैवस्वत मनु के समकालिक और कुछ

१. ब्रह्माण्ड० (३।४।१।५०)

उनसे दो-चार काल पूर्ववर्ती। मेरुसावर्णि (रोहित) मनु का इन्द्र, स्कन्द (कार्तिकेय पावकि) को बताया गया है—

स्कन्दोऽसौ पार्वतीयो वै कार्तिकेयस्तु पावकिः। (ब्रह्माण्ड० ३।४।१।६१)

उसका अन्य नाम अद्भुत भी था।

तेषामिन्द्रस्तदा भाव्यो ह्यद्भुतो नाम नामतः (६१) पार्वतीपुत्र स्कन्द कार्तिकेय को कौन मूढ़ भविष्य का व्यक्ति मानेगा।

पांचसावर्णिमनु चाक्षुषमन्वन्तर (चाक्षुषमनु) के कुछ काल पश्चात् ही हुये यह स्पष्ट ही प्रामाणिक प्राचीन पुराणों में उल्लिखित है—

दक्षस्य ते हि दौहित्राः प्रियाया दुहितुः सुताः।
महानुभावास्ते पूर्वं जज्ञिरे चाक्षुषेऽन्तरे॥ (३।४।१।२४,२६)

चार मनु, कश्यपप्रजापति (ब्रह्मा=परमेष्ठी) के पुत्र तथा एक सावर्णि मनु, विवस्वान् के पुत्र थे। चार सावर्ण मनु कश्यप के पुत्र और दक्ष के दौहित्र होने से देवों (द्वादशआदित्य-वरुणादि) एव दैत्य हिरण्यकशिपु के समकालिक एव उनके भ्राता ही थे, अतः जो समय आदित्यो और दैत्यो का था, वही पाच सावर्णिमनुओ का था। इन पांच सावर्णमनुओ का सम्बन्ध दक्ष धर्म (प्रजापति) ब्रह्म (कश्यप=परमेष्ठी) से बताया गया है, इससे भी यही तथ्य पुष्ट होता है कि उपर्युक्त सावर्ण (पांच) मनु रुद्रादि के समकालिक थे। धर्म और रुचि प्रजापति दोनों भ्राता थे, जो ब्रह्मा के मानसपुत्र तथा स्वायम्भुव मनु के समकालिक ही थे।

ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा धर्मं भूतसुखावहम्।
प्रजापतिं रुचिं चैव पूर्वेषामपि पूर्वजौ॥ (ब्रह्माण्ड० १।२।६।२०)

मूल में (वास्तव मे) रुचि या कर्दम प्रजापति पुलह ऋषि के पुत्र थे। भौत्य मनु भूति के पुत्र थे, जो भार्गव वंशीय थे—

रौच्यो भौत्यो च तौ तु मतौ पौलहभार्गवौ"।[1] अतः रौच्य मनु और भौत्य मनु, कश्यप से पूर्व और सम्भवतः चाक्षुष मनु से भी पूर्ववर्ती या न्यूनतम उनके समकालिक थे। उपर्युक्त पौलह और भार्गव ऋषि वैवस्वत मन्वन्तर या द्वितीय जन्म के भृगु (वारुणि) आदि के पुत्र नहीं, बल्कि स्वायम्भुव मन्वन्तर मे ब्रह्मा के मानसपुत्र भृगु आदि प्रथम के वंशज थे, वैवस्वत मन्वन्तर में तो पुलह या पौलह का नाम सुनाई ही नहीं पड़ता। वे वैवस्वतमनु अथवा

---

२. ब्रह्माण्ड० (३।४।१।११६)

पृथुवैन्य से पूर्व हो चुके थे। भौत्य मन्वन्तर मे चक्षु के पुत्र चाक्षुष देवता थे[1], अतः भौत्यमनु चाक्षुष के कुछ पूर्ववर्ती ही थे। भौत्य मन्वन्तर में वाचावृद्ध संज्ञक देवर्षियों का सम्बन्ध स्वायम्भूव मनु से बताया गया है।[2] इससे भी भौत्य मनु की प्राचीनता और समकालिकता सिद्ध है। वैवस्वत मन्वंतर को छोड़कर अन्य तेरह मन्वन्तरों के सप्तर्षि ब्रह्मा के मानसपुत्रों पुलहादि के वंशज थे, उदाहरणार्थ तथाकथित अन्तिम भौत्य के समकालिक सप्तर्षि थे—

> भार्गवो ह्यतिबाहुश्च शुचिरांगिरसस्तथा।
> युक्तश्चैव तथाऽऽत्रेयः शुक्रो वासिष्ठ एव च।
> अजित पौलहश्चैव अन्त्याः सप्तर्षयश्च ते॥(हरिवंश१।७।६२-८७)

"भार्गव अतिबाहु, युक्त आत्रेय, शुचि आंगिरस, शुक्र वासिष्ठ, अजित पौलह।

उपर्युक्त रौच्य मनु आदि के पूर्ववर्ती स्वारोचिष मनु आदि चार मनु भी परस्पर सम्बन्धी और एक ही वंश प्रियव्रत के वंशज थे, यह पुराण में स्पष्ट ही लिखा है। अतः तथाकथित भावी सप्त मनुओं सहित १३ मनु वैवस्वत मनु से पूर्व हो चुके थे, यह पुराणप्रामाण्य से ही सिद्ध है। इनमे से अनेक मनु परस्पर भ्राता या पितापुत्र ही थे यथा तृतीय मनु उत्तम का पुत्र तामस चतुर्थ मनु था। चार मनुसावर्ण परस्पर भ्राता (सहोदर-एक माता के पुत्र) थे। सावर्णमनु और वैवस्वत मनु—विवस्वान् के पुत्र, अतः भ्राता ही थे।

अतः प्रत्येक विचारशील मनुष्य मान जायेगा कि १४ मनु भूतकालिक प्राणी थे और इनका क्रम इस प्रकार था—

(१) स्वायम्भुवमनु
(२) स्वारोचिष मनु
(३) उत्तम मनु
(४) तामस मनु
(५) रैवत मनु
(६) रौच्य मनु
(७) भौत्य मनु
(८) चाक्षुष मनु
(९) मेरुसावर्णि मनु
(१०) दक्षसावर्णि = प्राचेतस
(११) ब्रह्मसावर्णि --(कश्यप)
(१२) धर्मसावर्णि=प्रजापति
(१३) वैवस्वत मनु
(१४) वैवस्वतमनु सावर्णि

अतः कौन विज्ञ पुरुष पितापुत्र या परस्पर भ्राताओं में ३० करोड़ ६७ लाख 20 सहस्र वर्षों का अन्तर मानेगा, जैसा कि वर्तमानपुराणपाठों में मन्वन्तर का 'वर्षमान' है। अनेक मनु समकालिक थे—यथा पाँच सावर्णि मनु और

---

१. ब्रह्माण्ड० (३।४।१।१०६)

२. वाचावृद्धानृषीन्विद्धि मनोः स्वायम्भुवस्य वै (वही ३।४।१।१०६)

कुछ मनुओं में एक या दो पीढ़ी का अन्तर था और एक पीढ़ी में अन्तर एक शती से अधिक नहीं हो सकता। कुछ मनुओं में कुछ शताब्दीमात्र का अन्तर था, कुछ मनुओं में कुछ पीढ़ियों का अन्तर था।[1] अत: मनु या मन्वन्तर में करोड़ोंवर्ष का अन्तर मानना महती भ्रान्ति है, जिसके कारणों का विश्लेषण या विवेचन आगे किया जायेगा।

अब यह द्रष्टव्य एवं अन्वेष्टव्य है कि चौदह मनुओं की पूर्ण कालावधि का रहस्य 'मनु' शब्द एवं पुराण के निम्न श्लोक में है—

तच्चैकसप्ततिगुणं परिवृतं तु साधिकम्।
मनोरेतमधिकारं प्रोवाच भगवान् प्रभु:।[2]

'मनु' शब्द का मूलार्थ था 'मनुष्य' या पुरुषपीढ़ी। मनु या पुरुषपीढ़ी को 'युग' या 'पुरुषायु' या 'आयु' से भी व्यक्त किया जाता था—शतायुर्वैपुरुष:" (श० ब्रा० १६।४।१।१५)

'तस्माच्छतं वर्षाणि पुरुषायुषोभवन्ति । (ऐ० आ०)
'दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे'। (ऋग्वेद १।१५८।६)
तत उ ह दीर्घतमा दशपुरुषायुषाणि जिजीव' (शा० आ० २।१६)

वेद में पुरुषपीढ़ी को मानुषयुग (१०० वर्ष) कहा गया है—

तदूचिषे मानुषेमा युगानि। (ऋ० १।१०६।४)
विश्वे ये मानुषयुगा पान्ति मर्त्यं रिष:। (ऋ ५।५२।४)

एक मन्वन्तर में ३० करोड़ ६७ लाख २० सहस्र माने जायें तो चार सोवर्ण भ्राताओं सावर्ण मनुओं अथवा उत्तम मनु के पुत्र तामस (चतुर्थमनु) में इतना दीर्घ कालान्तर कैसे हो सकता है, यह सोचने की बात है। वेद में सामान्य मनुष्यायु १०० वर्ष का ही माना जाता था अत: पुराणों के वर्तमानपाठों में स्वायम्भुवमनु (आदिम मनुष्य) से वैवस्वत मनु (अन्तिम मनु) पर्यन्त ५० पीढ़ियाँ वर्णित है,[4]

---

१. यथा—तृतीय मनु उत्तम का पुत्र तामस मनु में एक ही पीढ़ी का अन्तर हुआ (२) उत्तम मनु की लगभग ४०वीं पीढ़ी में चाक्षुष मनु हुये और चाक्षुष मनु से वैवस्वत मनु में केवल १२ पीढ़ियों का अन्तर था।

२. ब्रह्माण्ड० (१।२।३५।१७३)

३. दिव्ययुग दैवयुग-देववर्ष आदि को आगे स्पष्ट करेंगे।

४. बाइबिल (जीनियस) में आदम (आत्मभू स्वायम्भुव मनु) से वैवस्वत मनु (नूह) तक केवल दश पीढ़ियां वर्णित है।

अनुमानतः पुराणों में २२ नाम छोड़ दिये गये, क्योंकि केवल प्रधानपुरुषों की गणना करना पुराणशैली थी—

पुनरुक्तत्वाद्बहुत्वात्तु न वक्ष्ये तेषु विस्तरम्। (वायु० १००।७०) अति-प्राचीन नामों में विस्मृति भी स्वाभाविक थी, पुराणों में जब अनेक भ्रम जुड़ते गये तो एक यह भ्रम भी जुड़ गया कि ७१ युगों (परिवर्तयुग) का एक मन्वन्तर होता है अतः स्वायम्भुवमनु से वैवस्वतमनुपर्यन्त ४३ परिवर्त या १६००० वर्ष व्यतीत हुये। प्रत्येक मन्वन्तर अथवा १४ मनुओ या मन्वन्तरों का कालान्तर कोई निश्चित नही था क्योंकि कुछ मनु पितापुत्र थे, कुछ सहोदर भ्राता, कुछ मे १२ पीढ़ी का, कुछ में ४० पीढ़ी का अन्तर था। प्रजापतियुग और देवयुग मे मनुष्य (देव, ऋषि आदि) की आयु दीर्घ होती थी इसका विवेचन पृथक् प्रकरण में करेंगे। अतः वैवस्वतमनु से १६००० (न्यूनतम) वर्ष पूर्व स्वायम्भुव मनु हुये। यह कालान्तर अधिक हो सकता है न्यून नहीं, क्योंकि उस समय मनुष्य दीर्घजीवी होते थे।

परिवर्तयुगाख्या और युगमानविवेक

वेद मे मानुषयुग के साथ दैव्ययुग, देवयुग या दिव्ययुग का उल्लेख है, जिसको पुराणों के भ्रान्तपाठों में प्रायः 'देववर्ष' कहा गया है।

पुराणो, विशेषत वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण के अनेक प्रकरणों में व्यासपरम्परा का वर्णन[1], असुर साम्राज्यकाल[2] तथा अनेकप्रकरणो मे यत्र तत्र 'युगाख्या' का उल्लेख है। प्रत्येकयुग या परिवर्त मे एक व्यास हुआ, परम्परा-क्रम से प्रत्येक व्यास, पूर्वव्यास का शिष्य था, यथा जातूकर्ण्य व्यास के अन्तिम-व्यास कृष्णद्वैपायन व्यास शिष्य थे, इसी प्रकार चतुर्थ व्यास बृहस्पति के गुरु तृतीय व्यास शुक्र थे, बृहस्पति के शिष्य पंचम व्यास विवस्वान् (सविता=सूर्य) हुये, अतः व्यासगण परस्पर गुरुशिष्यगण थे, ऐसे तीस व्यास, परमेष्ठी प्रजापतिकश्यप से कृष्णद्वैपायनपर्यन्त हुये। अतः युगाख्या युग या परिवर्त का वर्षमान लाखों करोड़ों वर्ष नहीं हो सकता। यह युग या परिवर्त ३६० वर्ष का था, जिसे भ्रान्ति से कहीं त्रेता, कहीं द्वापर, कहीं कलि और कहीं चतु-

---

१. (क) दैव्यं मानुषा युगाः (शु० यजु० १२।१११)

(ख) या ओषधीः पूर्वाजाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा (ऋ० १०।९७।१)

(ग) "तद्वै विद्वान् ब्राह्मणः सहस्रं देवयुगानि उपजीवति,"

(जै० ब्रा० २।७५)

(घ) वायुपुराण, त्रयोदश अध्याय

२. ब्रह्माण्ड० (२।३।७२ अध्याय)

युग बना दिया, पुनः ७१ चतुर्युग का एक मन्वन्तर माना गया, जिसका स्पष्टीकरण पूर्वपृष्ठ पर किया जा चुका है। युगाख्या को ही पुराणकारों ने उत्तरकालीन पाठों में 'चतुर्युग' बना दिया—

युगाख्या या समुद्दिष्टा प्रागेतस्मिन्मयाऽनघाः।
कृतत्रेतासंयुक्तं चतुर्युगमितिस्मृतम् ॥ (ब्र० १।२।३।५)

असुरराज्यकाल=दशयुगाख्यापर्यन्त—पुराणों मे उल्लिखित है कि देवों से पूर्व असुरो का पृथ्वी पर अखण्ड साम्राज्य दशयुग पर्यन्त रहा—
३६०×१०=३६०० वर्ष।

हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्त्रैलोक्यं प्राक्प्रशासति।
बलिनाऽधिष्ठितं राष्ट्रं पुनर्लोकत्रये क्रमात्।
सख्यमासीत्पर तेषां देवानामसुरैः सह।
युगाख्या दश सम्पूर्णा ह्यासीदव्याहृतं जगत्।[1]
दैत्यसंस्थमिदं सर्वमासीद्दशयुगं किल।
अशपत्तु ततः शुक्रो राष्ट्रं दशयुगं पुनः।[2]
युगाख्या दश सम्पूर्णा देवानाक्रम्य मूर्धनि।

"हिरण्यकशिपु दैत्यराज त्रैलोक्य का अधिपति था, पुन (प्रह्लाद और विरोचन के पश्चात्) त्रैलोक्य पर बलि का शासन हुआ। दशयुगपर्यन्त दैत्यों का अनुल्लंघित शासन रहा है और उनकी (प्रायः) देवों के साथ मैत्री रही। दशयुगपर्यन्त असुरो का विश्व पर अधिकार रहा। तदनन्तर शुक्राचार्यने शाप दिया कि तुम्हारा (असुरों का) राष्ट्र दशयुगपर्यन्त ही रहेगा। दशयुगपर्यन्त दैत्यगण देवों के सिर पर शासन करते रहे।" हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद और बलि—ये तीनो ही दैत्यों के तीन इन्द्र थे।[3]

हिरण्यकशिपु का राज्यकाल—(अवधि)—पुराणो में आदिदैत्यराज हिरण्यकशिपु के तपःकाल, राज्यकाल और अन्तकाल का उल्लेख मिलता है। यह वर्षसंख्या अत्यन्त दीर्घ और भ्रामक एवं परस्परविरोधी भी है। उसका राज्यकाल पुराणों में इस प्रकार है—

---

१. ब्रह्माण्ड० (२।३।७।६८-६९)
२. वही (२।३।७२।९२) तथा (३।२।३।७२—५१)
३. इन्द्रास्त्रयस्ते विख्याता असुराणां महौजसः। (वायु० ९७।९१)
सार्वभौम सम्राट=इन्द्र

हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुद बभौ ।
तथा शतसहस्राणि ह्यधिकानि द्विसप्ततिः ।
अशीतिश्च सहस्राणि त्रैलोक्येश्वरोऽभवत् ॥
(ब्रह्माण्ड० २।३।७२।८६)

एक अरब, बहत्तर लाख और अस्सी हजारवर्षपर्यन्त हिरण्यकशिपु त्रैलोक्येश्वर रहा ।" इतनी दीर्घसंख्या का रहस्य अज्ञात है, यद्यपि इससे प्रकट होता है कि उसका राज्यकाल दीर्घ था, जो आगे स्पष्ट किया जायेगा ।

एक स्थान पर हिरण्यकशिपु का तपःकाल ही एक लाख वर्ष बताया गया है—शत वर्ष सहस्राणा निराहारो ह्यधशिराः ।

वरयामास ब्रह्माण तुष्ट दैत्यो वरेण ह ॥ (ब्र० २।३।३।१४)

'हिरण्यकशिपु दैत्य ने निराहारऔर अधशिराः होकर तप किया और ब्रह्मा (कश्यप पिता) को तुष्ट करके वरदान माँगा ।"

परन्तु हरिवंशपुराण (१।४१।४०-४१) का पाठ प्राचीनतर और शुद्ध (सही) प्रतीत होता है—

पुरा कृतयुगे राजन् सुरारिर्बलदर्पितः ।
दैत्यानामादिपुरुषश्चचार तप उत्तमम् ।
दशवर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च ॥

"कृतयुग मे दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने ग्यारहसहस्र पाँचसौवर्ष तप (ब्रह्मचर्य) किया ।

आगे पुराणो एवं अन्य वैदिकग्रन्थो के प्रमाण से सिद्ध करेगें कि उपर्युक्त ११५०० वर्ष नहीं दिन थे, जिनके कुल मानुषवर्ष केवल ३२ होते हैं ($\frac{११५००}{३६०}$ = ३२ वर्ष), अतः हरिवंशपुराण का अक सत्य हैं कि हिरण्यकशिपु ने ३२ तप या ब्रह्मचर्य किया ।[1]

पुराणों मे युगाख्या के उल्लेख से हिरण्यकशिपु का राज्यकाल अनुमानित किया जा सकता है ।

हमने अन्यत्र सिद्ध किया है कि कश्यप और दक्षप्रजापति से युगाख्या

---

१. देवासुरयुग मे ३२ वर्ष—ब्रह्मचर्य—तप की प्रथा थी, जैसा कि इन्द्र और विरोचन द्वारा ऐसा ही किया गया—
'इन्द्रो वै देवानाम् अभिप्रवव्राज । विरोचनोऽसुराणां... ।
तौ ह द्वात्रिंशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूषतुः, । (छान्दोग्य० ८।७)

प्रारम्भ हुई, जिसको भ्रान्तिवश पं० भगवद्दत्त ब्रह्मा से मानते थे, परन्तु उन्होंने भी माना 'महाभारत में लिखा है कि ययाति प्रजापति से दसवाँ था'[1]। यह संख्या तभी पूर्ण होती है, जब गणना प्रचेता से आरम्भ की जाए। प्रचेता, दक्ष, अदिति(+कश्यप), विवस्वान्, मनु, इला, पुरूरवा, आयु, नहुष, और ययाति। इससे प्रतीत होता है कि महाभारत का युगारम्भ प्रचेता से होता है[2] अतः पुराणोल्लिखित युगारम्भ प्रचेता या दक्ष प्राचेतस से हुआ और परमेष्ठी प्रजापति कश्यप दक्ष प्राचेतस के समकालिक थे ही। कश्यप के ज्येष्ठ पुत्र हिरण्यकशिपु का जन्म प्रथम युग के अन्त मे हो गया था और वह प्रथम युग के अन्त या द्वितीय युग के प्रारम्भ में राज्याभिषिक्त हुआ होगा और चतुर्थी युगाख्या (चतुर्थ परिवर्त) मे नृसिंह द्वारा उसका वध हुआ—

चतुर्थ्यां तु युगाख्यायामापन्नेषु सुरेष्वथ।
संभूतः स समुद्रान्ते हिरण्यकशिपोर्वधे॥[3]

अत हिरण्यकश्यपु के समय तक संभवतः इन्द्र का जन्म भी नहीं हुआ था, परन्तु रुद्र उस समय विद्यमान थे, जो नृसिंह के पुरोहित थे।[4] रुद्र और दक्ष का संघर्ष भी द्वितीय युग में हुआ था—

द्वितीये हि युगे शर्वमक्रोधव्रतमास्थितम्।
पश्यन् समर्थश्चोपेक्षां चक्रे दक्षः प्रजापतिः॥[5]

अतः हिरण्यकशिपु का राज्यकाल तीन युग—(३६०×३=१०८०) लगभग एक सहस्रवर्ष पर्यन्त रहा। आधुनिक मापदण्ड से इतना दीर्घराज्यकाल असंभव प्रतीत होता है, परन्तु प्राचीनकाल मे दिव्यपुरुषो की आयु सहस्रवर्ष से अधिक होती थी, यह 'दीर्घायुपुरुष' प्रकरण मे सिद्ध करेंगे।

यहां यह सब अनुशीलन एव पुराणप्रामाण्य प्रदर्शित करने का हमारा उद्देश्य है युगाख्या का सत्य वर्षमान निश्चित करना और चतुर्युगादि का वर्षमान लाखो वर्ष नहीं था, वह केवल १२००० मानुष वर्ष था।

सप्तमयुग में बलिबन्धन

प्रह्लाद दैत्येन्द्र और बलि का सम्मिलित राज्यकाल पुनः हिरण्यकशिपु के समान अविश्वसनीय एवं भ्रान्तिमय कथित है—

१. ययातिः पूर्वजोऽस्माकं दशमो यः प्रजापतेः। (आदिपर्व १।१७)
२. भा० बृ० इ० भा १, पृ० ६५
३. ब्रह्माण्ड० (२।३।७३।७६)
४. द्वितीयो नरसिंहोऽभूद्रुद्रपुरस्सरः। (वायुपुराण)
५. चरकसंहिता, चिकित्सास्थान (३।१५,१६)

पारम्पर्येण राजाबलिर्वर्षार्बुदं पुनः ।
षष्टिश्चैव सहस्राणि त्रिंशच्च नियुतानि च ।
बले राज्याधिकारस्तु यावत्कालं बभूव ह ।
प्रह्लादो निर्जितोऽभूच्च तावत्कालं सहासुरैः ॥
(ब्रह्माण्ड० २।३।६०-६१)

'परम्परा से बलि का राज्यकाल एक अरब तीस लाख साठ हजार वर्ष रहा, इसी मध्य मे देवों ने प्रह्लाद को विजित कर लिया था' ।

परन्तु, अन्यत्र, प्रामाणिक पुराणपाठ से ज्ञात होता है कि प्रह्लाद, विरोचन और बलि का राज्यकाल सप्तमयुग तक रहा—

बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमे युगे ।
दैत्यैस्त्रैलोक्याक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत् । (वायु०)

'सप्तमयुग में संसार के बलि के अधीन हो जाने पर और त्रैलोक्य के दैत्यों से आक्रान्त होने पर तृतीय (वैष्णव अवतार) वामन हुआ ।'

प्रह्लाद, विरोचन और बलि का शासन पंचमयुग से सप्तम युगपर्यन्त, लगभग १००० वर्ष रहा । जब अकेले हिरण्यकशिपु का राज्यकाल इतना ही था तो तीन दैत्यपीढ़ियों का इतना राज्यकाल असंभव नहीं कहा जा सकता ।

प्रथम युग का आरम्भ दक्ष, कश्यपादि से, आज से १४००० वि०पू० हुआ अतः उपर्युक्त युगगणना से हिरण्यकशिपुवध १३००० वि०पू० के आसपास और बलिबन्धन १२००० वि०पू० के निकट हुआ ।

उपर्युक्त युगपद्धति (युगाख्या) की गणना अनुसार अन्य कुछ महापुरुषों का समय पुराणों में इस प्रकार निर्दिष्ट है—

त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह ।

'दशम त्रेतायुग (परिवर्त) मे दत्तात्रेय हुये ।'

पञ्चदश्यां तु त्रेतायां संबभूव ह ।
मान्धाता चक्रवर्तित्वे तस्थौ उतथ्यपुरस्सरः ।

'पन्द्रहवें त्रेतायुग (परिवर्त) में चक्रवर्ती मान्धाता हुआ ।'

एकोनविंशे त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकोऽभूत् ।
जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरस्सरः ॥

'उन्नीसवें त्रेतायुग मे सर्वक्षत्रान्तक षष्ठ वैष्णव अवतार हुआ—जामदग्न्य राम, विश्वामित्र को आगे करके ।'

चतुर्विंशे युगे रामो वसिष्ठेन पुरोधसा ।
सप्तमो रावणवधस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः ॥

"चौबीसवें युग में वसिष्ठ पुरोहित को आगे करके सप्तम वैष्णव अवतार रावण वध हेतु, दाशरथि राम का हुआ ।"

उपर्युक्त वायुपुराण पाठ मे युग या परिवर्त को 'त्रेतायुग' कहा गया है, जिससे महती भ्रान्ति होती है कि इन युगो के मध्य मे कृतयुग, द्वापर और कलियुग भी हुए होंगे। परन्तु यह भ्रान्ति है, जो सच्चा इतिहासवेत्ता समझ सकता है कि मान्धाता और दशरथि राम या जामदग्न्य राम और दाशरथि राम में कितने युग, पीढ़ियो या काल का अन्तर था। अन्यत्र पुराणपाठ मे उपर्युक्त युगाख्या को द्वापर या कलि भी कहा है, यह पूर्वपृष्ठ पर संकेत कर चुके हैं, अत: द्वापर और कलि सम्बन्धी भ्रान्तपाठो के साथ 'त्रेतायुग' सम्बन्धी पाठ भी भ्रान्त है। इस भ्रान्ति के समूल नाश हेतु वक्ष्यमाण एवं उद्ध्रियमाण वेद-व्यास परम्परा द्रष्टव्य है—जो वायुपुराण २३ अध्याय, श्लोक ११४-२२६ तक वर्णित है, उसका केवल आवश्यक अंश पूर्व उद्धृत किया गया है।

उपर्युक्त वेदव्यास परम्परा के प्रारम्भिक पाच व्यासों के लिए 'द्वापर' संज्ञा का प्रयोग हुआ है, जबकि पूर्वोद्धृत वैष्णव अवतार संबंधी प्रकरण मे 'त्रेतायुग' का प्रयोग किया गया है ।

प्रथमे द्वापरे ब्रह्मा व्यासो बभूव ह ।
पुनस्तु नभदेवेशो द्वितीये द्वापरे प्रभुः
तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः ।
चतुर्थे द्वापरे चैव व्यासोऽङ्गिरा स्मृतः ।
पञ्चमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता ।

इसके आगे परिवर्तसंज्ञा का प्रयोग हुआ है—

सप्तमे परिवर्ते तु यदा व्यासः शतक्रतु. ।
परिवर्तेऽथ नवमे व्यासः सारस्वतो यदा ॥

अतः युगाख्या की वास्तविक संज्ञा 'परिवर्त' या 'पर्याय' थी, परन्तु भ्रान्ति से उसे 'त्रेता' या 'द्वापर' कहा गया।

उपर्युक्त पाठ (वायुपुराण, अध्याय २६) में केवल २८ व्यासों के नाम हैं, परन्तु इसी पुराण के अन्त में २९ व्यासों के नाम हैं—

१. ब्रह्मा	११. शरद्वत्	२१. निर्यन्तर
२. वायु (मातरिश्वा)	१२. त्रिविष्ट	२२. वाजश्रवा (गौतम)
३. उशना शुक्र	१३. अन्तरिक्ष	२३. सोमशुष्म
४. बृहस्पति	१४. वर्षि	२४. तृणबिन्दु
५. विवस्वान् सविता	१५. त्र्यारुण	२५. ऋक्ष-वाल्मीकि
६. यम वैवस्वत	१६. धनंजय	२६. शक्ति वासिष्ठ
७. शक्र इन्द्र	१७. कृतंजय	२७. पराशर
८. वसिष्ठ	१८. तृणंजय	२८. जातूकर्ण
९. सारस्वत-अपांतरतमा	१९. भरद्वाज (भारद्वाज)	२९. द्वैपायन पाराशर्य
१०. त्रिधामा	२०. गौतम	

पुराणों के अनेकश भ्रष्टपाठों के कारण वेदव्यास नामों में पर्याप्त विकृतियां हैं। इनमें क्रमव्यत्यास के साथ नाम पाठान्तर की त्रुटियां भी हैं, विशेषतः द्वादश व्यास से पच्चीसवें व्यास ऋक्ष वाल्मीकि तक के नामभेद या पाठान्तर द्रष्टव्य हैं—

१२. भरद्वाज = सनद्वाज = सुतेजा = त्रिविष्ट
१४. धर्म सुचक्षु = वर्णी - नारायण
१६. धनंजय = सजय
१८. कृतंजय = ऋजीषी - जय - तृणंजय
२१. वाचस्पति = निर्यन्तर = हर्यात्मा - उत्तम
२२. वाजश्रवा = शुक्लायन
२३. सोमशुष्मायन = सोमशुष्म
२४. ऋक्ष = वाल्मीकि

उपर्युक्त पाठान्तरों के कारण एक या दो व्यासों के नाम लुप्त हो गये, प्रत्येक व्यास एक युग या परिवर्त = ३६० वर्ष के अन्तर या मध्य में हुआ। वर्तमानपाठों में कुल व्यासों की संख्या अट्ठाईस बताई गई है—

> अष्टाविंशतिकृत्वो वै वेदा व्यस्ता महर्षिभिः। (ब्रह्माण्ड० १।२।३५; तथा वायु० अध्याय २३, विष्णुपुराण ३।३ द्रष्टव्य।)

उपर्युक्त पाठान्तरों में एक-एक व्यास के चार-चार तक नाम मिलते हैं, अतः एक व्यास का नाम लुप्त होना कोई असंभव नहीं है। यह संभव है कि ऋक्ष और वाल्मीकि पृथक् पृथक् हों, अथवा भरद्वाज, सनद्वाज, धनंजय, संजय आदि में कोई एक पृथक् हो, अतः व्यासपरम्परा में न्यूनतम ३० [illegible] हुये,

युगपरिवर्त का चतुर्युग गणना तभी सामंजस्य बैठता है। अतः वाल्मीकि से पाराशर्य व्यास तक २४०० वर्षों (द्वापर की अवधि) में न्यूनतम छः व्यास होने चाहिये।

वेदव्यासपरम्परा का विस्तृत वर्णन, यद्यपि चतुर्थ अध्याय मे होगा, यहां पर इसके संक्षिप्त सोदाहरण विवरण का उद्देश्य यह प्रदर्शित करना है कि व्यास-अवतरणकाल का तथाकथितयुग एक चतुर्युग—१२००० मानुषवर्ष या ४३२०००० तैंतालीस लाख बीस सहस्र मे नहीं हुआ। प्रत्येक व्यास में १२००० वर्षों का अन्तर ही अत्यधिक है। तीस व्यास केवल १०८०० वर्ष (३६० ३०=१०८००) मे हुये, पुनः द्वादश सहस्र या तैंतालीस लाख बीस सहस्रों वर्षों का अन्तर कितना बुद्धिगम्य या संभव है, यह सोचा जा सकता है।

युगसम्बन्धीभ्रान्त एवं अनैतिहासिक धारणा का कारण यही था कि ३० युगो मे प्रत्येक का वर्षमान ३६० वर्ष था, और चतुर्युगपद्धति से चारो युगो का वर्षमान १२००० मानुषवर्ष था। यही युगपद्धति का ऐतिहासिक रूप था, परन्तु वास्तविक युगगणना की विस्मृति के कारण यह माना जाने लगा कि प्रत्येकव्यास एक चतुर्युग (४३ लाख २० हजार) वर्ष के अन्तर से हुआ। पुनः भ्रान्तिवश मानुषवर्षों को या परिवर्त को युग (३६० वर्ष का) न समझ कर एक चतुर्युग समझा गया और तुर्रा यह कि वह भी मानुष (१२००० वर्ष) नहीं, उसमे भी ३६०×(१२०००) गुणा करके ४३ लाख २० हजार बना दिया गया। ३६० वर्ष और ४३ लाख २० हजार मे कितना अन्तर है, यह पूर्व संकेत कर चुके है। यह विचारणीय है कि प्रत्येक व्यास, पूर्वव्यास का शिष्य था, यथा प्रथम व्यास ब्रह्मा कश्यप का शिष्य था वायु प्रभ्वसन (प्रभंजन), मात 'रिश्वा, उसका शिष्य हुआ शुक्राचार्य, उसका शिष्य हुआ बृहस्पति, और उसका शिष्य हुआ देव विवस्वान्। अन्तिम व्यास को देख लीजिये—पाराशर्य कृष्ण-द्वैपायन जातूकर्ण का शिष्य था। गुरुशिष्य मे न तो १२००० वर्षों का अन्तर हो सकता है और न ४३ लाख २० हजार वर्ष का। ३६० वर्ष का अन्तर ही कठिनाई से बोधगम्य है। ऐसी स्थिति में युग (परिवर्त) का मान ३६० वर्ष और चतुर्युग का मान १२००० मानुष वर्ष ही था, यही बुद्धिगम्य एवं ऐतिहासिक तथ्य था और ऐसा ही था, यही आगे विविध प्रमाणों से सिद्ध करेंगे।

पुराणपाठों में एतद्विषयक भ्रान्ति के उदाहरण

युगाख्या (३६० वर्ष) को किस प्रकार चतुर्युग (१२००० मानुषवर्ष को दिव्य समझकर—४३२०००० वर्ष) बना दिया, निम्न ब्रह्माण्ड एवं वायुपुराण

उदाहरणों से और अधिक स्पष्ट करेंगे। ब्रह्माण्डपुराण के निम्न उदाहरण में किस प्रकार चतुर्युग, द्वापर और त्रेता को एकादश परिवर्त (युग) के अन्तर्गत किया गया है, एतदर्थ तत्सम्बन्धी सम्पूर्ण श्लोक उद्धृत करते हैं—

चतुर्युगे त्वतिक्रान्ते मनो ह्येकादशे प्रभो ।
अथावशिष्टे तस्मिंस्तु द्वापरे सम्प्रवर्तिते ।
मरुत्तस्य नरिष्यन्तस्तस्य पुत्रो दमः किल ।
राज्यवर्द्धनकस्तस्य सुधृतिस्ततो नरः ।
केवलश्च ततस्तस्य बन्धुमान् वेगवांस्ततः ।
बुधस्तस्याभवद्यस्य तृणबिन्दुर्महीपतिः ।
त्रेतायुगेमुखे राजा तृतीये संबभूव ह ॥

(ब्रह्माण्ड० २।३।८।३४-३६)

पुराणलिपिकार ने एक ही सांस में ११ पीढ़ियों मे चतुर्युग (एकादश), द्वापर, और तृतीय—त्रेतायुग के दीर्घकाल को व्यतीत कर दिया। ११ पीढ़ियां अधिक से अधिक एक सहस्र वर्ष में हो सकती हैं, परन्तु पुराणप्रतिलिपिकर्त्ता ने इसके लिए चतुर्युग+द्वापर+त्रेता (४३२००००+१२९६०००+८६४०००=६४८०००० चौंसठ लाख अस्सी हजार वर्ष) बताया। इसका अर्थ हुआ कि प्रत्येक राजा ने छः लाख वर्ष तक राज्य किया। इस प्रकार की अविश्वसनीय बात में न कोई विश्वास कर सकता है, न करना चाहिए।

और उपर्युक्त श्लोक में 'त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये संबभूव ह' भी भ्रष्ट है, क्योंकि यही तृणबिन्दु अन्यत्र त्रयोविंश युग का व्यास बताया गया है—'परिवर्ते त्रयोविंशे तृणबिन्दुर्यदा मुनिः' अतः तृणबिन्दु का समय तेईसवें युग में था न कि तृतीय युग—यह तथ्य व्यासपरम्परा के साथ राजवंशपरम्परा से भी सिद्ध है। इस उदाहरण से प्रकट होता है कि वर्तमान पुराणपाठों में कितनी अशुद्धि एवं पाठ-च्युति या पाठभ्रष्टता है।

सत्य है कि सम्राट मरुत्त ग्यारहवें युग (३६०×११=३९६० वर्ष—१४०००—३९६०=१००४० वि०पू०)या मान्धाता से लगभग डेढ़ सहस्राब्दी (१५०० वर्ष) पूर्व हुआ और सम्राट तृणबिन्दु २३वें या २४ युग में ५७२०—५३६० वि०पू०, रामदाशरथि और रावण से एक युग (३६० वर्ष) पूर्व हुये थे, क्योंकि तृणबिन्दु, रावण के पितामह पुलस्त्य ऋषि के ससुर थे, जिनकी कन्या इलविला का विवाह ऋषि के साथ हुआ था[1]।

---

१. तस्य चेलविला कन्यालम्बुषागर्भसंभवा। (ब्रह्माण्ड० २।३।८।३७)

अतः उत्तरकाल में पुराण में ३६० वर्ष का 'युग' किस प्रकार भ्रान्त किया गया, यह इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

इसी प्रकार की भ्रान्ति का एक और उदाहरण पुराण में द्रष्टव्य है।

> द्वितीये द्वापरे प्राप्ते शौनहोत्रः प्रकाशिराट्।
> पुत्रकामस्तपस्तेपे नृपो दीर्घतपास्तथा।[1]

इस काशिराज दीर्घतपा शौनहोत्र के वंश में क्रमशः धन्व, धन्वन्तरि, केतुमान्, भीमरथ, दिवोदास और प्रतर्दन हुये। यह हमने अन्यत्र प्रमाणित किया है कि वैश्वामित्र अष्टक, औशीनरि शिबि और वसुमना ऐक्ष्वाक प्रतर्दन के समकालिक राजा थे और सत्रहवें युग में हुए। अतः शौनहोत्र काशिराज दीर्घतपा का समय द्वादशयुग से पूर्व नहीं हो सकता, अतः 'द्वादश' का 'द्वितीय' पाठ अत्यन्त भ्रष्ट है और परिवर्त या युग के स्थान पर 'द्वापर' पद का प्रयोग भी अतिभ्रामक है।

अतः पुराणों के युगसम्बन्धीपाठ में गहन अनुसंधान की आवश्यकता है और इन पंक्तियों का लेखक साधनों के अभाव में अत्यन्त कष्टमय स्थिति में भी घोर प्रयत्न करके 'युगगणना' के ऐतिहासिकरूप का पुनरुद्धार कर रहा है और यह पुस्तक इसी दिशा में एक लक्षित प्रयत्न है। युगपद्धति या युगगणना पर पर इतना तमः या धूल जम चुकी है कि इसको दूर करने के लिये सतत् महान् यत्न करना पड़ेगा।

उपर्युक्त भ्रान्तिमय गणना के कारण ही — यथा वेदव्यासपरम्परा केआधार पर अत्युत्तरकालीन धार्मिक आचार्यों ने, यथा हेमाद्रिसंकल्प में यह संकल्प पढ़ा जाता है – 'स्वायम्भुवादिचतुर्दशमन्वन्तराणां मध्ये वैवस्वतमन्वन्तरे चतुर्णां युगानां मध्ये अष्टाविंशतितमे कलियुगे तत्प्रथमचरणे गताब्दे' इत्यादि। और यह मानकर वैवस्वतमनु का समय आज से बारहकरोड़वर्षपूर्व निश्चित किया जाता है।

वैवस्वतमनु का समय १२ करोड़ वर्ष पूर्व मानने की मान्यता अन्य कारणों (यथा वंशावली) के अतिरिक्त आधुनिक विज्ञान की इस खोज से ही निरस्त या असिद्ध हो जाती है कि बीस हजार से अस्सी हजार वर्ष के मध्य में पृथ्वी की स्थावर जंगम (वनस्पति-जीव) सृष्टि सूर्यदाह या हिमप्रलय में नष्ट हो जाती है[2]। इस खोज से विकासवाद का भी पूर्ण खण्डन होता है। वैवस्वत

---

१. वायु० (९२।१८)

२ Lyell or others, are favourable and 21000 years must elapse

मनु से बृहद्बल (महाभारतकाल) तक लगभग १०० पीढ़ियाँ हुईं, बारहकरोड़वर्ष में केवल १०० पीढ़ियाँ ही हुई हों, यह सर्वथा अबुद्धिगम्य है। इस अवधि मे तथाकथित ३३२ चतुर्युग होते और इनमे पीढ़ियां भी इतनी होती कि जिनकी गणना कोई पुराणकार स्मरण नहीं रख सकता। अतः प्रत्येक मन्वन्तर मे ७१ चतुर्युग, आदि की गणना इसी भ्रान्तिवश हुई कि वेदव्यासपरम्परा के ३० युगों को ३० चतुर्युग समझा गया। वेदव्यास परस्पर गुरुशिष्य थे, इनमे तीन या चार शती का अन्तर भी आधुनिक मान-दण्ड से अधिक और अविश्वसनीय है, पुनः लाखों वर्षों का अन्तर (गुरु-शिष्य मे) कैसे संभव है ?

युगगणना में भ्रान्ति के मूल कारण

अतः उत्तरकालीन या वर्तमानकाल पुराणपाठो मे ऐतिहासिक गणना में भ्रान्ति के निम्न दो कारण थे।

प्रथम— वैदिक 'दिव्य-मानुष' शब्द

द्वितीय—पर्याय, परिवर्त-युग को चतुर्युग समझना या उसको उत्तरकाल मे त्रेता, द्वापर; या कलि संज्ञा प्रदान करना।

तृतीय—भ्रान्ति से उपर्युक्त दोनो गणनाओं का मिश्रण करना।

अर्थात् ऐतिहासिक युग या परिवर्त का वर्षमान ३६० वर्ष था, यही युग पद्धति प्राग्महाभारतकाल में विशेषरूप से प्रचलित थी। आदिकाल (कश्यप-दक्षकाल) से महाभारतयुग तक ऐसे ३० युग व्यतीत हुए और प्रत्येक युग मे एक व्यास अवतीर्ण हुआ। महाभारतकाल के आसपास चतुर्युगपद्धति (कृत = वर्ष = ४८००, त्रेता ३६०० वर्ष, द्वापर = २४०० वर्ष) का प्राबल्य हो गया, तथापि व्यास ने पुराण मे दोनो का पार्थक्य रखा और महाभारत मे गणना प्रायः चतुर्युगीनपद्धति से की। महाभारतयुग तक दोनों गणनापद्धतियों से ३० × ३६० = १०८००) = कृतत्रेताद्वापर १०८०० वर्ष व्यतीत हुए। परन्तु उत्तर-कालीनपुराणप्रक्षेपकारों या प्रतिलिपिकारों को भ्रान्तियां होती गईं, अतः

---

between two successive occurance of winter at aphelion—and four Inter Glacial epoches, the duration must be extended to soming like 80000 years (Arctic Home in the Vedas, p. 30).

पुराणों मे प्रजा के सूर्यदाह से नष्ट होने का बारम्बार उल्लेख है—
युगान्ते सर्वभूतानि दग्ध्वेव वसुरुल्वणः। (ब्रह्मा० मा० १५७)

३६० वर्ष वाले ३० युगों को पृथक् न समझकर चतुर्युग (=१२००० वर्ष) से गुणा करके यह कल्पना की कि यह गणना दिव्यवर्षों में है, मूल में ३६० वर्ष ऐतिहासिक युग का मान ही था, उसे गुणा करके १२००० × ३६० = ४३२०००० वर्ष बना दिया, जिससे चतुर्युग इतिहास की वस्तु न बनकर कल्पना लोक की वस्तु बन गये।

वर्ष का दिनपरक अर्थ-वैदिक दिव्यमानुष उभय संज्ञाओं ने भी भ्रान्ति उत्पन्न करने में सहायता की। पुराणों की वर्षगणना में भ्रम का मूल कारण तैत्तिरीय ब्राह्मण का यह वाक्य था—'**वर्ष देवानां अहः**' यद्यपि इसका ऐतिहासिक गणना से कोई सम्बन्ध नहीं था, यह एक प्ररोचनावाक्य था, परन्तु उत्तरकालीन ज्योतिषियों आदि ने भ्रान्तिवश, इसका सम्बन्ध पुराणोल्लिखित युगों—चतुर्युगों और परिवर्तों से जोड़कर उन्हें अनैतिहासिक किंवा काल्पनिक बना दिया। प्राचीन इतिहास-पुराणपाठों मे मूल ऐतिहासिकगणना सामान्य मानुषवर्षों में ही थी, कुछ विशिष्ट उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) रामायणादि मे राम का वनवासकाल सामान्य १४ वर्षों का ही कथित है, यह तथ्य सुप्रसिद्ध है, परन्तु उत्तरकाण्ड मे एक बालक की आयु पाचसहस्रवर्ष कही गई है—

(क) अप्राप्तयौवनं बालं पंचवर्षसहस्रकम्।
अकाले कालमापन्नम् (राम० ७।७३।५)

(ख) दशरथ की आयु—षष्टिवर्षसहस्राणि जातस्य ममकौशिक।
(रामा० १।५१।१)

इस पर टीकाकार तिलक ने कहा है—'**वर्षशब्दोऽत्रदिनपरः**, '**सहस्रसंवत्सरसत्रमुपासीत इतिवत्**' **तेन षोडशवर्षबालकमित्येवायम्**।

इस प्रकार राम का राज्यकाल ११००० दिन, जिसके लगभग ३१ वर्ष बनते हैं, परन्तु दिव्यवर्ष = १ दिन के घटाटोप में उसे ११००० वर्ष बना दिया—

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति। (रामा० १।१)

परन्तु पुराणों में सर्वत्र ही ऐसा नहीं किया गया, यथा शुक्राचार्य ने जयन्ती के साथ दश मानुषवर्ष वास किया—

ततः स्वगृहमागत्य जयन्त्या सहितः प्रभुः।
स तया चापसंदृश्या दशवर्षाणि भार्गवः॥
(ब्रह्माण्ड० २।३।७३।१२)

यहां तक कि अश्वघोष (३५० वि० पू०) के समय तक—(कनिष्कसम-काल) तक यह तथाकथित 'दिव्यवर्षगणना' प्रचलित नहीं हुई थी—

विश्वामित्रो महर्षिश्च विगाढोऽपि महत्तपः ।
दशवर्षाण्यहर्मेने घृताच्याप्सरसा हृतः ॥ (बुद्धचरित ४।२०)

परन्तु अनेक बौद्ध, जैन और सूर्यसिद्धान्तादिग्रन्थों में तथाकथित दिव्य वर्षगणना परिपाटी प्रविष्ट हो गई। यथा निदानसंज्ञक बौद्धग्रन्थ में २४ बुद्धों में कुछ की आयु, बुद्धघोष ने इस प्रकार बताई है—

प्रथम बुद्ध—दीपंकर=आयु- एक लाख वर्ष=दिन=२७७ वर्ष
द्वितीय बुद्ध—कौण्डिन्य=आयु=एक लाख वर्ष=दिन=२७७ वर्ष

उस समय यह दिव्यगणनासम्बन्धीरोग केवल भारतवर्ष में ही नहीं बैबीलन (ईराक) सदृश असुरदेशों में भी फैल गया था तभी तो वहां के प्रसिद्ध इतिहासकार बैरोसस ने राजाओं के राज्यकाल को भारतीयपुराणों के सदृश सामान्यवर्षों को दिव्यवर्ष मानकर गणना की है[1]—

In Eridu, Aliulum became King and reigned 28800 years, Alalagar reigned 36000 years. Five cities were they. Eight Kings reigned 211200 years (The Greatness that was Bobylon, p. 35 by H.W.F. Saggs)

बैरोसस के अनुसार ही जलप्रलय से पूर्व ८६ राजाओं ने ३४०९० वर्ष राज्य किया और १० राजाओं या १० राजवंशों ने ४ लाख ३ हजार वर्ष राज्य किया।

दश राजाओं का राज्य काल ४०३००० वर्ष=दिन=१११० वर्ष
राजा एललम इलिल(=भरतपूर्वज) या पुरूरवा ऐल=
राज्यकाल २८८०० वर्ष=दिन=८० वर्ष राज्यकाल
राजा अलालगर=३६००० = दिन=१००वर्ष राज्यकाल
आठ राजाओं का राज्यकाल २४१२०० दिन=६७० वर्ष

पुराणों के सदृश बैरोसस भी इसी भ्रान्त 'दिव्यगणना' पद्धति के चक्कर में फंस गया। तृतीयशतीपूर्व के इतिहासकार बैरोसस ने दैत्येन्द्र असुर बलि

१. सूर्यसिद्धान्त का सम्बन्ध असुर मय से था, उसमें लिखा है कि मानुषवर्ष को दिव्यवर्ष बनाने की प्रथा आसुरदेशों में भी थी—

सुरासुराणामन्योऽन्यमहोरात्रं विपर्ययात् ।
तत्षष्टिषड्गुणदिव्यं वर्षमासुरमेव च । (सूर्यसिद्धान्त १।१४)

के मन्दिर में जलप्रलयपूर्व और पश्चात् के राजाओं का विवरण सुरक्षित लिखा था, जहां से नकल करके उसने अपना इतिहासग्रन्थ लिखा था (द्रष्टव्य: हिस्ट्री आफ हिन्दुस्तान, टी० मौरिस, पृ० ३६६)।

मूल में उपर्युक्त वृतान्त दिनों में ही लिखा हुआ था, इतने पुरातन वृतान्त को पढ़ने या समझने में बैरोसस को भ्रान्ति या त्रुटि होना असंभव नहीं, इसी भ्रान्ति के कारण बैरोसस ने दिनों को वर्ष समझकर राजाओं का राज्य-काल हजारों लाखों वर्षों में लिखा, जिस प्रकार पुराणप्रक्षेपकारों ने सामान्य मानुषवर्षों को दिव्यवर्ष समझकर उसी प्रकार गणना की। हमने अपने अनु-संधान से संशोधन (शुद्ध) कर दिया है।

कहीं-कहीं पुराणों एवं वेदों में 'दिव्य' शब्द निरर्थक भी है—(१) सः (प्रजापतिः) ऊर्ध्वबाहुरधस्तात् भूम्यां शिरः कृत्वा दिव्यं वर्षसहस्रं तपोऽतप्यत' (काठकसंहिता)। पुराणों में सप्तर्षियुग के २७०० वर्षों में 'दिव्य' शब्द निरर्थक ही है—सप्तर्षीणां युगं ह्येतद्दिव्यया संख्यया स्मृतम् (वायु० ६६। ४१६) यथा हरिवंश (१।२६।१८) तथा वायुपुराण (६१।५) में पुरूरवा ने उर्वशी के साथ लगभग ६० वर्ष रमण किया—

> तया सहावसद्राजा दश वर्षाणि चाऽष्ट च।
> सप्त षट् सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च वीर्यवान्॥ (वायु०)
> वर्षाण्येकोनषष्टिस्तु तत्सक्ता शापमोहिता। (हरिवंश०)

विष्णुपुराण इसी ६० वर्ष को ६० सहस्रवर्ष कहता है—

'तया सह रममाणः षष्टिवर्षसहस्राण्यनुदिनप्रवर्द्धमानप्रमोदोऽवसत्।' (४।६)

अतः ऐसे स्थानों पर सहस्रपद निरर्थक या पूर्णार्थक है।[1]

परन्तु राजाओं के राज्यकालसम्बन्धी विवरणों से प्रायः वर्ष या सामान्य मानुषवर्ष को दिव्यवर्ष समझकर उसको पुनः ३६० से गुणा करके तथा-कथित वर्ष (वास्तव में दिन) बना दिया है, यथा राम दाशरथि के राज्यकाल में ११००० वर्ष, वास्तव में दिन ही थे, जिनको ३१ वर्ष में ३६० का गुणा करके बनाया गया है।

---

१. म० म० मधुसूदन ओझा ने 'अत्रिख्याति' में लिखा है—'एष त्रीणि वर्ष-सहस्राणि शक्तिविशेषलाभार्थमृक्षपर्वतेऽनुत्तमं तपस्तेपे इत्याहुः। तत्र सहस्र शब्दः पूर्णार्थकः 'सर्वं वै सहस्रम्' (श० ब्रा० ४।६।१।१५) इति श्रुतेः। पूर्णत्वं च वर्षाणां मासवासरादिभिरन्यूनान्यतिरिक्तत्वम्।'
(अत्रिख्याति, पृ० ३)

राजाओं के राज्यकाल वर्ष सम्बन्धी और उदाहरण आगे लिखेंगे।

दीर्घसत्रसम्बन्धीमीमांसा

मीमांसादर्शनशास्त्र मे 'सहस्रसंवत्सरात्मकसत्र' के विषय मे सूत्रग्रन्थों एवं जैमिनीयमीमांसासूत्र मे जो शास्त्रार्थ मिलता है— उससे भी वर्षों के दिन मानने की परम्परा पर अच्छा प्रकाश पड़ता है, इस सम्बन्ध में कात्यायनश्रौतसूत्र और जैमिनिमीमांसासूत्र मे विभिन्न आचार्यों के मत उद्धृत किये हैं, जिससे ज्ञात होता है कि उस समय 'सहस्रसंवत्सरसत्र' के विषय मे भारी विवाद था और आचार्यगण 'वर्ष' को 'दिनपरक' अर्थ मानने के पक्ष मे थे—

कात्यायनसूत्र	जैमिनिमीमांसासूत्र
सहस्रसंवत्सरम्मनुष्याणामसम्भवात्	सहस्रसंवत्सरं तदायुषामसंभवान्मनुष्येषु
शास्त्रसम्भवादिति भारद्वाजः	कुलकल्पः स्यादिति कार्ष्णाजिनेरै—
कुलसत्रमिति कार्ष्णाजिनिः	कस्मिन्नसम्भवात् ।
साम्युत्थानमिति लौगाक्षिः	संवत्सरो विचालित्वात्
अह्नां वाशक्यत्वात्[1]	मासाः प्रकृतिः स्यादविकारात् ।
	अहनि वाऽभिसंख्यत्वात् ।[2]

कोई सहस्रसंवत्सरसत्र को कुलसत्र मानता था, कोई साम्युत्थान (बीच में छोड़ना) और अन्त मे यही मान्यता थी कि यहां संवत्सर का अर्थ 'दिन' ही है। यद्यपि सहस्रसंवत्सरात्मकसत्र महाभारतकाल मे नही होते थे तथापि प्रजापतियुग में प्रजापतियों ने ऐसे सहस्रसंवत्सरात्मक सत्र किये थे।[3] प्रथम प्रजापतिगण स्वायम्भुव मनु, मरीचि आदि के अतिरिक्त उत्तरकाल में परमेष्ठी प्रजापति कश्यप के पश्चात् 'सहस्रसंवत्सरात्मकयज्ञ' का प्रचलन समाप्त हो गया, जैसा कि सूत्रकारों ने कहा है—'तदायुषामसंभवान्मनुष्येषु'। इसीलिये यह विवाद का विषय बन गया। तथापि यहां इसका उल्लेख इसीलिये किया गया है कि वेदाचार्य या मीमांसकगण 'दिन' को ही वर्ष (संवत्सर) भी मानते थे, इसीलिये भी संभवतः उत्तरकालीन पुराणपाठो मे भ्रान्तिवश दिनों को वर्ष (संवत्सर) बना दिया गया।

---

१. का० श्रौ० १।६।१७-२५

२. जै० मी० सू० ६।७।४३१-४१

३. विश्वसृजः प्रथमाः सत्रमासत सहस्रसमम्। आप० श्रौ० २३।१४।१७
प्रजापतिः सहस्रसंवत्सरमास्त। जै० ब्रा० (१।३)

उपर्युक्त पृष्ठो पर भ्रान्ति के कुछ मूल कारणों पर प्रकाश डाला गया, अब आगे 'पुराणों में उल्लिखित' ऐतिहासिक युगमानो का यथार्थ विवेचन प्रस्तुत करते हैं कि किस-किस युगमान का इतिहास गणना मे प्रयोग होता था और 'दिव्यादि' शब्द किस प्रकार भ्रमोत्पादक हुये।

युगमानविवेक

युग—मूल मे 'युग' शब्द अहोरात्ररूपी 'युग्म' (जोड़े) का वाचक था, यह शब्द 'युजिर्' (योगे) धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न हुआ है।[1] ऋग्वेद (१।१६४।११) में ही दिन-रात को 'मिथुन'जोड़ा कहा गया है।[2] अतः मूलार्थ मे 'युग' शब्द दिनरात के जोड़े या मिथुन के अर्थ में ही था। परन्तु वेद में ही मे 'पञ्चशारदीय' (पंचसंवत्सरात्मकयुग), 'मानुषयुग' और 'दिव्य' या 'दैव्ययुगों' का उल्लेख है। ऐतिहासिककालगणना की दृष्टि से इन युगों का विशेष महत्व है, अतः प्राचीन वाङ्मय मे जिन ऐतिहासिकयुगों का उल्लेख है, उनका सक्षेप मे विवरण प्रस्तुत करेंगे। प्रमुख युग थे—

(१) पञ्चसंवत्सरात्मकयुग
(२) षष्टिसंवत्सर (बार्हस्पत्ययुग)
(३) शतवर्षीयमानुषयुग
(४) दैव्ययुग (त्रिशतषष्टिवत्सरात्मक = ३६० वर्ष) = परिवर्तयुग
(५) सप्तर्षियुग (२७०० वर्ष)
(६) ध्रुवयुग -- ९०९० वर्ष,
(७) चतुर्युग = द्वादशवर्षसहस्रात्मक = महायुग = देवयुग।

पंचसंवत्सरात्मयुग

वेद और इतिहासपुराणों में युग के पांच वर्षों के पृथक्-पृथक् नाम हैं—संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर।[3] वायुपुराण, सूर्य-प्रज्ञप्ति, कौटल्य अर्थशास्त्र में इस पंचसंवत्सरात्मकयुग का उल्लेख है। वायुपुराण के अनुसार पंचवर्षात्मकयुग का प्रवर्तक चित्रभानु (विवस्वान् = सूर्य

---

१. सायण ने ऋग्वेद (५।७३।३) की पंक्ति 'नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः' में 'युग' शब्द या अर्थ 'दिनरात' ही किया है।

२. "आपुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः।"

३. द्रष्टव्य ऋग्वेद (७।१०३।७) शु० यजु० (३०।१६), ब्रह्माण्डपु० (१।२),

सविता = आदित्य) था।[1] प्रत्येक पांच वर्ष में सूर्य चन्द्रमा और नक्षत्रादि अपने अपने स्थल पर निवर्तमान होते हैं। लगध ने पंचवत्सरात्मकयुग को प्रजापति कहा है—

पंचसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः ॥[2]

षष्टिसंवत्सर या बार्हस्पत्ययुग

पूर्वकथित पंचसंवत्सरात्मक युगों के १२ पंचक मिलकर एक षष्टिसंवत्सर या बार्हस्पत्ययुग बनता था। वैदिकग्रन्थों में इस बार्हस्पत्ययुग का उल्लेख मिलता है यथा तैत्तिरीय आरण्यक के प्रारम्भ में षष्टिसंवत्सर का वर्णन है। वायुपराणादि में षष्टिसंवत्सर के विष्णु, बृहस्पति आदि द्वादश देवता निर्दिष्ट हैं और प्रत्येक वर्ष का नाम भी कथित है। अतिप्राचीनकाल में इतिहास में इस युग का उपयोग होता था, यथा सिन्धुसभ्यता के असुरगण इसका प्रयोग करते थे, परन्तु अर्वाचीनतरग्रन्थों में इसका प्रयोग नही मिलता।

मानुषयुग—शतवर्षात्मक—

वेद और इतिहासपुराण मे ऐतिहासिकतिथिगणना सर्वदा मानुषवर्षों मे ही होती थी—वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण में स्पष्टतः कहा गया है कि 'दिव्य संवत्सर' की गणना मानुषवर्षों के अनुसार ही होती थी—

दिव्यः संवत्स ो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः।[3]
अत्र संवत्सराःसृष्टामानुषेण प्रमाणतः ॥[4]

हम पहले बता चुके हैं कि 'दिव्य' शब्द 'सौर' का पर्यायवाची है, इसी से महान् भ्रम हुआ और व्यर्थ में युगों में ३६० वर्ष का गुणा किया जाने लगा। मनुस्मृति और महाभारत में जहाँ चतुर्युगों को १२००० वर्ष का बताया गया है, वे मानुषवर्ष ही हैं, यही आगे प्रमाणित किया जाएगा। कुछ वैदिक उद्धरणों के आधार पर उत्तरकाल में 'दिव्य' शब्द के अर्थ में भ्रम उत्पन्न हुआ, जिससे पुराणकारों ने पुराणों के युगसम्बन्धीपाठों में पूर्णतः परिवर्तन कर दिया, जिससे

---

१. श्रवणान्तं श्रविष्ठादि युगं स्यात् पंचवार्षिकम् (वायु० ५३।११६),
२. वेदांगज्योतिष—प्रथमश्लोक।
३. ब्रह्माण्ड० (१।२।६), वही (१।२।३०),
४. सप्तर्षीणां युगं ह्येतद्दिव्यया संख्या स्मृतम्।
तेभ्यः प्रवर्तते कालो दिव्यः सप्तर्षिभिस्तुतैः ॥ (वायु० ११।४१६, ४२०)।

'इतिहास' इतिहास न रहकर कल्पनालोक की वस्तु बन, गया, इन भ्रामक कल्पनाओं से ही भारतीय इतिहास पूर्णतः कलुषित, भ्रष्ट, अस्पष्ट एवं अज्ञेय-तुल्य हो गया।

इस भ्रम का मूल तैत्तिरीयसंहिता के एक वाक्य से उत्पन्न हुआ—"एकं वा एतद्देवानामहः। यत्संवत्सरः।" प्राचीनपुराणपाठों, महाभारत[1] और मनुस्मृति[2] में इस 'दिव्य' संख्या का कोई चक्कर नहीं है, वहाँ युगगणना साधारण मानुषवर्षों में है। यह बहुत उत्तरकाल की बात है, जब पुराणोल्लिखित वास्तविक इतिहास को लोग प्रायः भूल गये तब कल्प, मन्वन्तरों और युगों की भ्रामक गणना प्रचलित कर दी गई। ज्योतिष के आधार पर पुराणपाठों में, परिवर्तन करके द्वादशशसहस्रात्मक चतुर्युग को जो सामान्य मानुषवर्षों के थे, उनको ४३२०००० (तैतालीस लाख बीस सहस्र) वर्षों का बना दिया। मन्वन्तर को ७१ चतुर्युगों का माना गया, जिसका समय ३० करोड़ ६७ लाख २० सहस्र वर्ष का कल्पित किया गया और १४ मन्वन्तरो का समय ४ अरब ३२ करोड़ माना गया, जबकि १४ मनुओं में अनेक मनु प्रायः समकालीन थे, वे पिता-पुत्र ही थे यथा चार सावर्णमनु परस्पर भ्राता ही थे—

सावर्णमनवस्तात पंच तांश्च निबोधमे।
परमेष्ठिसुतास्तात मेरुसावर्णतां गताः।
दक्षस्यैते दौहित्राः प्रियायास्तनया नृप॥ ब्रह्माण्ड

सौन्दर्यभ्राताओं में तीस करोड़ वर्षों से अधिक का अन्तर कैसे हो सकता है यह तो सामान्यबुद्धि से ही समझा जा सकता है, चौदह मनुओं का यथार्थकाल आगे निर्दिष्ट करेंगे। मनु का अर्थ है मनुष्य (बुद्धिमान प्राणी), प्रथम स्वायम्भुव-मनु से अन्तिम (चौदहवें) वैवस्वत मनुपर्यन्त ७१ मानुषयुग या पीढ़ियाँ व्यतीत हुई थीं। यह मानुषयुग ही वेद में बहुधा उल्लिखित है।[3] दक्ष प्रजापति से भारतयुद्ध (कृष्ण) पर्यन्त ३० परिवर्त (जिनमे प्रत्येक का वर्षमान ३६० था) व्यतीत हुए, इससे उत्तरकाल में यह कल्पना की गई कि वैवस्वतमन्वन्तर के

---

१. चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां कृतं युगम्।
तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायां मनुजाधिप।
द्विसहस्रं द्वापरे भूतं तिष्ठिति सम्प्रति॥ (भीष्मपर्व)

२. मनुस्मृति (१।६-६)

३. तद्वचिषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत्। (ऋ० १।१०३।४),
विश्वे ये मानुषा युगाः पान्ति मर्त्यंरिषः। (ऋ० ५।५२।४)

२८ या ३० चतुर्युग व्यतीत हो गये और माना जाने लगा कि यह वैवस्वत मन्वंतर का अट्ठाईसवाँ कलियुग चल रहा है। परन्तु पुराणों एवं महाभारतादि के प्रामाणिक वचनों पर कोई ध्यान नहीं दिया, जहाँ बारम्बार कहा गया है कि युगगणना सर्वत्र मानुषवर्षों मे की गई है—

सूर्यसिद्धांत में चतुर्युग—

सुरसुराणान्योऽन्यमहोरात्रविपर्ययात्।
तत्षष्टिषड्गुणीदव्यं वर्षमासुरमेव च ॥ (१।७) सू० सि०
तेषां द्वादशाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता।
कृत त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुष्टयम्।
अत्र संवत्सराः सृष्टा मानुषेण प्रमाणतः ॥ (ब्रह्मांड पु० १।२९-३०

और भी स्पष्ट वायुपुराण मे कहा गया है कि ये द्वादशसहस्र केवल मानुषवर्ष ही है—

एव द्वादशसहस्रं पुराण कवयो विदुः।
यथा वेदश्चतुष्पादश्चतुष्पादं यथा युगम्।
चतुष्पादं पुराणं तु ब्रह्मणा विहितं पुरा ॥

जब वायुपुराण में १२ सहस्रश्लोक और ऋग्वेद में द्वादश सहस्र ऋचायें[1] हैं और युगों (चतुर्युग) में इतने ही वर्ष हैं तब यह कल्पना कहां तक ठहरती है कि चतुर्युग में ४३ लाख २० सहस्रवर्ष हैं। अतः इस गपोड़े मे कोई भी मनुष्य (बुद्धिमान) विश्वास नहीं कर सकता कि एक चतुर्युग में ४३ लाख २० हजार वर्ष होते थे।

चतुर्युगपद्धति का प्राचीनतम उल्लेख मनुस्मृति में है, इसमे स्पष्टतः ही वर्षगणना मानुषसौरवर्षों में है, वहां द्वादशवर्षसहस्रात्मकचतुर्युग (महायुग) को केवल 'देवयुग'[2] कहा गया है। टीकाकारादि ने पुनः इस 'देववर्ष' शब्द के आधार पर भ्रम उत्पन्न किया। इस सम्बन्ध मे प्रसिद्ध ज्योतिर्विद्वान स्वर्गीय बालकृष्ण दीक्षित का मत सर्वथा भ्रामक है।[3] इस सम्बन्ध में दीक्षितजी ने प्रो० ह्विटने का जो मत उद्धृत किया है, वह पूर्णतः सत्य है—"ह्विटने कहते

---

१. द्वादश बृहतीसहस्राणि एतावत्यो ह्यर्चो याः प्रजापतिसृष्टाः ॥
(श० ब्रा० १०।४।२।२३)

२. एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते (मनु० १।९)

३. भारतीयज्योतिष (पृ० ४९),

है कि इन १२००० वर्षों को देववर्ष मानने की कल्पना मनु की नहीं है,[1] इसकी उत्पत्ति बहुत दिनों बाद हुई।"[2] सम्भवत यह कल्पना गुप्तकाल या अधिक-से-अधिक वराहमिहिर या अश्वघोष के पश्चात् उत्पन्न हुई होगी। सूर्यसिद्धान्त में यह कल्पना है।[3] परन्तु दीक्षित जी ने अपने भ्रम को चालू रखना श्रेयकर समझा, उन्होंने तैत्तिरीयसंहिता मे 'दिव्यवर्ष' सम्बन्धी प्ररोचना को ज्योतिष और इतिहास से जोड़ा। वस्तुतः मनुस्मृति और महाभारत मे यह कल्पना है ही नहीं, हाँ उत्तरकाल मे पुराणों में यह कल्पना पुराणों में प्रक्षेपकारों ने पूर्णतः घुसेड़ दी।

अथर्ववेद (८।२।२१) का प्रमाण पूर्व संकेतित है कि तीन युग (द्वापर, त्रेता और कृत या ३० परिवर्त) १०८०० वर्ष के होते थे। अथर्व, मनुस्मृति और महाभारत तथा प्राचीनपुराणपाठ में 'दिव्यवर्ष सम्बन्धी कल्पना का पूर्णतः अभाव है और स्पष्टतः ही वे मानुषवर्ष हैं, अतः लोकमान्य ने इसी मत का समर्थन किया है और उनके एतत्सम्बन्धी मत से हम पूर्ण सहमत है—"In other words, Manu and Vyasa, obviously speak only of a period of 10000 or including the Sandhyas of 12000 ordinary or human (not divine) years, from the biginning of Krita to the end of Kaliage, and it is remarkable that In the Atharvaveda we should find a period of 10000 years apparently assigned to one yuga."[4]

यह द्रष्टव्य है कि अथर्वमन्त्र (८।२।२१) १०००० (या १०८००) वर्षों के तीन विभाग 'द्वेयुगे त्रीणि चत्वारि चत्वारि कृण्मः' ही उल्लिखित है केवल एक युग अथवा कलियुग के १००० वर्ष या १२०० वर्ष उल्लिखित नहीं है कलियुगमान १२०० जोड़ने पर (१०८००+१२००)=१२००० वर्ष हुए।

अतः दिव्यवर्ष या दिव्ययुग के सम्बन्ध में यह भ्रम समाप्त हो जाना चाहिए कि वह मानुषवर्ष की अपेक्षा ३६० गुणा होते थे, परन्तु परिणाम इसके विपरीत ही है कि मानुष और दिव्यवर्ष एक ही थे, जैसा कि पं० भगवद्दत्त को भी आभास हो गया था—"इस प्रकरण के सब प्रमाणों से मानुष और दिव्य-

---

४. बर्जेसकृत, सूर्यसिद्धान्त अनुवाद (पृ० १० पर) द्र०

५. वही (पृ० १४८)

६. वही (पृ० १४६)।

१. The Arctic Home in the Vedas (P. 350 by L. Tilake).

संख्या का स्वल्प-सा अंतर दिखाई पड़ता है।[१]" हाँ वेदोक्त 'मानुषयुग' और 'दिव्ययुग में जो अन्तर था, उसका व्याख्यान या स्पष्टीकरण आगे करते हैं।

वेद में बहुधा 'मानुषयुग का उल्लेख मिलता है, परन्तु आज, इसका स्पष्ट रहस्य किसी को ज्ञात नहीं है कि 'मानुषयुग' क्या था, इसका 'कालमान' क्या था। पाश्चात्य लेखक मिथ्याज्ञान या अज्ञानवश सर्वदा अर्थ का अनर्थ करते हैं, सो इस सम्बन्ध में उन्होंने इसी परिपाटी का अनुसरण किया। लोकमान्यतिलक ने एतत्सम्बन्धी पाश्चात्य लेखकों के मत उद्धृत किये हैं।[२] 'मानुषयुग' का अर्थ मानवायु या युग कुछ भी लिया जाय, परन्तु यह काल '१०० वर्ष' का होता था।

वेद में ही बहुधा अनेकत्र उल्लिखित है कि मनुष्य की आयु १०० वर्ष होती है—

'शतायुर्वै पुरुषः (श० ब्रा० (१३।४।१।१५),
तस्माच्छतं वर्षाणि पुरुषायुषो भवन्ति (ऐ० ब्रा०)

अतः वेद मे दीर्घतमा मामतेय[3] की आयु १००० वर्ष (एकसहस्रवर्ष) कथित है, न कि पंचसंवत्सरात्मक युग को आधार मानकर ५० वर्ष। इसकी पुष्टि इतिहास में भी होती है। देवयुग मे उत्पन्न दीर्घतमा औचत्य (मामतेय) त्रेतायुग मे भारतदौष्यन्ति के समय तक जीवित रहा—'दीर्घतमा मामतेयो भरतं दौष्यन्तिमभिषिषेच;[४] दीर्घतमा बृहस्पति का भतीजा था।

अतः मन्त्र में कथित 'मानुषयुग' १०० वर्ष का होता था, जितना कि मानवायु। इसकी पुष्टि अथर्ववेद के पूर्वोद्धृतमन्त्र से भी होती है कि १०००० (दशसहस्र) वर्षों में १०० युग या मानुषयुग थे—शतंतेऽयुतंहायनान् द्वे युगे त्रीणि

---

१. भा० बृ० इ० (भाग १, पृ० १६५),

2. The Petersburg Lexicon would interpret yuga wherever, it occures in Rigveda, to mean not 'a period of time', but 'a generation' or the retation of descent form a common stock; and it is followed by Grassman,' 'Proff, Max Muller translates the Verse to mean, "All those who Protect the generations of men, who Protected the mortals from injury, (A.H. in the Vedas p, 139, 141),

३. दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे (ऋ १।१५८।६)

४. ऐ० ब्रा० (८।२३),

चत्वारि क्रमश: ।' अर्थात् १०० मानवयुगों या १०००० (दशसहस्र) वर्षों को हम दो (द्वापर) तीन (त्रेता) और चार (कृतयुग) में बाँटे ।

मनुष्यायु १०० वर्ष थी, इसी आधार पर ऋग्वेद (१।१५८।६) में दीर्घतमा को दशयुगपर्यन्त जीवित करने वाला कहा है, इसका स्पष्ट उल्लेख शांखायन आरण्यक (२।१७) में दश (मानव) युग का यही अर्थ लिखा है, यह कोई आधुनिक कल्पना नहीं है—"तत उ ह दीर्घतमा दशपुरुषायुषाणि जिजीव ।" पुरुषायु १०० वर्ष होती है, अत: दीर्घतमा १००० वर्ष पर्यन्त जीवित रहा ।

वेदोक्त 'मानुषयुग' स्पष्ट ज्ञात हुआ, अत: इतिहास में गणना मानुषयुग या 'मानुषवर्षों में होती थी ।

देवयुग, दैव्ययुग ता देववर्ष (परिवर्तयुग) में 'दिव्य' शब्द का अर्थ

[1]देव या 'दिव्य' शब्द का निर्वचन यास्काचार्य ने इस प्रकार किया है—"देवो दानाद् वा दीपनाद् द्योतनाद् वा, द्युस्थानो भवतीति वा । (नि० ७।१५), वेद में 'देव' प्राय: सूर्य या सविता को कहते हैं, यही 'दिव्य' या 'सौर' (सूर्य) है[1] अत: दिव्यवर्ष का अर्थ हुआ सौरवर्ष । इसी आधार पर वेद में दिव्य या दैव्ययुग की कल्पना की गई ।[2]—क्योंकि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा ३६० दिन में करती है अत: ३६० वर्ष का ही एकपरिवर्त एकदैव्ययुग (सौरयुग) माना गया—लेकिन है यह मानुषवर्षों के आधार पर ही, जैसा कि पुराण में स्पष्ट लिखा है ३६० वर्षों का संवत्सर मानुषप्रमाण के अनुसार ही है ।[3] वक्ष्यमाण सप्तर्षियुग के दिव्यवर्ष भी सामान्य मानुषवर्ष थे ।[4] वस्तुत: मानुषवर्ष और दिव्यवर्ष में कोई अन्तर था ही नहीं । अत: देवयुग का अर्थ था देवों का वह समय जब वे पृथ्वी पर विचरण करते थे और शासन करते थे 'देवयुग' शब्द का अन्य कोई अर्थ नहीं था ।

देव एक विशिष्ट मानवजाति थी, जिसका वैदिकग्रन्थों में बहुधा उल्लेख है, इन्द्र, वरुण, यम विवस्वान् आदि ऐसे ही देवपुरुष थे, देवयुग में मनुष्य की आयु ३०० या ४०० वर्ष होती थी, जैसा कि मनुस्मृति (१।८३) में उल्लिखित है—

---

१. देवस्य सवितु: प्राण: प्रसव: प्राण: (तै० ब्रा०)

२. त्रामंगिरा दैव्यं मानुषा युगा: (वाज० १२।१११),

३. त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि च ।
दिव्य: संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तित: ॥ (ब्रह्माण्ड० १।२।१६)

४. सप्तर्षीणां युगं ह्येतद्दिव्यया संख्ययास्मृतम् । (वही)

"अरोगा: सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुष: ।
कृते त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादश: ।"

देवों की ३०० या ३६० वर्ष आयु सामान्य थी, यह इतिहास से सिद्ध है, परन्तु विशिष्ट देवों यथा इन्द्र, वरुण, यम,[1] विवस्वान्, आदि प्रजापति-तुल्य देवों की आयु सहस्रवर्ष से भी अधिक थी । जो इन्द्र १०१ ब्रह्मचारी रहा, जो अपने शिष्य भरद्वाज को ४०० वर्ष की आयु प्रदान कर सकता था, उसकी अपनी स्वयं की आयु कितनी हो सकती है, इसका अनुमान लगाया जा सकता है । दीर्घायु पुरुषों का वर्णन पृथक् अध्याय में किया जायेगा ।

देवों की आयु सामान्यत: ३०० (या ३६०) वर्ष और प्रजापति का आयु ७०० (या ७२० वर्ष) या सहस्राधिक होती थी, इसका प्रमाण जैमिनीय ब्राह्मण (१।३) के निम्नवचन में प्राप्त होता है—"प्रजापतिस्सहस्रसंवत्सर-मास्त । स सप्त शतानि वर्षाणां समाप्यमेमामेव जितिमजयत्··· स स्वर्ग लोकमारोहन् देवान्नब्रवीदेतानि यूय त्रीणि शतानि वर्षाणां समापयथेति ।"

देवयुग मे सवत्सर दशमास या ३०० दिन का भी होता था, इसका प्रमाण वैदिकग्रन्थों के साथ यूरोपियन इतिहास मे भी मिलता है । इसका उल्लेख लोकमान्य तिलक ने अपने ग्रन्थ मे किया है । जैमिनीयब्राह्मण और अवेस्ता से भी इसकी पुष्टि होती है ।[2]

अत: देवयुग ३०० या ३६० वर्षों का होता था और प्राय: यही सामान्य देवपुरुष की आयु थी । इतिहासपुराणों मे बहुधा देवयुग का उल्लेख है—'पुरा देवयुगे राजन्नादित्यो भगवान् दिव:' (सभापर्व ११।१)

'पुरादेवयुगे ब्रह्मन् प्रजापतिसुते शुभे ।' (आदिपर्व १४।५) जैमिनीय-ब्राह्मण (२।६५), निरुक्त (१२।४१) और रामायण (१।६।१२) मे भी देवयुग का उल्लेख है । अत: 'देवयुग' एक ऐतिहासिक युग था । देवयुग ३०० वर्ष का होता था, इसका स्पष्ट उल्लेख मत्स्यपुराण २४।३७ में है—

"अथ देवासुरयुद्धमभूद्वर्षशतत्रयम् ।"

---

१. पारसीधर्मग्रन्थ जेन्दाअवेस्ता (छन्दोवेद=अथर्ववेद) के प्रमाण से ज्ञात होता है कि वैवस्वतयम, जो इंद्र का गुरु था, उसने १२०० वर्ष पृथ्वी पर शासन किया—"३००-३०० वर्ष करके उसने बार बार राज्य किया । इस १२०० वर्षों में पृथ्वी का आकार (जनसंख्या) पहिले से दुगुना हो गया (अवेस्ता, द्वितीय फर्गद, आर्यों का आदिदेश, पृ० ७४ पर उद्धृत)

२. द्र०. Ar. H. in the Vedas P. 158)

ऐसे द्वादश देवासुरसंग्राम दशयुगपर्यन्त अर्थात् ३६०० वर्षों के मध्य में हुए।'[1]—(१४००० वि० पू० से १०४०० वि० पू० तक हुए)

२८ अवान्तर त्रेता=परिवर्त=पर्याय=द्वापर—प्राचीनपुराणपाठों में गणना परिवर्त, पर्याय नाम के ऐतिहासिक युगों में की गई है, इन्हीं को वैदिकग्रंथों में 'देवयुग' या 'दैव्ययुग' कहा गया है। पं० भगवद्दत्त ने देवयुग, अवान्तर त्रेता (पर्याय=परिवर्त) आदि की अवधि जानने में असमर्थता व्यक्त की है—"यदि अवान्तर त्रेताओं की अवधि तथा आदियुग, देवयुग और त्रेता-युग आदि की अवधि जान ली जाए तो भारतीय इतिहास का सारा कालक्रम शीघ्र निश्चित हो सकता है।"[2]

वायुपुराण के दक्ष, द्वादश आदित्य करन्धम, मरुत्त आदिपुरुषों को आदि-त्रेतायुग या प्रथमपर्याय में होना बताया गया है। मान्धाता १५वें युग में हुए, जामदग्न्य राम उन्नीसवें युग में, राम[3] (दाशरथि) चौबीसवें युग में और वासुदेवकृष्ण २८वें युग में हुए। ये सभी पुरुष थोड़े अन्तर (कुछ शतियों) में उत्पन्न हुए, इनमें लाखों करोड़ों वर्षों का अन्तर किसी प्रकार उपपन्न नहीं होता, यही तथ्य प्रत्येक गम्भीर पुराण अध्येता समझ लेगा। परन्तु उनमें उतना स्वल्प समयान्तर नहीं था जैसाकि पार्जीटर मानता था।

प्रत्येक परिवर्तयुग (३६० वर्ष) को भ्रम से एक चतुर्युग (१२००० दिव्य वर्ष) मानकर ही पुराणगणना मे भीषण त्रुटि हुई है। अतः २८ अवान्तर युगों को चतुर्युग मान लिया गया। पर्याय=परिवर्त की अवधि एक देवयुग (दैव्य-युग) यानी ३६० वर्ष थी, यह तथ्य विविध प्रमाणों से प्रमाणित किया जायेगा। ये प्रमाण हैं—(१) व्यास परम्परा (2) नहुष से युधिष्ठिर का अन्तर (दस-सहस्रवर्ष) (३) तमिलसंघपरम्परा (४) मिस्रीपरम्परा (५) द्वादशवर्षसहस्रात्मक महायुग (चतुर्युग=देवयुग) (६) पारसी (ईरानी) प्रमाण (७) मैगस्थनीज उल्लिखित असित धान्वासुर (डायनोसिस) का समय और (८) मयसभ्यता की गणना।

---

१. युगं वै दश (वायु० ९७।७०),

२. भा० बृ० इ० भा० १ (पृ० १५६)

३. चतुर्विंशे युगे चापि विश्वामित्रपुरस्सरः।
राज्ञो दशरथस्य पुत्रः पद्मायतेक्षणः।
लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः॥ (हरिवंशपु० २२।१।४१)

परिवर्त (दैव्ययुग=सौरयुग) का मान विस्मृत

३६० वर्षमितवाले युग का पुराणों में उल्लेख अवश्य है, परन्तु इसका वर्षमान विस्मृत सा हो गया, इसके कारण हम पूर्व संकेत कर चुके हैं—यथा देववर्ष की कल्पना, २८ परिवर्तों को २८ चतुर्युग मानना इत्यादि से ३६० वर्ष का युग विस्मृत हो गया। प्रकारान्तर से इसका उल्लेख अवश्य मिलता है। परन्तु निम्न श्लोक में दिव्यसंवत्सर के नाम से 'परिवर्तयुग' का ही उल्लेख है।

त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि तु।
दिव्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः॥ (ब्रह्माण्ड० १।२।१६)

भ्रांति से दिव्यसंवत्सर को परिवर्तयुग न समझकर=दिव्यवर्ष समझकर समस्त भ्रान्ति उत्पन्न हुई।[1]

आधुनिकयुग में कुछ सोवियत अन्वेषकों ने कम्प्यूटरादि से हड़प्पा सिन्धुलिपि की खोज की है। इस सम्बंध में सोवियत अन्वेषकों ने ज्ञात किया है, "सिन्धुजनों ने ६० वर्षों के कालचक्र की, बृहस्पतिचक्र की खोज कर ली थी और इस चक्र को वे बारह वर्षों की पांच अवधियों में विभाजित करते थे। यह भी कल्पना की गई है कि हड़प्पावासी 'वर्षकाल' को 'देवताओं के एक दिन' के तुल्य मानते थे। बाद में संस्कृत साहित्य में इस मान्यता को हम अधिक विकसित रूप से देखते हैं। सिन्धुजनों ने 'बृहस्पतिचक्र' के अलावा ३६० वर्षों के एकऔर कालचक्र(परिवर्तयुग) की भी कल्पना की थी।[2] वर्ष में ३६० दिन और

---

१. इस युगमान की स्मृति, सिद्धान्तशिरोमणि के टीकाकार मुनीश्वर ने वेदांग ज्योतिष के रचियता लगध के प्रमाण से इस प्रकार उद्धृत की है—

"पंचसंवत्सरैरेकं प्रोक्तं लघुयुगं बुधैः।
लघुद्वादशकेनैव षष्टिरूपं द्वितीयकम्।
तद् द्वादशमितैः प्रोक्तं तृतीयंयुगसंज्ञकम्।
युगानां षट्शती तेषां चतुष्पादी कलायुगे।"

इसमें तृतीययुग ७२० वर्ष का था, परन्तु यह वैदिक प्रजापतियुग (अहोरात्र रूपी ७२० वर्ष) का मान था, इसका आधा अर्थात् ३६० देवयुग (परिवर्तयुग) युगमान था, अतः मुनीश्वर का उद्धरण कुछ भ्रान्तिजनक है, तृतीययुग ३६० वर्ष का ही था और उसमें ६०० के स्थान पर १२०० का गुणा करने पर ही कलियुग या युगपाद का मान आता था।

२. साप्ताहिक हिन्दुस्तान (२५ अक्तूबर, १९८१) में श्री गुणाकर मुले का लेख 'सिन्धु भाषा और लिपि की पहेली'।

दैवयुग में ३६० वर्ष होने के कारण, साम्यसंख्या के कारण युगमान—(३६० वर्ष) विस्मृत हो गया। भारत के समान बैबीलन का इतिहासकार बैरोसस भी इस भ्रम में पड़ गया और उनसे दिनों को वर्ष मान लिया। द्र० पूर्व पृष्ठ १०६।

तृतीययुगगणनासम्बन्धी श्लोकों का पाठपरिवर्तन

प्राचीनग्रंथों मे विशेषत: पुराणों एवं ज्योतिषग्रन्थों मे कालगणनासम्बन्धी कितना परिवर्तन, परिवर्धन संस्करण, क्षेपक, और अंशनिष्कासन का कार्य किया गया इसको प्रत्येक गम्भीर पुरातत्त्ववेत्ता या भारतविद्याविद् सम्यक् समझ सकता है। परन्तु हम यहाँ केवल दो-चार उदाहरणों पर विचार करेंगे, जिसने इतिहास गणना को पूर्णत: अनैतिहासिक किंवा मिथ्या बना दिया।

प्रथम उदाहरण-दिव्यसंवत्सर या दिव्ययुग

वायु, ब्रह्माण्डादि प्राचीनपुराणों में एक श्लोक मिलता है—(परिवर्त या दैव्ययुग सम्बन्धी)

> त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टि वर्षाणि यानि तु।
> दिव्यसंवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तित:॥
>
> (ब्रह्मा० २।२८।१६)

उपर्युक्त समीक्षा के अनन्तर हम अधिक प्रामाणिक लगधाचार्य के निम्न श्लोक का पाठ जो मुनीश्वर ने उद्धृत किया है, इस प्रकार मूल में होना चाहिए, तभी 'तृतीययुग' सार्थक होगा—

> तत् षण्मितै: प्रोक्तं तृतीयं युगसंज्ञकम्।
> *युगाना द्वादशशती तेषा चतुष्पादी कला युगे॥*

हमने लगध के 'द्वादशमितै:' का स्थान पर 'षण्मितै:' और 'षट्शती' के स्थान पर 'द्वादशशती' माना है, क्योंकि 'युगपाद' १२०० वर्ष (द्वादशशती) का होता था, न कि ६०० वर्ष का, जैसा कि आर्यभट ने भी लिखा है—'षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादा:।' (कालक्रियापाद, आर्यभटीय, श्लोक १०)। आर्यभट के साक्ष्य से निश्चित है कि लगधोक्त 'तृतीययुग' ३६० वर्ष का ही होता था न कि ७२०वर्ष का, कलि के १२००वर्ष मे ३६० का गुणा करके ही दिव्यवर्ष का मान निकाला जाता है, न कि ७२० वर्ष का। ७२० वर्ष के किसी भी युग का अन्यत्र किसी भी प्राचीनग्रंथ में किञ्चिन्मात्र भी संकेत नहीं है अत: युगपाद ६०० वर्ष का उपपन्न नहीं होता, वह १२०० वर्ष का ही

था। यद्यपि गणित की दृष्टि से ७२० × ६०० = ३६० × १२०० = ४३२००० तुल्य परिमाण है, परन्तु मुनीश्वर के वर्तमानपाठ को मानने से इतिहास में अर्थ का महान् अनर्थ हो जाता है। अतः तृतीययुग (३६० वर्ष) = परिवर्तयुग, बार्हस्पत्ययुग (६० वर्ष) का छः गुना (षण्मित) होता था न कि द्वादशमित। अतः अज्ञान या भ्रान्तिवश मुनीश्वर के श्लोक में अनर्थकपाठपरिवर्तन किया गया है जिसका निम्न शुद्धरूप इतिहाससम्मत है—

तत् षण्मितैः प्रोक्त तृतीयं युगसंज्ञकम्।
युगानां द्वादशशती तेषां चतुष्पादी कला युगे ॥

अतः आर्यभट, पुराण, लगध, सिन्धुसभ्यता और बैबिलवाङ्मय—सभी के साक्ष्य से ऐतिहासिक देवयुग = परिवर्त का मान ३६० वर्ष ही सिद्ध होता है।

उपयुक्त विवेचन से यह फलितार्थ निकलता है कि प्राचीन देशों—भारत, बैबीलन, आदि में ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण प्रत्येक दिन लिखा जाता था और वह न केवल मास और वर्ष बल्कि दिनों में गणना होती थी, अतः आधुनिक तथाकथित इतिहासकारों का यह आरोप पूर्णतः मिथ्या है कि प्राचीन जन इतिहास लिखना नहीं जानते थे अथवा इतिहास में उन्होंने तिथिगणना की उपेक्षा की। निम्नलिखित चार देशों के साक्ष्य से यह सिद्ध है कि वे वर्ष या मास की ही नहीं एक-एक दिन की इतिहास में गणना करते थे।

स्वयं योरोपियन या यूनानियों के इतिहासपिता हैरोडोट्स ने लिखा है कि मिस्री पुरोहित प्रत्येक वर्ष का ऐतिहासिक वृत्तान्त बहियो मे लिखते थे—"In these matters they Say they cannot be mistaken as they have always kept count of the years, and noted them in their Registers'' (Herodotus, Vol. 1. p. 320)

बैबीलन में

तृतीयशतीपूर्व के इतिहासकार बैरोसस ने दैत्येन्द्र बलि असुर के मन्दिर में जलप्रलयपूर्व और पश्चात् का ऐतिहासिक विवरण सुरक्षित मिला, जहां से उसने अपना इतिहास ग्रन्थ लिखा—"It was from these writings deposited in the temple of Belus of Babylon, that Berosus copied the outlines of history of the antidiluvion Sovereigns of Chaldea'' (History of Hindustan, its Arts and its Sciences Vol 1 London 1820 by I. Mourice P. 399).

बैरोसस की भ्रान्ति का कारण

जलप्रलय पूर्व आर पश्चात् का वृतान्त मूल में दिनों में लिखा हुआ था, जो बैरोसस को मन्दिर में मिला और इसने प्राचीन वृतान्त को पढ़ने या सम-

इनमें बैरोसस को भ्रान्ति या त्रुटि होना असम्भव नहीं, इसी भ्रान्ति के कारण बैरोसस ने दिनों को वर्ष समझकर राजाओं का राज्यकाल हजारों लाखों वर्ष का लिखा, जो पूर्णतः असम्भव है। हमने पुराणसाक्ष्य के आधार पर बैरोसस की त्रुटि सुधार दी है और बैबीलीन राजाओं का यथातथ्य राज्यकाल निकाल लिया है।

यहूदी साहित्य—बाइबिल में गणना दिनों में—

भारत और प्राचीन काल्डिया के समान उनके अनुकरण पर प्राचीन यहूदियों ने भी ऐतिहासिक वृतान्त दिन-प्रतिदिन सुरक्षित रखने की प्रथा थी, इससे उनकी सूक्ष्म ऐतिहासिक बुद्धि का पता चलता है। बाइबिल में मनु (नूह) और जलप्रलयसम्बन्धी वर्णन द्रष्टव्य है, जिसमें एक-एक दिन का विवरण लिखा गया है—(1) For yet seven days and I will cause it to rain upon the earth forty days and forty nights. (2) In the six hunderedth year of Noah's *life the* second *month,* the seventeenth day of the month,... (3) And the Flood was forty days upon the earth (4) And there to rested in the seventh month on the seventeenth day of the month, upon the mountain of Arrarat (Holy Bible, p. 10, 11)।

सहस्रोवर्षपूर्व के इतिहास में एक-एक दिन का वृत्तांत सुरक्षित रखना कितना दुष्कर कर्म हैं, यह वर्तमान विद्वान् समझ सकते हैं।

भारतीयगणना

प्राचीन भारत में इक्ष्वाकु, मान्धाता, सगर, भरतदौष्यन्ति, दाशरथिराम से हर्षवर्धन (सप्तमशती) पर्यन्त विवरण वर्ष, मास और तिथियों (दिनों) में सुरक्षित रखा जाता था, यह तथ्य पुराणों एवं मौर्ययुग से हर्ष तक के शतशः सहस्रशः शिलालेखों से प्रमाणित है, एक दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) सिधवसे ४०, २ वैसाख मासे राजा क्षहरातस क्षत्रपस नहपानस'''।
(नहपान नासिक गुहालेख)

(२) शते पञ्चषष्ट्यधिके वर्षाणां भूपतौ च बुधगुप्ते। आषाढमासशुक्ल-
द्वादश्यां सुरगुरोर्दिवसे॥ (एरणस्तम्भ गुप्तलेख)

अतः प्राचीन भारतीयों पर इतिहास की उपेक्षा का आरोप मिथ्या है। हाँ, इतिहासवृत्त अनेक कारणों से पर्याप्त लुप्त हो गए, यह पृथक् बात है। यह सत्य

है कि प्राचीनभारतीयजन वृत्त को आज की अपेक्षा अधिक और पूर्ण सुरक्षित रखते थे, यदि प्राचीनवृत्तांत केवल कागज या भोजपत्र पर लिखा जाता तो हम प्राचीनराजाओं का नाम भी नही जान सकते थे, उन्होंने तो इतिवृत्त को सुदृढ़ पत्थरों एवं धातुपत्रों पर उत्कीर्ण करा दिया था, जिनके नष्ट होने की बहुत कम संभावना थी। इससे भी प्राचीन राजाओं और विद्वानो की इतिहाससंरक्षण के प्रति अत्यधिक चिन्ता प्रकट होती है।

व्यासपरम्परा से तृतीययुग परिवर्तयुगमान (३६० संवत्सरात्मक) की पुष्टि—अतः वायुपराण (अ०२३।११४-२२६) मे विस्तार से २८ या ३० व्यासों का वर्णन है, ब्रह्माण्डपुराण मे (१।२।३५) एव विष्णुपुराण (३।३) मे व्यासो की सूची लिखित है। यहाँ पर विषयगौरव के कारण ब्रह्माण्डपुराण से व्यासो का वर्णन उद्धृत करते है, जिससे ज्ञात होगा कि क्रमिकरूप से प्रथम परिवर्त से अट्ठाइसवेंपरिवर्तपर्यन्त शिष्यानुशिष्यरूप मे कौन-कौन से व्यास हुये—

अष्टाविंशतिकृत्वो वै वेदा व्यस्ता महर्षिभिः।
प्रथमे द्वापरे व्यस्ताः स्वयं वेदाः स्वयम्भुवा।
द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः।
तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे च बृहस्पतिः।
सविता पंचमे व्यासो मृत्युः षष्ठे स्मृतः प्रभुः।
सप्तमे च तथैवेन्द्रो वसिष्ठश्चाष्टमे स्मृतः।
सारस्वतस्तु नवमे त्रिधामा दशमे स्मृतः।
एकादशे तु त्रिवृषा सनद्वाजस्ततः परम्।
त्रयोदशे चान्तरिक्षो धर्मश्चापि चतुर्दशे।
त्र्य्यारुणिः पंचदशे षोडशे तु धनंजयः।
कृतंजय ऋजीषोऽष्टादशे स्मृतः।
ऋजीषात्तु भरद्वाजो भरद्वाजात्तु गौतमः।
गौतमादुत्तमश्चैव ततो . हर्यवनः स्मृत.।
हर्यवनात्परो, वेन.स्मृतो वाजश्रवास्ततः।
अर्वाक्च वाजश्रवसः सोममुख्यायनस्ततः।
तृणबिन्दुस्ततस्मात्तृक्षस्तु तृणबिन्दुतः।
ऋक्षाच्च स्मृत शक्तिः शक्तेश्चापि पराशरः।
जातूकर्णोऽवसः मात्द्वैपायनः स्मृतः।

पुराणों में अनेकशः भ्रष्टपाठों के कारण वेदव्यासनामों मे पर्याप्त विकृतियां हैं। इनके नाम समस्तपाठों से संतुलित करके इस प्रकार संशोधित किये गये

हैं—(१) स्वयम्भू ब्रह्मा, (२) प्रजापति (कश्यप), (३) उशना (शुक्र), (४) बृहस्पति, (५) विवस्वान् (६) वैवस्वयतयम, (७) इन्द्र, (८) वसिष्ठ (वासिष्ठ) (६) सारस्वत (अपान्तरतमा), (१०) त्रिधामा, (११) त्रिवृषा, (१२) भरद्वाज (सनद्वाज=सुतेजा=त्रिविष्ट), (१३) अन्तरिक्ष, (१४) धर्म=सुचक्षु=वर्णी=नारायण, (१५) त्र्यारुणि, (१६) धनंजय—संजय, (१७) कृतंजय, (१८) ऋतंजय (ऋजीषी)=जय=तृणंजय, (१६) भरद्वाज, (२०) गौतम=वाजश्रवा, (२१) वाचस्पति+निर्यन्तर=हर्यात्मा=उत्तम, (२२) वाजश्रवा=शुक्लायन, (२३) सोमशुष्मायण=सोमशुष्म—तृणबिन्दु, (२४) ऋक्ष=वाल्मीकि, (२५) शक्ति, (२६) पराशरः (२७) जातूकर्ण, (२८) कृष्णद्वैपायन—पाराशर्यव्यास।

इस व्यासपरम्परा के आधार पर २८ या ३० युगों का सम्पूर्ण और औसत कालमान निकाला जा सकता है। कृष्णद्वैपायन व्यास अन्तिम व्यास थे, उनका समय ज्ञात है कि द्वापर के अन्त में, कलियुग प्रारम्भ से लगभग २०० वर्ष पूर्व वे हुये, और कलियुग का प्रारम्भ कृष्ण के स्वर्गवास के दिन से हुआ—

> यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदा दिने।
> प्रतिपन्नः कलियुगस्तस्य संख्यां निबोधत ॥[1]

और २४वें व्यास ऋक्ष वाल्मीकि का अवतार त्रेताद्वापर की सन्धि में हुआ—परिवर्ते चतुर्विंशे ऋक्षो व्यासो भविष्यति।[2] इसी २४वें परिवर्तयुग में रामावतार हुआ—

> त्रेतायुगे चतुर्विंशे रावणस्तपसः क्षयात्।
> रामं दाशरथिं प्राप्य सगणः क्षयमेयिवान् ॥
> संधौ तु समनुप्राप्ते त्रेतायां द्वापरस्य च।
> रामो दाशरथिर्भूत्वा भविष्यामि जगत्पतिः ॥

(शान्तिपर्व ३४८।१६)

पुराणों के अनुसार वाल्मीकि (ऋक्ष) व्यास से अट्ठाइसवेंव्यासपर्यन्त निम्नलिखित व्यास हुये—

---

१. वायु० (६६।४२७),

२. वायु (१३।३०६),

(क) पुनस्तिष्ये च संप्राप्ते कुरवो नामः भारताः।
कृष्णेयुगे च संप्राप्ते कृष्णकर्णो भविष्यतिः ॥
विख्यातो वसिष्ठकुलनंदनः। (शान्तिपर्व. ३४६)

२४वाँ परिवर्त युग मे			ऋक्ष=वाल्मीकि व्यास
२५	,,	,,	शक्ति व्यास
२६	,,	,,	पराशर ,,
२७	,,	,,	जातूकर्ण ,,
२८	,,	,,	कृष्णद्वैपायन

युग और व्यास २८ या ३० भ्रान्ति ?

वर्तमान पुराणों एवं सूर्यसिद्धान्त आदि में यह मान्यता मिलती है कि वैवस्वत मन्वन्तर के २८ चतुर्युग व्यतीत हो चुके हैं और यह इस मन्वन्तर का २८वाँ कलियुग चल रहा है, पुराणों में इस समय २८ व्यासों के ही नाम मिलते हैं।

अथर्ववेद (८।२।२१) के प्रमाण से हमें ज्ञात है कि तीन युगों में ११००० वर्ष या सही १०८०० वर्ष होते थे, पुराणों एवं मनुस्मृति के अनुसार हम बहुधा बता चुके हैं कि चतुर्युग में १२००० मानुष वर्ष ही होते थे। दक्ष-कश्यपप्रजापतिद्वयी से युधिष्ठिर पर्यन्त चतुर्युग के या सही अर्थो में युगों या परिवर्तों के १०८०० वर्ष व्यतीत हुये थे। यह परिवर्त या युग या लघुदेवयुग (वैदिकदिव्ययुग) ३६० वर्ष का होता था। १०८०० वर्षों मे ३० युग (३६०×३०=१०८००) ही व्यतीत हुये। अतः भारतयुद्धपर्यन्त ३० युग व्यतीत हुये और व्यास भी ३० या अधिक होने चाहिए। यह हमारी अपनी निजी कल्पना नहीं है, पुराणपाठों में इस तथ्य के निश्चित संकेत हैं।

२. **नहुष से युधिष्ठिर तक का अन्तर (काल)**—नहुष से युधिष्ठिर पर्यन्त लगभग दशसहस्रवर्ष व्यतीत हुये थे, इसका एक प्रमाण महाभारत के वर्तमानपाठ में अवशिष्ट रह गया है। उद्योगपर्व (१७।१५) में स्पष्ट रूप से लिखा है कि अगस्त्य ऋषि के शाप से नहुष दशसहस्रवर्ष तक अजगरयोनि मे रहा और युधिष्ठिर के दर्शन होने पर उसकी शापमुक्ति हुई—

> दशवर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महान्।
> विचरिष्यसि पूर्णेषु पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥

नहुष का पुत्र ययाति प्रजापति से दशम पीढ़ी में हुआ।[1]

---

१ ययातिः पूर्वजोऽस्माकं दशमो यः प्रजापतेः। (आदिपर्व ७१।१)
ये दशपुरुष थे—प्रचेता, दक्ष, कश्यप, विवस्वान्, मनु, बुध, पुरूरवा, आयु, नहुष और ययाति। ये सभी दीर्घजीवी थे, इनका कालादि अग्रिम अध्यायों मे विचारित होगा।

वैवस्वत मनु, नहुष से पांच पीढ़ी पूर्व, नहुष से लगभग एक सहस्रवर्षपूर्व हुए, अतः वैवस्वतमनु और युधिष्ठिर में लगभग ग्यारह सहस्रवर्ष का अन्तर था।

३. तमिलसंघपरम्परा से परिवर्तकाल (दशसहस्रवर्ष) की पुष्टि—तमिलसंघ परम्परा से भी उपर्युक्त कालगणना की पुष्टि होती है। प्रथम तलिमसंघ की स्थापना शिव, स्कन्द, इन्द्र और अगस्त्य के समय में हुई, पाण्ड्यनरेश कायचिन वलुति (वलि ?) के राज्यकाल में।[1] प्रथमसंघ के प्रमुख अध्यक्ष थे—अगस्त्य ऋषि, जिन्होंने तमिल के अगस्त्य (अकत्तियम्) व्याकरण की रचना की। तमिल इतिहास में तीन संघकाल, इस प्रकार माने जाते हैं—

प्रथम संघकाल—अगस्त्य से प्रारम्भ—८९ राजा = ४४०० वर्ष राज्यकाल
द्वितीय संघकाल दाशरथिराम से प्रारम्भ—५८ राजा = ३७८० वर्ष ,,
तृतीय संघ काल भारतोत्तरकाल प्रारम्भ —४९ राजा = १८५० वर्ष ,,

योग १९७ राजा = १००३० वर्ष

आदिम अगस्त्य ऋषि नहुष और देवराज इन्द्र के समकालिक थे। अन्तिम तमिलसंघ की समाप्ति विक्रम सम्वत् के निकट हुई। अतः तमिलगणना में अगस्त्य का समय विक्रम से दशसहस्रवर्षों से कुछ पूर्व था। आदिम अगस्त्य अत्यन्त दीर्घजीवी ऋषि थे—सहस्राधिक वर्षों तक जीवित रहे, पुनः उनके वंशज भी अगस्त्य ही कहे जाते थे। अतः तमिलसंघगणना से भी पुराणोक्त कालगणना, विशेषतः चतुर्युग एवं परिवर्तयुगगणना की पुष्टि होती है कि अगस्त्य और नहुष का समय विक्रम से लगभग तेरह सहस्रवर्षपूर्व था।

४. मिस्रीगणना से पुष्टि—हेरोडोटस ने मिस्रीगणना में चौदहमनुओं में से किसी एक मनु का समय ११३४० वर्ष पूर्व अर्थात् अब से लगभग चौदह-सहस्रवर्षपूर्व बताया है—"The priests told Herodotus that there had been 391 generations both of kings and high priests from Manos (मनु) to Sethos and this he calculates at 11390 years.[2]

बाइबिल के अनुसार मनु की आयु—९५० वर्ष थी, अतः उसका जन्म आज से पन्द्रह सहस्रवर्ष पूर्व हुआ—११३४० + २६०० = १३९४० हैरोडोटस और

१. द्र० तमिलसंस्कृति—ले० र० शौरिराजन् (पृ० ११),
२. The Ancient History of East by Philips Smith p. 59.

मैगस्थनीज विक्रम से लगभग ६०० वर्ष पूर्व हुये, अतः मिस्री मनु का जन्म आज से १४५०० वर्ष पूर्व था। भारतीय गणना से वैवस्वतमनु, तृतीय परिवर्त में हुए, तदनुसार उनका समय (३६० × २७ परिवर्त ७६२० + ५१२० भारतयुद्धकाल = १४८८० वर्ष पूर्व निश्चित होता है, अतः मिस्रीगणना से भी भारतीयगणना की पुष्टि होती है।

५. चतुर्युगपद्धति से पुष्टि—महाभारत (भीष्मपर्व ११।६), मनुस्मृति (१।६४।७८) एवं प्रायः सभी पुराणों में चतुर्युग कृत, त्रेता, द्वापर और कलि का मान क्रमश ४८०० वर्ष, ३६०० वर्ष, २४०० वर्ष और १२०० वर्ष गणित है।[1] इस पद्धति से भी उपर्युक्त परिवर्तयुगगणना की पुष्टि होती है। कलियुग को छोड़कर तीनों युगों का कालमान १०८०० वर्ष था महाभारतयुद्ध समाप्त हुये लगभग ५१२० वर्ष हुये है, कश्यप और दक्ष प्रजापति कृतयुग के आदि मे हुए, इस गणना से उनका समय १०८०० + ५१२० = १५६०० वर्ष या षोडश-सहस्रवर्षपूर्व था।

सभी गणनाओं में मनु आदि का एक ही समय निकलता है, अतः सभी गणनायें या परम्परायें मिथ्या नही हो सकती, अतः अगस्त्य, नहुषादि का जो समय उपर्युक्त गणनाओं मे जो हमने निश्चित किया है, वही सत्य है। इतिहास में कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं है।

६. पारसीपरम्परा का प्रमाण—भारतीय अनुकरण पर पारसी, बाबल, यहूदी और यूनानीपरम्परा मे चारयुगों एवं उनका काल १२००० वर्ष माना जाता था। ऐसा लेख प्रमाणों द्वारा प० भगवद्दत्त ने लिखा है।[2] पारसीजन हमारी तरह ही १२००० वर्ष का युगचक्र मानते थे। वैवस्वत यम ने ३००-३०० करके १२०० (द्वादशशताब्दी = एककलियुगतुल्य) वर्ष राज्य किया था, यह पहिले ही अवेस्ता (फर्गद २) के आधार पर लिखा जा चुका है।[3]

७. मैगस्थनीज का भारतीय इतिहासकालसम्बन्धीप्रमाण—मैगस्थनीज ने प्राचीनभारतीय इतिहासकालसम्बन्धी एक विवरण प्रस्तुत किया है और डायनोसियस (दानवासुर = धान्व असितासुर) से सिकन्दरपर्यन्त १५४ राजा और

---

१. एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते (मनु० १।७१)

२. द्र० भा० बृ० इ० भाग १ पृ० २१ तथा Encyclopedia of Relegion and Ethics (Articles on ages).

३. द्र० आर्यो का आदि देश पृ० ७४।७६ पर उद्धृत

६४५१ वर्ष गणित किये हैं।[1] प० भगवद्दत्त डायनोसिस या बेक्कस को विप्रचित्ति (प्रथम दानवेन्द्र) मानते है जो हिरण्यकशिपु के समकालिक एवं इन्द्र का पूर्ववर्त्ती था। परन्तु 'बेक्कस'[2] वृत्र हो सकता है, और वृत्रासुर का समय भी अत्यन्त पुरातन है, 'विप्रचित्ति' का विकार बेक्कस' किसी प्रकार भी नहीं बनता। असुरेन्द्र असितधान्व ही 'डायनोसिस' हो सकता है।[3] निश्चय ही डायनोसिस 'धान्व' का विकार है। 'धान्व' असुर (डायनोसिस) ने देवों से बदला लेने के लिए, देवयुग के बहुत काल पश्चात् देवसन्तति (भारतीयों) पर आक्रमण किया। इसी का संकेत मैगस्थनीज ने किया है।[4] विप्रचित्ति के समय असुर भारतवर्ष में ही रहते थे, परन्तु डायनोसिस (धान्व) बाहर (पश्चिम) से आया था, अतः धान्व असित असुर ही मैगस्थनीज उल्लिखित डायनोसिस था। जिसका समय आज से लगभग १०००० (६४५१+३२७+१९८२=९७६०) वर्ष पूर्व था, जो भारतयुद्ध से पूर्व अर्थात् १३ परिवर्त पन्द्रहवेंयुग में जब भारत में मान्धाता का राज्य था। असितधान्व असुरों का आदिम राजा नहीं था, परन्तु वंश प्रवर्तक एवं राज्यप्रवर्तक था, जिस प्रकार रघुवंश का प्रवर्तक रघु। अश्वमेधयज्ञ के अवसर पर सातवें दिन असितधान्व का उपाख्यान सुनाया जाता था। (द्र० श० ब्रा० १३।४।३) ।

८. **मैक्सिको की मयसभ्यता में चतुर्युगगणना**—श्री चमनलाल ने 'द्वादशवर्षसहस्रात्मक' भारतीय चतुर्युग की तुलना प्राचीन मैक्सिको की मयगणना से की है—"The following comperative table" Shows the lengths of the Indian and Mexican Ages :—

---

१. From the days of Father Bacchus to Alexander the great their Kings are reckoned at 154 whose reigns extend over 6451 years and three months (Indika)

२. बेक्कस का शुद्ध संस्कृत 'वृक' भी सम्भव है, 'वृक' नाम के अनेक असुर हो चुके थे।

३. वायुपुराण (६८।८१) के अनुसार प्रह्लादपुत्र विरोचन का पुत्र शम्भु था, उसका पुत्र हुआ धनु, इसके वंशज असुर धान्व कहलाये, असित इन्हीं का कोई वंशज था।

४. ......Dionysus... ...coming from the regions lying to the west......He overun the whole India......He was besides, the founder of large cities. (Fragments; p. 35-36)

INDIAN		MAXICAN
First Age,	4800 years	4800 years
Second Age	3600 years	4010 years
Third Age	2400 years	4801 years
Fourth Age	1200 years	5042 years
		(Total = 18653 years)

In both countries the first Age is of exactly the same duration"……(Hindu America; p. 34, by Chaman Lal). स्पष्ट है मैक्सिको का इतिहास आज से लगभग उन्नीस सहस्रवर्षपूर्व आरम्भ होता था और भारतीय और मैक्सीकनयुगगणना मे प्रारम्भिक साम्य था तथा मनु का समय मैक्सिको मे भी आज से चौदह सहस्र वर्ष पूर्व ही माना जाता था, उनका आदिमपूर्वज या प्रमुखपुरुष मयासुर भी लगभग उसी समय हुआ, क्योंकि मयासुर, वैवस्वत मनु के पिता विवस्वान् का शिष्य और साला था।

सप्तर्षियुग

२७०० वर्षों का एक सप्तर्षियुग या संवत्सर प्राचीनपुराणपाठों में उल्लिखित है। सप्तर्षिमण्डल के सप्ततारा मघादि नक्षत्रों मे १००-१०० वर्ष ठहरते हैं, इस गणना से सत्ताईस सौ वर्षों का एक युग होता था।[१]

एक अन्य मत (पुराणपाठ) के अनुसार सप्तर्षियुग ३०३० वर्षों का होता था—

त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः।
त्रिंशद्यानि तु मे मतः सप्तर्षिवत्सरः॥

वायुपुराण एव ब्रह्माण्डपुराण के मतानुसार शान्तनुपिता कौरवराज प्रतीप के राज्यकाल से लेकर आन्ध्रसातवाहनवंश के आरम्भ होने से पूर्व तक एक सप्तर्षियुग पूर्ण हो चुका था और प्रतीप से परीक्षितपर्यन्त ३०० वर्ष हुये थे, अत परीक्षित् से आन्ध्रपूर्व तक २४०० वर्ष पूर्ण हुये, परीक्षित् से नन्दवंश के प्रारम्भ

---

१. सप्तविंशतिपर्यन्ते कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले।
सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं शतम्॥
सप्तर्षीणां युग ह्येतद्दिव्यया संख्यया स्मृतम्॥ (वायु० ९९।४१९)
द्रष्टव्य है कि यहाँ २७०० मानुषवर्षों को ही दिव्यवर्ष कहा है।

तक १५०० वर्ष पूरे हुये थे । अतः महाभारत का युद्ध कलि के प्रारम्भ से ३६ वर्षपूर्व अर्थात् ३०८० वि० पू० हुआ—

सप्तर्षयस्तदा प्राहुः प्रतीपे राज्ञि वै शतम् ।
सप्तविंशैः शतैर्भाव्या आन्ध्राणामन्वयाः पुनः ।[1]
सप्तर्षयस्तदा प्राहुः प्रदीप्तेनाग्निना समाः ।
सप्तविंशतिर्भाव्यानामन्ध्राणान्तेऽन्वगात् पुनः ।[2]
सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारीक्षिते शतम् ।
अन्ध्राणान्ते सचतुर्विंशे भविष्यन्ति शतं समाः ।[3]

उपर्युक्त प्रमाणों से भारतीय इतिहास की सुपुष्ट आधारशिला रखी जायेगी। ऐसा प्रतीत होता है कि पुराणों मे ऐतिहासिक कालगणना सप्तर्षियुग के माध्यम से भी होती थी। पंचवर्षीययुग से सप्तर्षियुगपर्यन्त सभी इतिहास में प्रयुक्त होते थे।

उपर्युक्त गणना से प्रकट है कि दक्ष प्रजापति से एक महायुग (दैव्ययुग) युधिष्ठिरपर्यन्त, १०० मानुषयुग या ३ सप्तर्षियुग या १०००० (दशसहस्र) वर्ष व्यतीत हुये थे और महाभारतयुद्ध ३०८० वि० पू० लडा गया था तथा ३०४४ वि० पू० कृष्णपरमधामगमन के दिन से कलियुग प्रारम्भ हुआ।

चतुर्युगपद्धति के आविष्कार से पूर्व इतिहास में गणना शतवर्षीय मानुषयुग, ३६० वर्षीय परिवर्तयुग (या देवयुग) और २७०० वर्षीय सप्तर्षियुग से होती थी।

चतुर्युग की कृतादि संज्ञायें कब और कैसे समुद्भूत हुई, यह रहस्य वैदिक वाङ्मय और इतिहासपुराणों से ही अनुसंधान करेंगे।[4]

कृतादिसंज्ञाकरण का रहस्य

उपर्युक्त वैदिक (प्राचीनतर) मानुषयुग और परिवर्तयुगपद्धति से बहुत काल पश्चात् चतुर्युगपद्धति भारतवर्ष मे प्रचलित हुई,[5] वायुपुराणादि में परिवर्तयुगपद्धति

---

१. वायु० (९९।४१८),
२. मत्स्य० (२७३।३९),
३. ब्रह्माण्ड० (३।७४।२३६)।
४. इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। (महाभारत)
५. चत्वारि भारतेवर्षे युगानि मुनयो विदुः।
कृतं त्रेता द्वापरं च तिष्यं चेति चतुर्युगम्। (वायुपु० २४।१);

को त्रेतायुगमुखनाम, से अभिहित किया है, और इसी में ऐतिहासिक कालगणना की गई है[1] व्यासपरम्परा के वर्णन मे उपर्युक्त पुराण में इसी कालगणना का प्रयोग किया है। ब्रह्माण्डादि में त्रेता के स्थान पर 'द्वापर' युग का प्रयोग हुआ है—

द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः।
तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे च बृहस्पतिः।[2]

परिवर्त—पर्याय या युग को 'त्रेता' या 'द्वापर' कथन उत्तरकालीन भ्रम है युग का पूर्वनाम 'परिवर्त' ही था। यह 'युग' ३६० वर्ष पश्चात् परिवर्तन होता था, अतः इसे 'परिवर्त' कहा जाता था।

अब यह द्रष्टव्य है कि कृतादिसंज्ञायें कब और कैसे प्रचलित हुईं। वैदिक संहिताओ मे बहुधा द्यूत के प्रसंग मे कृतादिसंज्ञाओ का प्रयोग हुआ है—

कृताय आदिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुम्'
(वा० स ३०।१८)

कृताय सभाविनं त्रेताया आदिनवदर्शम् द्वापराय बहिःसदम् कलये सभास्थाणुम्'
(तै० ब्रा० ३।४।१).

सभावी का अर्थ है द्यूतसभा मे बैठनेवाला (स्थायीसदस्य), आदिनवदर्श का अर्थ है द्यूतद्रष्टा, बहिःसद का अर्थ है सभा से बाहर से द्यूत देखनेवाला और सभास्थाणु का अर्थ है द्यूतसमाप्ति पर भी द्यूतसभा में जमे रहनेवाला, इनको ही क्रमशः कृत, त्रेता, द्वापर और कलि कहा जाता था। क्योंकि कलि-संज्ञक सदस्य या अक्ष ही कलह का मूलकारण होता था, अतः युद्ध की संज्ञा भी कलि हुई। कल्पसूत्रों के समय यज्ञादि मे पञ्चाक्षिकद्यूत का प्रचलन था। द्यूत के पाँच अक्षों (पाशो) की संज्ञा भी कृतादि थी, पञ्चम अक्ष को 'कलि' कहा जाता था।[3] कलि सदस्य और द्यूताक्ष कलि के नाम पर ही कल्यादियुगसंज्ञायें प्रचलित हुईं।

राजसूययज्ञ के सूयमान राजा अक्षावाप की सहायता से द्यूतक्रीड़ा करता था। द्यूत और राजा का घनिष्ठ सम्बन्ध था और राजा ही काल (समय=युग) का कारण=निर्माता=प्रवर्तक होता है, यह सर्वमान्य सिद्धान्त था।

---

१. तस्मादादौ तु कल्पस्य त्रेतायुगमुखे तदा (वायु० ३१।४६),
त्रेताया युगमन्यस्तु कृतांशमृषिसत्तमाः ॥ (वायु० ८।८७),

२. ब्रह्माण्ड० (१।२।३५।११७),

३. अथ ये पञ्च: कलिः सः (तै० ब्रा० १।५।११).

महाभारत (शान्तिपर्व, अध्याय ६९) में राजा को युगनिर्माता या युगप्रवर्तक कहा गया है—

> कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम् ।
> इति ते संशयो मा भूद् राजा कालस्य कारणम् ॥७९॥
> दण्डनीत्यां यदा राजा सम्यक् कार्त्स्न्येन प्रवर्तते ।
> तदा कृतयुगं नाम कालसृष्टं प्रवर्तते ॥८०॥
> दण्डनीत्यां यदा राजा त्रीनंशाननुवर्तते ।
> चतुर्थमंशमुत्सृज्य तदा त्रेता प्रवर्तते ॥८७॥
> अर्द्धं त्यक्त्वा यदा राजा नीत्यधर्ममनुवर्तते ।
> ततस्तु द्वापरं नाम स कालः संप्रवर्तते ॥८९॥
> दण्डनीतिं परित्यज्य यदा कार्त्स्न्येन भूमिपः ।
> प्रजाः क्लिश्नात्ययोगेन प्रवर्तेत तदा कलिः ॥९१॥
> राजा कृतयुगस्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च ।
> युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम् ॥९८॥

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि युगप्रवर्तन मे राजा की नीति और धर्म-व्यवस्था का प्रमुख योगदान होता था और आज भी है। प्राचीनयुगों मे द्वादश आदित्य (वरुणादि), माान्धाता, जामदग्न्यराम, दाशरथि राम, युधिष्ठिरादि युगप्रवर्तक राजा थे। कलियुग मे राजा शूद्रकविक्रम का शासन धर्मशासन कहा जाता था, इसलिये उसका संवत् 'कृतसंवत्' कहलाता था—जैसा कि समुद्रगुप्त ने कृष्णचरित की भूमिका में लिखा है —

> धर्माय राज्यं कृतवान् तपस्विव्रतमाचरन् ।
> एवं ततस्तस्य तदा साम्राज्यं धर्मशासिनम् ॥[1]

अतः राजा (शासक) ही 'कृत' अथवा 'कलि'युग का प्रवर्तक होता था। भारतयुद्ध से बहुकालपूर्व यज्ञों में द्यूतक्रीड़ा का विधान था, परन्तु यह विधान कब से विहित हुआ, वह समय अज्ञात है परन्तु हमारा अनुमान है कि ऐक्ष्वाक अयोध्यापति ऋतुपर्ण के समय से यह द्यूत यज्ञों में प्रविष्ट हुआ। ऋतुपर्ण को "दिव्याक्षहृदयज्ञ" कहा गया है और वह नैषध नल का सखा था।[2] अतः प्रतीत होता है ऋतुपर्ण और नल के समय में द्यूत यज्ञ का अनिवार्य अंग बन चुका था। दाशरथि राम का समय २४वाँ परिवर्तयुग थो, यह राजा ऋतुपर्ण, राम

1. कृष्णचरित, (श्लोक ८, ९)
2. वायु० (८८।१७४)

से १४ पीढ़ी पूर्व या ४ युगपूर्व हुआ, अतः ऋतुपर्ण और नल का समय राम से डेढ़ सहस्राब्दी पूर्व अर्थात् विक्रम से ७००० वर्ष पूर्व था। संभवत इसी नल के समय से चतुर्युगीनगणना और कृतादिसंज्ञायें प्रचलित हुई हों। 'कलि' ने नल को बहुत सताया था। पुरूरवा आदि के समय कृतादिसंज्ञायें प्रचलित नहीं थी, यद्यपि पुरूरवा को त्रेताग्नि का प्रवर्तक कहा गया है।[1]

चतुर्युग का २८ या ३० परिवर्तों का सामंजस्य—३० या २८ युगों या परिवर्तों का कालमान (३६०×३०)=१०८०० या दशसहस्रवर्ष था। चतुर्युग का कालपरिमाण १२००० वर्ष था। मूल में चतुर्युग के दशसहस्र-वर्ष के ही थे, संध्याकाल के २००० जोड़ने पर ही चतुर्युग के द्वादशसहस्र वर्ष हुए। अथर्ववेद में चतुर्युग को दशसहस्रवर्ष परिमाण या १०० मानुषयुगों के तुल्य बताया गया है—

शत तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणिचत्वारि कृण्मः।[2]

इसी को मनुस्मृति, महाभारत आदि में द्वादशवर्षसहस्रात्मकयुग कहा है—

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणा तत्कृतं युगम्।
तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेताया मनुजाधिप।
द्विहसस्रं द्वापरे तु शतं तिष्ठति सम्प्रति॥[3]
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणा तत्कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः॥
इतरेषु ससंध्येषु संध्यांशेषु च त्रिषु।
एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च॥
यदेतत परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम्।
एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते॥[4]

कृतयुग=४००० वर्ष, त्रेतायुग=३००० वर्ष, द्वापर=२००० वर्ष, कलि=१००० वर्ष के थे। इनमें क्रमशः संध्यांश और संध्या जोड़ने पर ४८००, ३६००, २४०० और १२०० वर्ष के हो जाते थे इसी को एक महायुग या देवयुग कहा जाता था। यह देवयुग मानुषवर्षों (१२०००) का ही था, इनमें ३६०

१. ऐलस्त्रीस्त्रानकल्पयत् (वायु०)
२. अथर्व० (८।२।२१),
३. महाभारत भीष्मपर्व
४. मनु० (१।६।६),

से गुणा करने की आवश्यकता नहीं थी । मनुस्मृति के समय तक यह देवयुग एक ऐतिहासिकयुग था, परन्तु जब से (बैरोसस और अश्वघोष के समय से) इसमें ३६० का गुणा किया जाने लगा, तबसे यह एक काल्पनिकयुग बन गया, जो इतिहास में सर्वथा अनुपयुक्त है । देवयुग का मूलरूप यही था—

तेषां द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता ।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुष्टयम् ।
अत्र संवत्सराः सृष्टा मानुषेण प्रमाणतः ।[1]

आर्यभट के समय तक युगपाद तुल्य और १२०० वर्ष के माने जाते थे—

षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः ।
त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीताः ।।[2]

ध्रुवसंवत्सर

पुराणों में ९०९० या तीन सप्तर्षियुगों के तुल्य एक ध्रुवसंवत्सर का उल्लेख है—

नवयानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि च ।
अन्यानि नवतिश्चैव ध्रुवसंवत्सरः स्मृतः ।।[3]

अतः उपर्युक्त सभी युग (मानुषयुग परिवर्तयुग, चतुर्युग, सप्तर्षियुग और ध्रुवयुग) मानुषवर्षों में ही गिने जाते थे । दिव्यवर्ष की तथाकथित गणना अनैतिहासिक हैं ।

अब आगे आदियुग, आदिकाल, देवासुरयुग, चतुर्युग (कृत, त्रेता, द्वापर और कलि), मन्वन्तर एवं कल्पसंज्ञक युगमानों पर विशिष्ट विचार करेंगे, जिनका प्राचीन इतिहास में विशेष व्यवहार हुआ है ।

आदियुग या आदिकाल या प्रजापतियुग

आदिम दस प्रजापतियों या विश्वसृजसंज्ञक महर्षियो से समस्त मानवप्रजा उत्पन्न हुई, उनके नाम थे—स्वायम्भुवमनु, मरीचि, भृगु, अत्रि, दक्ष, अङ्गिराः

---

१. ब्रह्माण्ड० (१।२।२९-३०),

२. आर्यभटीय कालक्रियापाद ।

३. ब्र० पु० (१।२।२९-१८), पुराणों में २६००० वर्षों के युग का भी उल्लेख है ।
षड्विंशतिसहस्राणि वर्षाणि मानुषाणि तु ।
वर्षाणां युगं ज्ञेयम् ।। (ब्र० पु० १।२।२९।१९),

पुलह, क्रतु, वसिष्ठ और पुलस्त्य।[1] वायुपुराण (३।२-२) में निम्नलिखित २१ प्रजापतियों का उल्लेख है—भृगु, परमेष्ठी, मनु, रज, तम, धर्म, कश्यप, वसिष्ठ, दक्ष, पुलस्त्य, कर्म, रुचि, विवस्वान्, क्रतु, मुनि, अंगिरा, स्वयंभू, पुलह, चुक्रोधन मरीचि और अत्रि। इसी प्रकार रामायण (३।१४) मे प्रजापतियों के नाम हैं—कर्दम, विकृत, शेष, संश्रय, बहुपुत्र स्थाणु, मरीचि, अत्रि, क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता, पुलह, दक्ष, विवस्वान्, अरिष्टनेमि और सर्वान्तिम कश्यप।

स्वयम्भू या स्वायम्भुव मनु से दक्ष-कश्यप पर्यन्तयुग को 'प्रजापतियुग' कह सकते है। यही आदिकाल या आदियुग था। चरकसंहिता (३।३१) में 'आदि-काल' संज्ञा का प्रयोग है—

"आदिकाले हि अदितिसुतसमौजसः पुरुषा बभूवुरमितायुष.।"

इन प्रजापतियो के अतिरिक्त कहीं कहीं वरुण और वैवस्वत यम को भी प्रजापति कहा गया है। निश्चय ही वरुण से महान् आसुरीप्रजा दानवगन्धर्वादि उत्पन्न हुये, वैवस्वत यम से पितृसंज्ञक ईरानी प्रजा उत्पन्न हुई। वरुण और हिरण्यकशिपु से पूर्व के युग का नाम 'प्रजापतियुग' या, हिरण्यकशिपु से इन्द्र-बलिपर्यन्तयुग को 'पूर्वदेवयुग' (असुरयुग) और इन्द्र से वैवस्वतमनु या नहुष-भ्राता रजि के समय तक 'देवयुग' अथवा 'पूर्वदेवयुग और 'देवयुग' की सम्मिलित संज्ञा कृतयुग थी। इसी देवासुरयुग मे, जो १० परिवर्तकाल अर्थात् ३६०० वर्षों का था, द्वादशदेवासुरसंग्राम हुये। इन सभी घटनाओं का विस्तृत उल्लेख आगे होगा। यहाँ पर केवल कृतयुग से पूर्व की युगसंज्ञाओ का स्पष्टीकरण किया जा रहा है। इसी देवासुरयुग में कृतयुग का तीन चौथाई काल (३६०० वर्ष) मे सम्मिलित था। कृतयुग के चतुर्थपाद के आरम्भ या दशमपरिवर्तयुग में दत्तात्रेय और मार्कण्डेय हुये—

त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूवह।
नष्टे धर्मे चतुर्थश्च मार्कण्डेयपुरस्सरः॥ (वायुपुराण)

दत्तात्रेय और मार्कण्डेय दोनो ही दीर्घजीवी थे, दत्तात्रेय कार्तवीर्य सहस्रबाहु अर्जुन के समय तक जीवित रहे, जो उन्नीसवे परिवर्त मे परशुराम के द्वारा मारा गया।[2] परशुराम, कार्तवीर्य और दत्तात्रेय तीनो ही दीर्घजीवी व्यक्ति थे, जो सहस्रोंवर्ष तक जीवित रहे। मार्कण्डेय और परशुराम तो ३०वें परिवर्त

---

१. महा० शा० (२२।४४)

२ एकोनविंश्यां त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकविभुः।
जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरःसरः। (मत्स्य० ४७।२२४)

(ऊर्ध्वकाल) तक जीवित रहे, जहाँ पाण्डवों से उनकी भेंट दिखाई गई है। अथवा परिवृत्तों में चिरायुनामधारक वेदव्यास हुये, संभव है कि मार्कण्डेय का नाम ही चिरायु हो। जामदग्न्यराम ने सहस्रबाहु अर्जुन का वध त्रेताद्वापर की संधि में किया था।[1]

उपर्युक्त विवेचन का तात्पर्य यह है कि परिवर्तयुगगणना और चतुर्युगगणना के कारण घटनाओं का कालनिर्णय करना अत्यन्त कठिन कार्य था, परन्तु परिवर्तयुग का समय ३६० वर्ष निश्चित ज्ञात हो जाने पर घटनाक्रम को निश्चित करना अपेक्षाकृत सरल हो गया है।

अतः 'देवासुरयुग' का आरम्भ १४००० वि० पू० दक्ष-कश्यप प्रजापति के समय से हुआ, जब 'प्रजापतियुग' का अन्तिम चरण व्यतीत हो रहा था, इसी समय 'कृतयुग' आरम्भ हुआ, जिसका अन्त मान्धाता के समय (पन्द्रहवें) परिवर्त में हुआ—

> पंचमः पंचदश्यान्तु त्रेतायां संबभूवह ।
> मान्धातुश्चक्रवर्तित्वे तस्थौ उतथ्यपुरस्सरः ।

इसी समय कृतयुग के अन्त में असितधान्वासुर[2] ने किसी पश्चिमीदेश (रसातल = पाताल = योरोप) से आकर भारतवर्ष पर आक्रमण किया था, जिसका मैगस्थनीज ने उल्लेख किया है। शतपथब्राह्मण (१३।४।३) में इसी असुरेन्द्र असितधान्व का प्रधान असुर सम्राट् के रूप में उल्लेख है, जिसका मैगस्थनीज ने 'डायनोसिस' नाम से वर्णन किया है। असितधान्व को जीतकर मान्धाता ने सम्पूर्ण भूमंडल पर शासन किया।[3] यह कृतयुग के अन्त की अन्तिम

---

1. त्रेताद्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृतां वरः ।
   असकृत्पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः ॥ (महा० १।२।३)

2. असित धान्वासुर पर मान्धाता की विजय का महाभारत में दो स्थानों पर उल्लेख है—

   > 'यवनांगारं तु नृपतिं मरुत्तमसितं गयम्
   > अंग बृहद्रथं चैव मांधाता समरेऽजयत् ॥ (शान्ति० २९।८८)
   > असितं च नृगं चैव मान्धाता मानवोऽजयत् ॥ (द्रोण० ६२।१०)

3. असितासुरविजय (रसातलविजय) से मान्धाता का सम्पूर्ण भूमण्डल पर शासन स्थापित हो गया—द्र० मत्स्य—यावत्सूर्य उदयति यावच्च प्रतितिष्ठति सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते । (वायु० ८८।६८)
   हर्षचरित में मान्धाता की पातालविजय का उल्लेख है—"मान्धाता······ रसातलमगात्।" (३ उच्छ्वास)

व सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना थी। मान्धाता के अनन्तर के एक नये युग—सोलहवें परिवर्त (३६०० कलिपूर्व) से त्रेतायुग का प्रारम्भ हुआ। इस त्रेतायुग का परिमाण ३६०० वर्ष था।

असुरयुग या पूर्वदेवयुग

कश्यप द्वारा दिति से असुरेन्द्रद्वयी[1] उत्पन्न हुई इनमें हिरण्याक्ष संभवतः ज्येष्ठ था और हिरण्यकशिपु कनिष्ठ भ्राता था।[2] हिरण्याक्ष का शासन सम्भवतः पाताल (योरोपादि) में था और हिरण्यकशिपु का राज्य भारतादि में था। इन दोनों के वंशजों का सम्पूर्ण भूमण्डल पर शासन था।[3] हिरण्यकशिपु के वंशजों ने बाणासुर के पिता असुरेन्द्रबलिपर्यन्त भारतवर्ष पर शासन किया। विष्णु द्वारा परास्त बलिनेतृत्व मे दैत्य अपने पूर्वनिवास पाताल (जहाँ हिरण्याक्ष का शासन था) भाग गये। विष्णु का अवतार सप्तम त्रेतायुग में हुआ था,[4] और देवासुरसंग्राम दशयुगपर्यन्त (३६०० वर्ष) होते रहे।[5] इन्द्र का जन्म षष्ठयुग में हुआ था। असुरों की संज्ञा 'पूर्वदेव' थी, अतः उनके शासनकाल का पूर्वदेवयुग या 'असुरयुग' उपयुक्त नाम है। यह समय ७ युग अर्थात् २५२० वर्ष था, यद्यपि युद्ध अगले तीन परिवर्तों तक होते रहे, अर्थात् बलि का समय (पलायनकाल) ११४८० वि० पू० और अन्तिमयुद्धकाल १०४०० वि० पू० था, इसी समय असुरयुग समाप्त हो गया। असुरयुग १४००० वि० पू० से ११४८० वि० पू० तक रहा।

देवयुग—पण्डित भगवद्दत्त ने बिल्कुल ठीक ही लिखा है "भारतवर्ष का इतिहास अपूर्ण ही रहता है, जब तक उसमे देवयुग का स्पष्ट चित्र उपस्थित न

---

१. दित्या पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम्।
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान्॥ (हरिवंश ३।३६।३२),

२. दैत्यानां च महातेजा हिरण्याक्षः प्रभुः कृतः।
हिरण्यकशिपुश्चैव यौवराज्येऽभिषेचितः॥ (हरि० ३।३६।१४)

३. दितिस्त्वजनयत पुत्रान् दैत्यांस्तात यशस्विनः।
तेषामियं वसुमती पुरासीत् सवनार्णवा॥ (रामायण० ३।१४।१५)

४. बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमे युगे।
दैत्यस्त्रैलोक्याक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत्॥ (वायुपुराण)

५. युग वै दश (वायु ९७।७०), 'युद्धं वर्ष सहस्राणि द्वात्रिंशदभवत् किल (शान्ति० २२।१४) यदि सहस्र के स्थान पर शत पाठ हो तो युद्ध ३२०० वर्ष तक हुए।

हो। भारत ही नहीं, संसार का मूल इतिहास देवयुग के वर्णन बिना अधूरा है।" (भा० बृ० इ० भाग १ पृ० २७७)।

देवराज इन्द्र से देवयुग का प्रारंभ होता है, जो सप्तम परिवर्तयुग में हुआ, यद्यपि वरुण (द्वितीययुग), विवस्वान् (पंचमयुग) आदि भी देव थे, परन्तु इन्द्र से पूर्व मुख्यसत्ता असुरों के हाथ में थी, इन्द्र का समय (जन्मादि) वि०सं० से १३८४० वि० पू० से १२००० मध्य था, अतः देवासुरयुग की सम्मिलित अवधि २१६० वर्ष (१३८०० वि० पू० तक) थी, तो शुद्धदेवयुग की अवधि १४०० वर्ष थी, देवों और असुरों का कुल राज्यकाल दशयुग अर्थात् ३६०० वर्ष था, इसमें वरुण, विवस्वान् इत्यादि का राज्यकाल भी सम्मिलित है, यद्यपि इन्द्र का शासन १०वें युग तक अर्थात् ११४०० वि० पू० तक रहा, परन्तु उसका अस्तित्व वैश्वामित्र अष्टक और यौवनाश्व मान्धाता तक यहाँ तक कि हरिश्चन्द्र तक ज्ञात होता है, अतः इन्द्र अनेक सहस्रावर्षों जीवित रहा, परन्तु देवयुग की समाप्ति ११४०० वि० पू० हो गई थी और प्रारंभ १३८४० वि० पू० हुआ। प्राचीनग्रन्थों में देवयुग के उल्लेख द्रष्टव्य हैं—

> एवं स देवप्रवरः पूर्वं कथितवान् कथाम्।
> सनत्कुमारो भगवान् पुरा देवयुगे प्रभुः। (रामा० १।९।१२)

> तद्धैवं विद्वान् ब्राह्मणः सहस्रं देवयुगानि उपजीवति। (जै० ब्रा० २।७५)

> पुरा देवयुगे ब्रह्मन् प्रजापतिसुते शुभे॥ (महा० १।१४।५)
> सोऽब्रवीदहमासं प्राग् गृत्सो नाम महासुरः।
> पुरा देवयुगे तात भृगोस्तुल्यवया इव॥ (शान्ति० ३।११)

देवयुग की प्रधान जातियाँ थी—असुर, दैत्य, दानव, किन्नर, यक्ष, राक्षस, नाग और सुपर्ण। देवयुग के प्रधान पुरुष थे—

द्वादश आदित्य, नारद, सोम, वैनतेय गरुड़, शिव, स्कन्द, सनत्कुमार, धन्वन्तरि, अश्विनीकुमार इत्यादि। इन्द्र देवयुग का प्रधान शासक था और विष्णु ने बलि को परास्त करके देवयुग का प्रवर्तन किया। यह युग लगभग १५०० वर्ष तक रहा। (देवासुरयुग १३८४० वि० पू० से ११४०० वि० पूर्व तक रहा) अतः देवयुग प्राचीन इतिहास का एक महत्वपूर्ण और स्वर्णयुग था।

कृतयुग—यह पहिले बता चुके हैं कि कृतयुग युगपरिवर्त आरम्भ, और देवासुर का सम्मिलित, प्रारम्भ प्राचेतस दक्ष प्रजापति से (आज से १४००० वि० पू०) हुआ। कृतयुग के ४८०० वर्षों में देवयुग के ३६००

कृत, तुर्य, सम्मिलित थे, देवयुग का अन्त १०२४० वि० पू० हुआ, परन्तु कृत-युगसमाप्ति ९२०० वि० पू० हुई।

कृतयुग और देवयुग मे मनुष्य की आयु ४०० वर्ष होती थी।

त्रेतायुग का प्रारम्भ

३६०० वर्ष परिणामवाले त्रेतायुग का प्रारम्भ १६वें परिवर्तयुग से, ९२०० वि० पू० युवनाश्व-त्रसदस्यु के शासनकाल के समय से हुआ और अन्त ५६०० वि० पू० हुआ। महाभारत, आदिपर्व (२।३) के प्रमाण[1] पर पं० भगवद्दत्त ने त्रेता द्वापरसन्धि, परशुराम द्वारा क्षत्रियविनाश (विशेषतः कीर्तवीर्य अर्जुनवध) ५४०० वि० पू० माना है, परन्तु महाभारत का यह मत अनुपयुक्त एवं त्रुटित है। महाभारत के वंशपाठों की महान् त्रुटियाँ हैं, यह पं० भगवद्दत्त ने भी अनेकत्र माना है।[2] वायुपुराण के प्राचीनपाठों मे परशुराम का अवतार (= हैहयवध) उन्नीसवें त्रेता[3] परिवर्त मे हुआ था, यह समय ६४४० वि० पू० से ६०८० वि० पू० पर्यन्त था। अतः रामावतार और परशुराम मे कमसेकम २०४० वर्षों का अन्तर था। अतः परशुरामकृत क्षत्रियवध त्रेताद्वापर की सन्धि से न होकर त्रेता के मध्यकाल मे हुआ।

त्रेतायुग का अन्त (१० परिवर्तयुग = १६वें से २५वें पर्यन्त) ५६०० वि० पू० हुआ। २४वें परिवर्त मे ऋक्ष वाल्मीकि और २५वें परिवर्त मे शक्ति वासिष्ठ व्यास हुये—

"परिवर्ते चतुर्विंशे ऋक्षो व्यासो भविष्यति।"

पंचविंशे पुनः प्राप्ते...। वासिष्ठस्तु यदा व्यासः शक्तिर्नाम भविष्यति।

पं० भगवद्दत्त ने त्रेतान्त या द्वापरादिकाल मे पृथ्वी पर आयुर्वेदावतारकाल माना है। वहाँ पर प्रतर्दन-राम की समकालीनता, भरद्वाज, दिवोदास आदि के समय के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वह अत्यन्त भ्रामक है, इन सबकी

---

1. त्रेताद्वापरयोः संधौ रामः शस्त्रभृतां वरः।
असकृत्पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः॥

2. भा० बृ० इ० भाग २, पृ० १४१, अध्याय अष्टाविंशति।

3. एकोनविंशे त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकोऽभवत्।
जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरःसरः॥ (वायु०)

आलोचना यथा स्थान की जायेगी।[1] पार्जीटर त्रेता का प्रारम्भ सम्राट सगर से मानता है,

वह भी भ्रामक एवं मिथ्या है।[2]

द्वापरयुग—इस युग की अवधि २४०० थी, पुराणों में इसका प्रारम्भ ५६०० वि० पू० से माना जाता है और अन्त ३२०० वि० पू० या ३०८० वि० पू० श्रीकृष्ण वासुदेव के परधामगमन के दिन से हुआ था। श्रीकृष्ण का जन्म ३२०० वि० पू० और मृत्यु ३०८० वि० पू० हुई, उनकी आयु १२० या १२५ वर्ष थी।

---

१. द्र० भा० बृ० इ० भा० १ पृ० २६६,
२. द्र० हि० ट्रे० एं० इ०

४

भारतोत्तरतिथियाँ

वायुपुराण में (९९।४२८) में लिखा है कि १२०० वर्ष परिमाणवाला कलियुग ठीक उसी दिन से प्रारम्भ हुआ जब श्रीकृष्ण दिवंगत हुये।[1]

कलि का अन्त—पुराणों में स्पष्ट ही कलियुग को बारम्बार द्वादशाब्द-शतात्मक (१२०० वर्ष वाला) कहा गया है— और सप्तर्षियों के मधानक्षत्र पर आने पर यह युग प्रवृत्त हुआ—

तदा प्रवृत्तश्च कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः।[2]

कलियुग को चार लाख बत्तीस हजारवर्ष परिमाण का मानने की कल्पना निरर्थक एवं भ्रामक है, इसका सप्रमाण खण्डन पहिले ही कर चुके हैं। पुराणों में सदसदात्मक दोनो ही मत उपलब्ध है, इतिहास में कल्पना नहीं तथ्य को ग्रहण किया जाता है। अस्तु।

कल्यन्त—कलियुग का अन्त कब हुआ, यह पुराणपाठों मे ही अनुसंधेय है। वायुपुराणादि में लिखा है कि इस युग (कलियुग) के क्षीण (समाप्त) होने पर विष्णुयशा नामक पाराशर्यगोत्रीय कल्कि ब्राह्मण के रूप में विष्णु का दशम अवतार हुआ—याज्ञवल्क्यगोत्रीय कोई ब्राह्मण उनका पुरोहित था—

अस्मिन्नेव युगे क्षीणे संध्याश्लिष्टे भविष्यति।
कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्यः प्रतापवान्॥
दशमो भाव्यसंभूतो याज्ञवल्क्यपुरस्सरः। (वायुपु०)

हम १४ मनुओं के विषय में सप्रमाण सिद्ध कर चुके हैं कि वे सभी भूत-कालिक थे, इसी प्रकार 'कल्कि' अवतार भी भूतकाल में हो चुका था। पुराणों के द्वैध (भूत एवं भविष्य) वर्णन से भी हमारे मत की पुष्टि होती है। पुराणों में 'भाव्यसंभूत' और भविष्यति, अभवत्[3] जैसी क्रियाओं का वर्णन होता है।

---

१. यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदादिने।
प्रतिपन्नः कलियुगस्तस्य संख्यां निबोधत॥

२. विष्णुपुराण (४।२४।१०१), भागवतपु० (१२।२।३१),

३. संध्याश्लिष्टे भविष्यति, कलियुगेऽभवत् (वायु०)

वस्तुतः कल्कि किस राजा के राज्यकाल में हुए, इसका समुल्लेख केवल कल्किपुराण में अवशिष्ट रह गया है—तदनुसार कल्कि का जन्म प्रद्योतवंशीय राजा विशाखयूप के समय में हुआ—

> विशाखयूपभूपालपालितास्तत्परचिता: । (कल्किपुराण १।२।३२)
> विशाखयूपभूपाल: कल्केर्निर्याणमीदृशम् ।
> श्रुत्वा स्वपुत्रं विषये नृपं कृत्वा गतो वनम् । (कल्किपु० ३।१६।२६)

पुराणों के अनुसार बालक (मागध) प्रद्योतवंश का तृतीय राजा विशाखयूप था, जिसने कलिसंवत् १०५० से ११०० तक पचास वर्ष राज्य किया। कल्कि का आविर्भाव कलियुग की संध्या अर्थात् १००० कलिसंवत् के पश्चात् और कलियुगान्त से कुछ वर्ष पूर्व हुआ, अत: ११०० कलिसंवत् के आसपास कल्कि हुये। वस्तुतः कल्कि एक महान चक्रवर्ती सम्राट थे, जो विशाखयूप के अनन्तर भारत के सम्राट बने, वे युगान्तकारी एवं युगप्रवर्तक महापुरुष थे।[1] कल्कि ने २५ वर्षपर्यन्त राज्य किया 'मनुष्य' की भांति।[2]

अत: कलियुग का अन्त महान् इतिहासपुरुष कल्कि के अन्त के साथ ही हुआ। कलियुग केवल १२०० वर्षों का था।

आज तक भारतीय इतिहास की किसी भी पुस्तक में ऐतिहासिक कल्कि का नाममात्र भी उल्लिखित नहीं है, जो कृष्णतुल्य महापराक्रमी और महाबुद्धिमान् महान् शासक थे, तथा जिन्होंने म्लेच्छों एवं विधर्मियों से भारत की अपूर्व रक्षा की थी—

> कल्की विष्णुयशा नाम द्विजः कालप्रचोदितः ।
> उत्पत्स्यते महावीर्यो महाबुद्धिपराक्रमः ॥ (महा० ३।१९०।९३),
>
> दशमो भाव्यसंभूतो याज्ञवल्क्यपुरस्सरः ॥
> प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृद्बली ॥ (वायु०)

कलिसंवत् और महाभारतयुद्ध की तिथि

कलिसंवत् और महाभारतयुद्ध की तिथि का घनिष्ठ सम्बन्ध है,[3] यह

---

१. सधर्मविजयी राजा चक्रवर्ती भविष्यति ।
   संक्षेपको हि सर्वस्य युगस्य परिवर्तकः ॥ (महाभारत ३।१९०।९५।९७)

२. पंचविंशोत्थितो कल्पे पंचविंशतिर्वै समाः ।
   विनिघ्नन्सर्वभूतानि मानुषानेव सर्वशः ॥ (वायु०)

३. ततो नरक्षये वृत्ते शान्ते नृपमण्डले ।
   भविष्यति कलिर्नाम चतुर्थं पश्चिमं युगम् ।
   ततः कलियुगस्यादौ पारीक्षिज्जनमेजयः । (युगपुराण ७४-७६)
   अन्तरेचैव संप्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत् ।
   समन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ (महा० १।२।९),

तिथि प्राचीनतम भारतीय इतिहासलेखन (कालक्रम) की आधारशिला है। परन्तु पाश्चात्य गवेषकों के साथ भारतीय अनुसंधाता भी प्रायः कलिसंवत् की प्रामाणिकता पर निश्चल विश्वास नहीं करते और उसे अतिशंकालु दृष्टि से अवलोकन करते हैं। प्राचीन भारतीय इतिहासकार (पुराणादि), आचार्य, ज्योतिषीगण सभी सर्वसम्मति से ३०४४ वि० पू० से कलिसम्वत् का प्रारम्भ मानते थे, केवल एक अर्वाचीनतर भारतीय इतिहासकार कश्मीरक कल्हण को छोड़कर। कल्हण के भ्रम का कारण आगे बताया जायेगा।

विंसेन्ट स्मिथ, विन्टरनीत्स, कीथ विशेषत फ्लीट[1] ने इस कलिसम्वत् को केवल भारतीय ज्योतिषियों की कल्पनामात्र माना है। फ्लीट के चरणचिह्नों पर चलता हुआ, एक भारतीय लेखक प्रबोधचन्द्रसेन लिखता है—"It is thus seen that the Kali—reckoning was an astronomical fiction invented by Aryabhata[2]" सर्वप्रथम तो उपर्युक्त लेखक का यह अज्ञान, उसकी अल्पज्ञता को प्रकट करता है कि सर्वप्रथम आर्यभट ने नहीं, उनसे पूर्व महाभारतकालीन ज्योतिषी गर्गाचार्य और वेदांगज्योतिषी लगधाचार्य ने कलिसम्वत् का उल्लेख किया है—

कलिद्वापरसंधौ तु स्थितास्ते पितृदैवतम् ।
मुनयो धर्मनिरताः प्रजानां पालने रताः ॥
कल्यादौ भगवान् गर्गः प्रादुर्भूय महामुनिः ।
ऋषिभ्यो जातकं कृत्स्नं वक्ष्यत्येवंकलि श्रितः ॥

ज्ञातव्य है कि गर्गगोत्र में ज्योतिष के अनेक महान् विद्वान गणितज्ञ हुए थे, एक गर्गाचार्य ने श्रीकृष्ण का नामकरण, जातकादि संस्कार किये थे। भागवतपुराण (१०-१८) में गर्गाचार्य के द्वारा प्रणीत परावरज्ञान के स्रोत ज्योतिषसंहिता का उल्लेख है।[3] इस गर्गवंश के अनेक आचार्यों ने ज्योतिषग्रन्थ लिखे, अतः उनकी प्रामाणिकता स्वयंसिद्ध है। कलि के आदि में पुनर्नग

---

1. The reckoning is invented one devised by the Hindu astronomers for the purposes of their calculations some thirty five centuries after the date. (J. R. A S. p. 485)
2. (A. G. D. C. Vol., II 1946)
३. "गर्गः पुरोहितो राजन् यदूनां सुमहातपाः ।
ज्योतिषामयनं साक्षाद् यत्तज्ज्ञानमतीन्द्रियम्,
प्रणीतं भवता येन पुमान् वेद परावरम् ॥"

ने ऋषियों को आतक ज्ञान दिया। अतः कलिसम्वत् आर्यभट की कल्पना नहीं था। पुनः लगधाचार्य ने कलिसम्वत् का उल्लेख किया है। सिद्धान्तशिरोमणि की मरीचिटीका के लेखक मुनीश्वर (१५६० शकसम्वत्) ने लगध के वचन उद्धृत किये हैं उनमें कलिसम्वत् का स्पष्ट निर्देश है।[1] कलिसम्वत् में तिथि-गणना का सर्वप्रथम उल्लेख अभी तक अवन्तिनाथ विक्रमादित्य के धर्माध्यक्ष[2] हरिस्वामी के शतपथब्राह्मण व्याख्याग्रन्थ मे मिला है परन्तु, इससे पूर्व महाभारत और पुराणो मे कलिसम्वत् के संकेत हैं।

उपर्युक्त श्लोक के अर्थ दो प्रकार से किये जाते हैं, कलिसम्वत् ३७४० में भाष्य की रचना की गई अथवा ३०४७ कलिसम्वत् मे भाष्य लिखा गया। पं० भगवद्दत्त ने कलिसम्वत् ३७४० में हरिस्वामी का समय माना है, परन्तु श्लोक मे अवन्तिनाथ विक्रमादित्य का उल्लेख द्वितीय अर्थ को मानने को बाध्य करता है इस सम्बन्ध मे पं० उदयवीर शास्त्री के मत ही उपयुक्त प्रतीत होते हैं कि कलिसम्वत् ३७४० न होकर ३०४७ ही ठीक है जो विक्रमसम्वत् प्रारम्भ होने के लगभग तीन वर्ष अनन्तर पड़ता है।[3] पञ्चतन्त्रादि ग्रन्थों मे हरिस्वामी का नाम विक्रम के साथ मिलता है। विक्रम के भ्राता का नाम भी हरि या भर्तृहरि था।

शिलालेखादि मे कलिसम्वत् ३४१८ तक के उल्लेख दाक्षिणात्य राजाओ के लेखों मे मिलते हैं। इसका सर्वाधिक प्रसिद्ध उल्लेख हर्षवर्धन के समकालीन, उसके प्रतिद्वन्द्वी चालुक्यराजा महाराजा पुलकेशी के शिलालेख मे

---

१. चतुष्पादी कला संज्ञा तदन्त्यश्च: कलिः स्मृतः। इति लगधप्रोक्तत्वात्॥

२. श्रीमतोऽवन्तिनाथस्य विक्रमार्कस्य भूपतेः।
धर्माध्यक्षो हरिस्वामी व्याख्यच्छातपथी श्रुतिम्।
यदाब्दानां कलेर्जग्मु सप्तत्रिंशच्छतानि वै।
चत्वारिंशत् समाश्चान्यास्तदा भाष्यमिदं कृतम्॥

३. विक्रम सम्वत् ६९५ या ६२८ ई० में ऐतिहासिक आधारों पर उज्जयिनी के स्वामी किसी विक्रमादित्य का पता नहीं लगता।"...यदि सप्तत्रिंश-च्छतानि पद को एक न मानकर सप्त को पृथक् तथा 'त्रिंशच्छतानि' को पृथक् पद समझा जाय, तो सम्वत्प्रवर्तक विक्रमादित्य के काल के साथ हरिस्वामी के निर्दिष्टकाल का कोई असामंजस्य नहीं रहता (वै० द० इ० पृ० २७४)

लिखा है ।[1]

अतः कलिसम्वत् ज्योतिषीपण्डितों की केवल कल्पना नहीं थी, कलियुग से ही कलिसम्वत् का प्रारम्भ था, पुराणों में कल्योत्तर राजाओं का राज्यकाल कलिव्यतीत होने के आधार लिखा हैं । तदनुसार ही महाभारतयुद्ध, कृष्ण का दिवंगत होना,[2] राज्याभिषेक, कलिवृद्धि आदि का सम्बन्ध भी कलिसम्वत् से ही है—

(१) महाभारतयुद्ध कलिद्वापर की संधि में

अन्तरे चैव संप्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत् ।
समन्तपंचके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ (आदिपर्व २।९)

(२) कल्किजन्म कल्यन्त में—अस्मिन्नेवयुगे क्षीणे संध्याश्लिष्टे भविष्यति ।
कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्य प्रतापवान् ।
गात्रेण वै चन्द्रसमपूर्णः कलियुगेऽभवत् ॥
(वायुपुराण)

(३) नन्दात्प्रभृतिकलिवृद्धि—तदा नन्दात् प्रभृत्येष कलिःवृद्धि गमिष्यति ।[3]

उपर्युक्त संदर्भों में प्रकारान्तर से कलिसम्वत् का ही उल्लेख है, अतः कलिसम्वत्गणना तथाकथितरूप मे आर्यभट से, कलिसम्वत् के ३५०० वर्षों पश्चात् नही, कलि के प्रारम्भ में श्रीकृष्णपरमधामगमन के दिन[4] से ही गिनी जाती थी, उपर्युक्त पुराणप्रमाणों से सिद्ध है ।

महाभारतयुद्ध की तिथि

पार्जीटर ने अपनी मनमानी कल्पना से महाभारतयुद्ध की तिथि ९५० ई० पू० मानी है, श्री एस० बी० राय नामक लेखक ने महाभारतयुद्ध की तिथि पर विभिन्न मतों का संग्रह किया, उन्होंने लिखा है—पार्जीटर के अनुसार ९५०

---

१. त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः ।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु शतेष्वब्देषुपञ्चसु ।
पंचाशत्सु कलौ काले षट्सु पंचशतेषु च ।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम् ॥
(इण्डियन एन्टिक्वटि भाग ५, पृ० ७०)

२. यस्मिन् कृष्णो दिवंयातस्मिन्नेव तदादिने ।
प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः ॥ (भागवत १२।२।३३)

३. भागवत (१२।२।३२)

४. ए० इ० हि० ट्रे० (पृ० १७५-८३)

ई० पू०,[1] हेमचन्द्रराय चौधरी ९०० ई० पू०[2] कनिंघम[3], जायसवाल[4], लोकमान्य तिलक[5] वी०वी० केतकर[6], और सीतानाथ प्रधान[7] प्रभृति लेखक १४५० ई० पू०, पी० सी० सेनगुप्त[8] २५०० ई० पू०, सर्वश्री डी० आर० मनकड,[9] एम० एम० कृष्णमाचारी,[10] सी० वी० वैद्य[11] और वी० पी० अथवले[12] ३१०० ई० पू० महाभारतयुद्ध की तिथि मानते हैं।[13] स्वर्गीय शंकरबालकृष्णदीक्षित ने अपनी पुस्तक 'भारतीयज्योतिष' में लिखा है—"मेरे मतानुसार पाण्डवों का समय शकपूर्व १५०० और ३००० के मध्य मे है, इससे प्राचीन नहीं हो सकता।"

उपर्युक्त मतों में पार्जीटर, रायचौधरी आदि का मत, बिना किसी प्रमाणों के अपनी कल्पना पर आधृत है अतः निराधार होने से स्वयं ही अस्वीकृत हो जाता है, और डा० काशीप्रसादजायसवालप्रभृति का मत (१४०० ई० पू०) निम्न भ्रमों पर आधारित है—

(१) सिकन्दर और चन्द्रगुप्तमौर्य की काल्पनिक समकालीनता।

(२) बुद्धनिर्वाण के सम्बन्ध मे भ्रामक सिंहलीतिथि।

(३) अर्वाचीन जैनपरम्परा मे महावीर की भ्रामकतिथि।

---

१. पो० हि० ए० इ० (पृ० ३५-३६)

२. Arch Survey. F. R-1864,

३. J. B. O. R. S, Vol I P. F. p. 1091

४. गीतारहस्य, पृ० ५४८-५५२,

५. वी० वी० केतकरकृत ओरि-कान्फ्र० पूना, पृ० ४४४-४५६

६. क्रो० ए० इ० पृ० २६२-२६६,

७. इण्डियन क्रानोलोजी

८. पुरानिकक्रोनोलोजी पृ० (१०१),

९. हिस्ट्री आफ क्ला० स० लिट० (पृ० XII, IX, X, VII),

१०. हि० सं० लिट० (पृ० ४-८)

११. जे० जी० आर० बाई भाग I, पृ० २०४, द्रष्टव्य Date of Mahabharata Battle by S. B. Roy. p. (139-140);

१२. दीक्षितजी ने कृत्तिकासम्पातसम्बन्धीज्योतिषगणना के आधार पर शतपथब्राह्मण का रचनाकाल ३१०० शकपूर्वमाना है। शतपथब्राह्मण की रचना महाभारत के रचयिता व्यास के प्रशिष्य याज्ञवल्क्य वाजसनेय ने की थी, अतः याज्ञवल्क्य वाजसनेय का समय ही ३१०० शकपूर्व था, इसका विशेष परीक्षण आगे करेंगे।

(४) अशोकशिलालेखों में तथाकथित यवनराज्यों का उल्लेख मानना।

(५) खारवेल की हाथीगुफाशिलालेख का भ्रामकपाठ।

(६) पुराणों में परीक्षित से नन्द तक १०१५ वर्ष मानना – पुराणपाठ की भ्रष्टता।

(७) युगपुराण में डेमिट्रियस यूनानी का उल्लेख मानना (डा० जायसवाल द्वारा)।

तृतीयमत, पी० सी० सेन का कल्हण के एक महान् भ्रम के ऊपर आधारित है, जो वाराहमिहिर के शकसम्वत्सम्बन्धी उल्लेख से उत्पन्न हुआ।

चतुर्थ मत, ३०४४ वि० पू० या ३१०२ ई० पू० कलिसम्वत् के प्रारम्भ से ३६ वर्ष पूर्व हुआ, अतः युद्ध की तिथि ३०८० वि० पू० या ३१३८ ई० पू० थी। सर्वप्रथम सर्वमान्य भारतीयमत का दिग्दर्शन करेंगे, तदनन्तर इस मत में जो बाधायें उपस्थित हुई, उनका निराकरण करेंगे।

इतिहासपुराणों में निःशंकरूप या निर्विवादरूप से उल्लिखित है महाभारत युद्ध कलिद्वापर की सन्धि में हुआ, यही मत गर्गादि ज्योतिर्विदों का था, इनके उद्धरण व प्रमाण पूर्व लिखे आ चुके हैं। अब शिलालेखों पर उद्धृत प्रमाणों पर विचार-विमर्श करेंगे।

एक प्राचीन ताम्रपत्र मे प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त से पुष्यवर्मा राजा तक ३००० वर्ष व्यतीत होने का उल्लेख है—

> भगदत्तः ख्यातोजयं विजयं युधियः समाह्वयत।
> तस्यात्मजः क्षतारेर्वज्रदत्तनामाभूत्।
> वश्येषु तस्य नृपतिषु वर्षसहस्रत्रय पदमवाप्य।
> यातेषु देवभूयं क्षितीश्वरः पुष्यवर्माभूत।

(एपीग्राफिक इण्डिया २१९१३-१४ पृ० ६५)

सर्वप्रसिद्ध शिलालेख चालुक्यमहाराज पुलकेशी द्वितीय का है, जिसने हर्ष को परास्त किया था इसमे कलिसम्वत् और भारतयुद्ध का उल्लेख—

> त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः।
> सप्ताब्दशतयुक्तेषु शतेष्वब्देषु पञ्चसु
> पञ्चाशत्सु कलौ काले ....॥

तदनुसार, पुलकेशीद्वितीयपर्यन्त कलिसम्वत् के ३६३७ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से शिलालेखों मे यही कलिसम्वत् की

गणना लिखती है, जिसके अनुसार कलिसम्वत् और भारतयुद्ध क्रमशः ३०४४ वि० पू० और ३०८० वि० पू० हुये।

अतः सर्वसम्मति से भारतयुद्ध ३०८० वि० पू० हुआ, केवल कल्हण ने भ्रमवश इस तिथि पर शंका की है—

> भारतं द्वापरान्तेऽभूद्वार्तयेति विमोहिताः।
> केचिदेतां मृषा तेषां कालसंख्यां प्रचक्रिरे ॥[1]

कल्हण का मन्तव्य है कि आख्यानों में, जो भारतयुद्ध द्वापरान्त में उल्लिखित है, वह मृषा और भ्रान्ति पर आधारित है। वस्तुतः भ्रान्ति कल्हण को ही हुई है जो भारतयुद्ध को कलि के ६५३ वर्ष व्यतीत होने पर हुआ मानता था—

> शतेषु षट्सु सार्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले।
> *कलेर्गतेषु वर्षाणामभूवन् कुरुपाण्डवाः* ॥[2]

कल्हण के इस भ्रम का कारण *कश्मीरी ज्योतिषी वराहमिहिर द्वारा* निर्दिष्ट एक शकसम्वत् था—

> आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
> षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥ (बृ० सं० १३।३)

इस शकसम्वत् का प्रारम्भ युधिष्ठिर शक (सम्वत्) के २५२६ वर्ष पश्चात् होता था अर्थात् विक्रम से ५५४ वर्ष पूर्व।

प्राचीन भारत में 'शकशब्द' 'सम्वत्' का पर्याय हो गया था, क्योंकि जब-जब भी किसी शकराज्य का उत्थान और पतन होता था तब-तब ही एक नवीन 'शकसम्वत्' की स्थापना होती थी। कम से कम दो शकारि विक्रम (शूद्रक विक्रम तथा चन्द्रगुप्त विक्रम) उत्तरकाल में प्रसिद्ध हुये, इनसे पूर्व भी अनेक शकारि और शकराज हो चुके थे. वराहमिहिर स्वयं शकारि विक्रमादित्य शूद्रक प्रथम का सभारत्न था, अतः वह विक्रमादित्य के समकालीन था, वह शालिवाहन शक का उल्लेख कैसे कर सकता था। वराहमिहिर की विक्रमपूर्व-विद्यमानता का एक और प्रमाण है कि विक्रम ने दिल्ली के निकट मिहिरावली नाम की वेधशाला वराहमिहिर ज्योतिषी के नाम से बनवाई थी, जिसे आजकल महरौली कहते हैं। महरौली में विष्णुध्वज (कुतुबमीनार) भी विक्रम ने

---

१. राजतरंगिणी (१।४९),
२. वही (१।५१),

निर्मित कराई थी और लौहस्तम्भ पर चन्द्रगुप्तविक्रमादित्य-द्वितीय की यशकीर्ति उत्कीर्ण मिलती है। इन सब प्रमाणों से वराहमिहिर का समय निश्चित है, अतः उसने वर्तमान शकसम्वत् का उल्लेख नहीं किया जिससे कल्हण को महती भ्रान्ति हुई। हमने अन्यत्र न्यूनतम चार 'शकसम्वतों' का निर्देश किया है, वराहमिहिर निर्दिष्ट शकसम्वत् वि० पू० ५५४ में, सम्भवतः अम्लाट शकराज ने चलाया था।

इसी कल्हण की भ्रान्ति के आधार पर श्री पी० सी० सेन ने भारतयुद्ध की तिथि २५०० ई० पू० मानी है।

जिन भ्रान्तियों के कारण भारतयुद्ध की तिथि १४५० ई० पू० मानी जाती है, उनमें सर्वप्रधान है चन्द्रगुप्त मौर्य की सिकन्दर यूनानी (३२७ ई० पू०) की समकालीनता की मनघड़न्त कहानी। इस कहानी को घड़नेवाले थे, भारत में सर्वप्रथम अंग्रेज संस्कृत अध्येता विलियम जोन्स। विलियमजोन्सकृत यह मनघड़न्त कहानी, आज इतनी सुदृढ़ मान्यता प्राप्त कर चुकी है, जितना वैज्ञानिक जगत् में डार्विन का विकासवाद। इन दोनों कहानियों के विरुद्ध सोचना भी आज अबुद्धिमानीपूर्ण एवं अवैज्ञानिक आयाम माना जायेगा। सामान्यजन इन दोनों मान्यताओं के विरुद्ध सोचने का कष्ट ही नहीं उठाते।

परन्तु, मध्यकालीन मुस्लिम इतिहासकार भारत पर सिकन्दर का आक्रमण, आन्ध्रसातवाहन राजा हाल के समय में हुआ मानते थे। इसका उल्लेख, स्वयं, एक पाश्चात्य विद्वान इलियट ने भारत के इतिहास मे किया है—सिन्ध का इतिहासकार मुनयलुक तवारीख से उद्धरण संग्रह करते हुए इलियट ने लिखा है—"ऐसा कहा जाता है कि हाल संजवार का वंशज था, जो जन्दरत (जयद्रथ) का पुत्र था और इसकी माता राजा दहरात (धृतराष्ट्र) की पुत्री थी" (पृ० ७४), "फिर हिन्दुओं का यह देश राजा कफन्द ने अपने बाहुबल से जीत लिया···कफन्द हिन्दू नही था।···वह यूनानी एलैकजेन्डर का समकालीन था। उसने स्वप्न में कुछ दृश्य देखे और ब्राह्मण से उसका अर्थ पूछा। उसने एलैकजेन्डर से शान्ति की इच्छा की थी और इस निमित्त उसको अपनी पुत्री, एक निपुण वैद्य, एक दार्शनिक और एक कांच का पात्र भेंट-स्वरूप भेजे। सामोद ने हिन्दुस्तान के राजा हाल से सहायता मांगी (पृ० ७५), इस घटना के पश्चात् एलैकजेन्डर भारत आया।" (पृ० ७६)

"कफन्द के बाद राजा अयन्द हुआ, फिर रासल। रासल के पुत्र रब्बाल और बरकमारीस (विक्रमादित्य) थे।"[1]

---

1. इलियटकृत भारत का इतिहास, भाग पृ० ७६ (अनु० डा० मथुरालाल शर्मा प्रकाशक—शिवलाल अग्रवाल आगरा (१९७३),

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि सिकन्दर का भारत पर आक्रमण राजा हाल के समय में हुआ था और इस प्रमाण से आन्ध्रसातवाहनवंश का समय भी निश्चित हो जाता है तथा पुराणप्रमाण से आन्ध्रसातवाहनराज्य का उदय २४०० कलिसम्वत् या ६४४ वि० पू० या ७०१ ई० पू० हुआ, क्योंकि प्राचीन पुराणपाठ के अनुसार शन्तनुपिता प्रतीप से आन्ध्रपूर्वपर्यन्त एक सप्तर्षिचक्र या २७०० वर्ष अथवा परीक्षित पाण्डव से आन्ध्रोदयपर्यन्त २४०० वर्ष हुये—

सप्तर्षयस्तदा प्राहुः प्रतीपे राज्ञि वै शतम् ।
सप्तविंशैः शतैर्भाव्या आन्ध्राणान्ते[1]ऽन्वयाः पुनः ।

(वायु० ९९।४१८)

सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले परीक्षिते शतम् ।
आन्ध्राणान्ते सचतुर्विंशे भविष्यन्ति शतं समाः ।।

(मत्स्यपु० २७३।४४)

आन्ध्रवंश के राजाओं की सामान्य संज्ञा 'सातवाहन' या 'हाल' थी, आन्ध्रवंश के ३० राजाओं ने ४५६ वर्ष राज्य किया—

इत्येते वै नृपास्त्रिंशदान्ध्रा भोक्ष्यन्ति वै महीम् ।
समाः शतानि चत्वारि पंचाशत्षट् तथैव च ।।

(ब्रह्माण्ड २।३।७४-१७०)

मौर्यराज्य की स्थापना आन्ध्रसातवाहनों से आठ सौ वर्ष पूर्व कलिसंवत १६०१ में अथवा १४४४ वि० पू० हुई थी। चन्द्रगुप्तमौर्य और सिकन्दर की समकालीनता पूर्णतः मनघड़न्त कहानी है, चन्द्रगुप्तमौर्य, सिकन्दर से लगभग १२०० वर्ष पूर्व हुआ, अतः सिकन्दर के आक्रमण के समय (२७० वि० पू०) भारत पर गौतमीपुत्र सातवाहन या पुलोमावि वसिष्ठीपुत्र सातवाहन (शातकर्णि =हाल) का शासन था, जैसाकि इलियट उद्धृत मुस्लिम इतिहासकार के कथन से पुष्टि होती है।

अब हम विलियम जोन्स रचित कहानी[2] का संक्षेप में खण्डन करते हैं।

---

१. आंध्राणान्ते का पदविच्छेद है—आन्ध्राणाम् + ते = आन्ध्राणान्ते

२. अपनी तथाकथित स्थापना मे विलियमजोन्स स्वयं एक महान् कठिनाई देखता था, कि मैगस्थनीज ने लिखा है कि यमुना नदी पालिबोथाई (= पाटलिपुत्र ? = शूद्र = परिभद्रा नगरी) मे होकर बहती थी—The river Jamones flows through the Palibothri into Gangas between Methora and Carisobora. "अर्थात् यमुना नदी पालिबोथाई मे होकर बहती है, जिसके एक ओर मथुरा और दूसरी ओर कैरिसोबारा (कृष्णपुर=शूरपुर=बटेश्वर) बसे हुये थे।" (Curtius para XIII), मैगस्थनीज का यही कथन जोन्स के कथन पर पानी फेर देता है,

सर्वप्रथम पं० भगवद्दत्त ने सिकन्दर और चन्द्रगुप्त मौर्य की समकालीनता का खण्डन, भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, भाग १, (पृ० २४८ से २६७ तक) किया। उसका सार इस प्रकार है—(१) मैगस्थनीज ने लिखा है कि पालिबोथ्रा को हरकुलीज ने बसाया है, (२) प्रसई (पर्शु?) जाति सिन्धु तट पर बसी हुई है। प्रसइयों का राजा सैण्ड्रोकोट्स है। (३) पालिबोथ्रा एर्नबोअस और गंगा के तट पर बसा हुआ है। ध्यान रखना चाहिए कि मैगस्थनीज ने सोन और एर्नबोअस नदियों को पृथक्-पृथक् लिखा है। (४) पालिबोथ्रा के आगे उत्तर में मलेयुस पर्वत है, (५) टामेली के अनुसार प्रसई जनपद के निकट सौरबतिस (शरावती या सौरवस्त) प्रदेश है। (६) मैगस्थनीज ने सूचित किया है कि सैण्ड्रोकोट्स सिन्धु (Indus) देश का सबसे बड़ा राजा था, परन्तु पोरस सैण्ड्रोकोटस् से भी बड़ा राजा था। (७) सैण्ड्रोकोट्स के राज्य के पार्श्व में गन्धरितन (Gandarition) बसे हुये थे। (८) सैण्ड्रोकोट्स के पुत्र का नाम एमित्रोचेट्स था। (९) मैगस्थनीज ने लिखा है कि पालिबोथ्रा के नाम पर वहाँ के राजा को भी पालिबोथ्रा कहते थे। (१०) गंगा के निकट का समस्त प्रदेश पालिबोथ्रा कहा जाता था।

उपर्युक्त दश कथनों मे से एक भी चन्द्रगुप्त मौर्य और पाटलिपुत्र पर नहीं घटता।

प्रथम मैगस्थनीज के अनुसार पालिबोथ्रा को हरकुलीज ने बसाया, परन्तु, भारतीयग्रन्थ एकमत से कहते हैं कि पाटलिपुत्र को शिशुनागवंशीय राजा उदायी ने बसाया।[1] जो चन्द्रगुप्त मौर्य के २४० वर्ष पूर्व हुआ था। मैगस्थनीज के अनुसार हरकुलीज ने सैण्ड्रोकोट्स से १३८ पीढ़ी पूर्व पालिबोथ्रा बसाया। अतः मैगस्थनीज का कथन पाटलिपुत्र पर नहीं घटता।

द्वितीय आपत्ति, मैगस्थनीज ने लिखा है कि प्रसई की राजधानी पालिबोथ्रा है। जोन्स आदि ने 'प्रसई' को 'प्राच्य' का अपभ्रंश मानकर संतोष कर लिया। परन्तु, मैगस्थनीज ने यह भी लिखा है कि सैण्ड्रोकोट्स सिन्धुप्रदेश का राजा था।[2] सिन्धु और प्राच्य दोनों ही विपरीत दिशा में हैं। सिन्धु उदीच्य या पश्चिम

---

१. ततः कलियुगे राजा शिशुनागात्मजो बली।
उदायी नाम धर्मात्मा पृथिव्यां प्रथितोगुणेः।
गंगातीरे स राजर्षिः दक्षिणेच महानदे।
स्थापयेन्नगरं रम्यं पुष्पारामजनाकुलम्।
तेषां पुष्पपुरं रम्यं नगरं पाटलीसुतम्॥ (युगपुराण)

२. Sandrocotus was the King of Indians around the Indus. "Indus Skirts fronotiers of the Prasii"

में है और मगध (पाटलिपुत्र) पूर्व (प्राच्य) में है । क्या मैगस्थनीज प्रसिद्ध 'मगध' जनपद का नाम नहीं लिख सकता था और क्या पाटलिपुत्र समस्त प्राच्यजनपदों की राजधानी थी ? क्या मैगस्थनीज संस्कृतव्याकरण का व्यापक एवं गहन ज्ञान प्राप्त किये बिना ऐसे सूक्ष्म पारिभाषिक शब्द (प्राच्य) का प्रयोग देश के लिए करता । पुनः मगध के निकट कौन सा सिन्धुतट है ? वस्तुतः मैगस्थनीज ने न तो प्राच्य, न मगध, न पाटलिपुत्र का कोई उल्लेख किया है ।

वास्तव में, मैगस्थनीज वर्णित प्रसई जाति, जिस सिन्धुनदी के तट पर बसी हुई थी, वह मध्यदेश में थी, पं० भगवद्दत्त ने इस सिन्धु को महाभारत के प्रमाण से खोज निकाला है—

वेदिवत्साः करुषाश्च भोजाः सिन्धुपुलिन्दकाः । (भीष्मपर्व)

मध्यदेश की सिन्ध को आज भी 'कालीसिन्ध' कहते हैं, इसी कालीसिन्ध के तट पर पालिबोथ्रा बसा हुआ था । अतः मध्यदेश के पालिबोथ्रा को पाटलिपुत्र मानना महती भ्रान्ति है ।

तृतीय, जोन्स ने एर्नबोअस को शोण का पर्याय 'हिरण्यबाहु' मानकर महती भ्रान्ति उत्पन्न कर दी । वस्तुतः मैगस्थनीज ने शोण और एर्नबोअस को पृथक्-पृथक् नदियाँ लिखा है । अपनी भ्रान्ति को सत्य मानकर जोन्स, मैगस्थनीज पर दोषारोपण करता है कि उसने अज्ञान या अध्यान के कारण उसका पृथक्-पृथक् नाम लिखा है । वह असंभव कल्पना है कि अपने निकटवर्ती राजधानी की एक नदी के, कोई राजदूत भ्रान्ति से दो नाम लिखे । जोन्स से पूर्व अन्विल्ल नाम के अंग्रेज लेखक ने एर्नबोअस की पहिचान 'यमुना' से की थी, पं० भगवद्दत्त ने एर्नबोअस को यमुना का पर्याय 'अरुणवहा' माना है । कुछ भी हो, शोण और एर्नबोअस पृथक्-पृथक् नदियाँ थी । चतुर्थ, मैगस्थनीज ने पालिबोथ्रा से आगे मलेउस पर्वत बताया है, इसको लोग मल्ल (वृजि) जनपद का पार्श्वनाथ (शिखरजी) पर्वत मानते हैं, पार्श्वनाथ का नाम मल्लपर्वत कभी नहीं रहा । यह मल्लपर्वत, शाल्व, युगन्धर, कठापि जनपदों का निकटवर्ती मालवजनपद का पर्वत था, जहाँ पर सिकन्दर को मालव सैनिक का प्राणघातक तीर लगा था ।

पंचम, मैगस्थनीज द्वारा पोरस को सैण्ड्रोकोट्स से बड़ा राजा बताना भी चन्द्रगुप्त मौर्य पर नहीं घटित होता क्योंकि मौर्य तो भारतसम्राट था । पोरस तो पंजाब के लघुभूभाग का नरेश था ।

षष्ठ, चन्द्रगुप्तमौर्य का अमित्रकेतु (अमित्रोकेट्स) नाम का कोई उत्तराधिकारी नहीं था, उसके पुत्र का प्रसिद्ध नाम बिन्दुसार था, फिर ऐसे प्रसिद्ध नाम को छोड़कर 'एमित्रोकेट्स' नाम लेने की क्या आवश्यकता थी ।

सैण्ड्रोकोट्स के पार्श्वस्थ क्षत्रिय 'गन्दरितल' निश्चय ही युगन्धर क्षत्रिय थे, जो शाल्वों एक अवयव माने जाते थे—

उदुम्बरास्तिलखला मद्रकारा युगन्धरा: ।

भुलिंगा: शरदण्डाश्च साल्वावयसंज्ञिता: ॥ (काशिका ४।१।१७३)

इन जनपदों के निकट मल्लजनपद था, जिसका उल्लेख महाभारत (विराट-पर्व ११६) में है—"दशार्णा वनराष्ट्रं च मल्ला: शाल्वा युगंधरा: ।"

इन्हीं शाल्वावयव युगन्धरों के निकट पारिभद्र जनपद था, जिसका राजा सैण्ड्रोकोट्स था।[1] मैगस्थनीज ने स्पष्ट लिखा है, कि पालिबोथ्रा के राजा को पालिबोथ्रा कहते हैं, अत: पालिबोथ्रा केवल नगर का नाम नही था, वह जन-पद भी था। प्राचीन भारत में जनपद के नाम से राजा को केकय, शिवि, अंग, बंग, कलिंग आदि कहा जाता था अत: पालिबोथ्रा पाटलिपुत्र नगर नहीं हो सकता वह जनपद था पारिभद्र और वहाँ की राजधानी थी पारिभद्रा, अत: मैग-स्थनीज को देश नगर और राजा—तीनों के नाम समान दिखाई पड़े पालिबोथ्रा मे 'बोथ्र' भाग 'पुत्र' का अपभ्रंश नही है, वह 'भद्र' का अपभ्रंश था। महा-भारत युद्धपर्वों में पारिभद्रक्षत्रियों का बहुधा संकेत मिलता है जो पांचालों के साथी थे।[2] संभवत: पारिभद्र और भद्रकार (शाल्वावयव) एक ही थे। नगर के नाम से किसी राजा को सम्बोधित नही किया जाता था, जैसे मथुरा, अयोध्या, कौशाम्बी, राजगृह के नाम से राजा को वैसा नही कहते, अत: पाट-लिपुत्र और पालिबोथ्रा एक नहीं थे। अत: मैगस्थनीज ने यथार्थ ही लिखा है कि पारिभद्रा (पालिबोथ्रा) के राजा को 'पारिभद्र' (पालिबोथ्रा) कहा जाता था।

मैगस्थनीज यदि मगध की राजधानी पाटलिपुत्र में रहता और यदि चन्द्रगुप्त मौर्य का समकालिक होता तो वह मगध का नाम अवश्य लेता। नन्द, मौर्य के साथ जगद्विख्यात राजनीतिज्ञ चाणक्य या कौटल्य का उल्लेख करता,

---

१. सैंड्रोकोट्स का शुद्ध संस्कृत रूप—'चन्द्रकेतु' है न कि चन्द्रगुप्त, शूद्रक के समकालीन एक चकोरनाथ 'चन्द्रकेतु' का उल्लेख हर्षचरित (षष्ठ उच्छ्वास) मे मिलता है—"ससचिवमेवशूरीचकार चकोरनाथं चन्द्रकेतुं जीवितात् ॥सम्भव है यही 'चन्द्रकेतु' सिकन्दर का समकालिक हो। शूद्रक एक वंशनाम था।

२. धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यस्तेषां गोप्ता महारथ: ।
सहित: पृतनाशूरैरथमुख्यै: प्रभद्रकै: ॥ (भीष्मपर्व १९)

परन्तु उसने इनमें से किसी का नाममात्र भी नहीं लिया, अतः मैगस्थनीज के नाम पर सिकन्दर और चन्द्रगुप्त मौर्य की समकालीनता की कहानी पूर्णतः कल्पित हो जाती है। इस कहानी के टूटने पर महाभारतयुद्धतिथि और कलिसंवत् की अमान्यता की एक प्रमुख कठिनाई दूर हो गई। अर्थात् अब कलिसंवत् और महाभारत युद्ध की तिथि क्रमशः ३०४४ वि० पू० ३०८० वि० पू० सिद्ध हो जाती है।

बुद्धनिर्वाण की सिंहलीतिथि—भ्रामक मान्यता

पाश्चात्य लेखक भारतीय इतिहास की तिथियों को अर्वाचीनतम सिद्ध करना चाहते थे, अतः जिस भी कल्पना या किसी विदेशीग्रंथ से वह अपनी मान्यता को पुष्ट कर सके वही उन्होंने किया। पाश्चात्यों ने बुद्धनिर्वाण की उस अर्वाचीनतमतिथि को माना जो श्रीलंका या सिंहलीपरम्परा में थी, यद्यपि सिंहलीपरम्परा में भी बुद्धनिर्वाण की तिथि ६८६ ई० पू० मानी जाती थी, परन्तु पाश्चात्यों ने अपनी मनमानी काल्पनिक गणना, विशेषतः जोन्स की उपर्युक्त स्थापना (सिकन्दर और चन्द्रगुप्त मौर्य की समकालीनता के परिप्रेक्ष्य में) इस तिथि को और घटाकर ४८७ ई० पू० या ४६४ ई० पू० कर दिया।

सत्य की विस्मृति के कारण प्राचीन बौद्धदेश बुद्धनिर्वाण की विभिन्न तिथियाँ मानते थे। चीनी यात्री ह्यूनसांग ने अपने समय में मानी जाने वाली बुद्धनिर्वाण की विभिन्न तिथियों का उल्लेख किया है, तदनुसार उसके समय (सप्तमशती) मे बुद्ध को निर्वाण प्राप्त हुये १२०० या १३०० या १५०० वर्ष व्यतीत हुये माने जाते थे, ऐसे चीनी विद्वानों के विभिन्न मत थे, अतः चीन में ई० पू० ७००, ८०० या १००० वर्ष में बुद्ध निर्वाण माना जाता था।[1] फाहियान ने लिखा है कि हानदेश में चाउवंशी राजा पिंग के राज्यकाल से १४९७ वर्ष पूर्व अर्थात् १०९० ई० पू० बुद्धनिर्वाण हुआ।[2] जोन्स ने भी तिब्बती वर्णनों के आधार पर बुद्धनिर्वाणकाल १०२७ ई० पू० माना था।[3] राजतरंगिणी में बुद्धनिर्वाण १३३४ ई० पू० माना है। श्री ए० वी० त्यागराज ने 'इण्डियन आर्किटेक्चर' पुस्तक में कुछ वर्ष पूर्व बीकापर एथेन्स में प्राप्त शिलालेख में एक भारतीय भिक्षु, जो १००० ई० पू० वहाँ गया था,

१. ह्यूनसांग की जीवनी (बीलकृत अनुवाद) पृ० ६८;
२. फाह्यान का यात्राविवरण (हिन्दी पृ० १६);
३. जोन्सग्रंथावली, भाग ४ पृ० १७;

उसकी उपलब्धि मिली है, तदनुसार उन्होंने बुद्ध का समय १७०० ई० पू० माना है। यही मान्यता पुराणों की गणना के अनुकूल है, पुराणों के अनुसार बार्हद्रथ-राजाओं ने १००० वर्ष तक राज्य किया, प्रद्योतों ने १३८ वर्ष, शिशुनागवंशीय षष्ठनरेश अजातशत्रु के ८वें वर्ष तक १७२ वर्षों का योग १३१० वर्ष हुआ। बुद्ध, कल्कि से लगभग २०० वर्ष पश्चात् हुये, कल्कि का समय विशाखयूप के राज्यकाल ११२० कलिसंवत् में था तो बुद्ध का निर्वाणकाल १३१० कलि संवत् मे हुआ, बुद्ध का निर्वाण ८० वर्ष की आयु मे हुआ, अतः उनका जन्म कल्कि से १२० वर्ष पश्चात् हुआ, स्थूलरूप से बुद्ध और कल्कि में एक शताब्दी का ही अन्तर था।

पुरातनजैनवाङ्मय में महावीर स्वामी का निर्वाणकाल—इसमें कोई संदेह नहीं कि महावीर और बुद्ध समकालिक थे, परन्तु वर्तमान वीरनिर्वाण-सम्वत् की गणना अत्यन्त अर्वाचीनकाल मे की गई है, यद्यपि वीरसंवत् अत्यन्त पुरातन था, वीर संवत् ८४ का एक शिलालेख प्राप्त हो चुका है। यथार्थ मे प्राचीनजैनवाङ्मय अनेक बार आक्रमणादि मे नष्ट हो चुका था, वाङ्मय और परम्परा के अभाव में जैनाचार्यों ने महावीरनिर्वाण की एक अर्वाचीन तिथि मान ली। वस्तुतः एक प्राचीन श्वेताम्बरग्रन्थ तित्थोगाली में वीरनिर्वाण और (जैन) कल्कि का अन्तर १६२८ वर्ष माना है, यह कल्कि (सम्भवतः यशोधर्मा) गुप्तराज्यारम्भ के २५० वर्ष पश्चात् हुआ, इस गणना से महावीर निर्वाण १६७८ वि० पू० हुआ। यह तिथि पुराणगणना के अनुकूल मत है, और तथापि इसमें स्वल्प त्रुटि है, वास्तव में महावीर, बुद्ध से कुछ वर्ष पूर्व ही हुए थे, अतः उनका निर्वाणकाल १७०० वि० पू० से १८०० वि० पू० के मध्य में था।

अशोक शिलालेखों में तथाकथित यवनराजा या यवनराज्य ?—अशोक के शिलालेखों का गम्भीर नहीं, सामान्य अध्येता भी तुरन्त भाँप लेगा कि उनमें किसी राजा का नामोल्लेख नहीं, राज्यों का नाम है—एक दो शिलालेखों के मूल पाठ द्रष्टव्य है—(१) "स्वमपि प्रचतेषु तथा चोडा पाडा सतियपुतो केतलपुतो आ तंबपंणी अतियोक योनराज (नि) ये वा पि तस अतियोकस सामीपं...।" (गिरनारलेख) (२) स योनकाबोज गधरन रठिकपितिनिकन ये (पेशावर, खरोष्ठी लेख) (३) योजनशतेषु य च अतियोक नम योनरज परं च तेन अतियोके न चतुरे रजनि तुरमये नम अंतकिनि नाम मक नम अलिकसुन्दरो नम नि च चोड पंड...।" (शाहबाजगढ़ी—रामलपिंडी पाठ।

पाश्चात्य लेखकों ने स्वयं मूर्ख बनकर सभी को मूर्ख बनाया, स्पष्टतः शिलालेखों में उल्लिखित चोड (चोल), पाडा (पाण्ड्य), सतियपुत (सत्यपुत्र) केतलपुत (केरलपुत्र), तंबपंणी (ताम्रपर्णी = सिंहल), काम्बोज, गान्धार, राष्ट्रिक, मग आदि जब राज्यों या देशों के नाम हैं, तब—तुरमय, अंतकिन, योन और अलिकसुन्दर आदि राजाओं के नाम कैसे हो गये, स्पष्ट ही इनको राजा मानना अतिभ्रम या मूढता या षड्यंत्र ही है। 'योन' किसी राजा का नाम नहीं हो सकता, वह राज्य का ही नाम है, अतः स्वयंसिद्ध है—तुरमय, मग अंतकिन और अलिकसुन्दर भी निश्चय ही राज्यों के नाम थे। इनके राज्य होने का एक, और प्रमाण शिलालेख मे ही है—'योजनशतादि' दूरी का उल्लेख, यह उल्लेख स्थान या देश के साथ ही सार्थक है, राजा के साथ निरर्थक। अतः अशोक के धर्मलेखों मे जब किसी राजा का नामोल्लेख है ही नहीं, तब उनको अन्तियोख द्वितीय टालेमी, एन्टिगोनस, मगस, एलेक्जेण्डर नाम के राजा मानना घोर अज्ञान एवं हास्यास्पद परिणामतः अनैतिहासिक कल्पना है।

शिलालेख के पाठ मे स्पष्ट 'राजनि' या 'रजनि' पठित है, जो निश्चय ही राज्ये (सप्तमीप्रयोग) है न कि राज्ञि, शिलालेखपाठ में 'तंबपंणी राज्ञि' पाठ सार्थक बनता ही नही।

अशोक के शिलालेखो मे उल्लिखित पंच यवनराज्य अत्यन्त पुरातन थे, इनका वर्णन रामायण, महाभारत और पुराणो मे मिलता है—सम्राट सगर के समय मे उक्त पंचयवनराज्यों के राजाओ का सगर में युद्ध हुआ था, हैहय-नरेश के पक्ष मे—

> यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्लवाः शकाः।
> एतेह्यपि गणाः पंच हैहयार्थे पराक्रमन्॥
>
> (हरि० १।१३।१४)

ये पच यवनराज्य भारत की पश्चिमी सीमान्त मे अवस्थित थे न कि मिश्रादि में। अतः अशोक के शिलालेखों में किसी यूनानी राजा का उल्लेख नहीं है। भारतीयगणना से अशोक का राज्याभिषेक १३६५ वि० पू० हुआ था।

खारवेल के हाथीगुफालेख से भ्रम

खारवेल के शिलालेख में उल्लिखित यवनराज को डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल ने 'डिमित' पाठ पढ़कर 'डेमेट्रियस' यूनानी राजा बना दिया, इसमें उल्लिखित बृहस्पतिमित्र को पुष्यमित्र शुंग मानकर, बड़ी भारी भ्रान्ति उत्पन्न

कर ली गई कि डेमिट्रियस या मेनान्डर पुष्यमित्र शुंग के समकालिक था और उनका समय १८७ ई० पू० माना गया। शिलालेखों को लिपिविशेषज्ञ (?) अपने मनमाने ढंग से पढ़कर अनेक मनमाने शब्द और अर्थ बना लेते हैं, अतः उनसे वैसे भी निश्चित परिणाम नहीं निकाले जा सकते। फिर भी, यदि हाथी गुफा शिलालेख शुद्धरूप में पढ़ा गया है, यह मान भी लिया जाय तो उसमें उल्लिखित 'यवनराजा' का न तो कोई नाम है और बृहस्पतिमित्र को पुष्यमित्र शुंग मानना कोरी कल्पना है, यदि वह बृहस्पतिमित्र शुंग होता तो उसका 'शुंग' नाम से ही उल्लेख होता जैसा कि शिलालेख मे 'शातकर्णि' का केवल प्रसिद्ध वंशनाम उल्लिखित है, उसका नाम नहीं लिखा।[1]

अतः उक्त शिलालेख के आधार पर शुंगकाल का निर्णय नही किया जा सकता, जबकि स्वयं खारवेल का समय निश्चित नहीं है, हाँ शिलालेख मे 'शातकर्णि' के उल्लेख से यह निश्चित हो सकता है खारवेल किसी शातवाहन राजा के समकालीन था, शुगो के नही। शुगो और सातवाहनों के मध्य अनेक शताब्दियो का अन्तर था—कम से कम चार शताब्दी का, अत शुगो और शातकर्णियो की समकालीनता का प्रश्न ही नही उठता, पुराणलेख इसी पक्ष मे है।

युगपुराण में धर्ममीत तथाकथित डेमेट्रियस का उल्लेख—भ्रान्तधारणा— काल्पनिक गणनाओ के आधार पर डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने 'युगपुराण' मे 'धर्ममीत' के रूप मे यूनानी 'डमेट्रियस' (Demetrius) का उल्लेख मानकर, उसे शुगो के समकालीन बना दिया। जिस प्रकार हाथीगुफा शिलालेख मे यवनराज के साथ 'दिमित' पाठ बनाकर अपनी कल्पना पर रंग चढ़ाया, उसी प्रकार 'धर्ममीत' शब्द को जायसवाल ने ग्रीक डेमेट्रियस माना। डेमेट्रियस का शुद्ध संस्कृत दत्तामित्र' होता है।

युगपुराण में 'डेमेट्रियस' का उल्लेख कोरी कल्पना, वरन् निरर्थक भी है, इसके निम्न हेतु हैं—

श्री डी० आर० मनकड ने एक नवीन प्राप्त गार्गीसंहिता की हस्तलिखित प्रति के आधार पर, 'युगपुराण' का जो पाठ प्रकाशित किया है वह इस प्रकार है—

"धर्मभीततमा वृद्धा जनं भोक्ष्यन्ति निर्भया:।" (पंक्ति १११)

---

१. हाथीगुफा शिलालेख के कुछ अंश प्रमाणार्थ द्रष्टव्य हैं—"दुतिये च वसे अचितयिता सातकंनि पछिमदिसं...अघयातो यवनराजं...यच्छति...मागधं च राजानं बहसतिमितं पादे वंदापयति।"

इसका सरलार्थ है 'धर्म' से भयभीत वृद्धपुरुष प्रजाजनों को भय से मुक्त करेंगे।" अतः युगपुराण में किसी भी यवन अथवा यूनानी राजा का उल्लेख नहीं है।

गार्गीसंहिता की विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों में उपर्युक्त पंक्ति के चार पाठ मिले हैं—धर्मभीततया, धर्मभीततमा, धर्ममीयतमा और धर्ममीततमा। इनमें 'धर्मभीततमा' पाठ शुद्ध और सार्थक है, शेष अशुद्ध एवं निरर्थक हैं। क्योंकि डा० जायसवाल अपने द्वारा निर्मित 'धर्ममीयतमा' पाठ में 'डेमेट्रियस'[1] और उसके ज्येष्ठ भ्राता 'तमा' का उल्लेख मानते थे, परन्तु उसका ज्येष्ठ भ्राता 'तमा' कौन था, यह डा० जायसवाल स्वयं नहीं बता सके। अतः धर्म-मीत (शुद्ध धर्मभीत) को डेमेट्रियस मानना कोरी कल्पनामात्र ही है। द्वितीय, यदि उक्त श्लोक में किसी राजा का नामोल्लेख होता तो शुद्ध संस्कृत, 'धर्ममित्र' होना चाहिए, क्योंकि संस्कृत में 'धर्ममीत' निरर्थक एवं अशुद्ध शब्द है। तृतीय डा० जायसवाल का अनुमान था कि भारतीयों की दृष्टि मे डेमेट्रियस' धार्मिक राजा था, अतः उसे 'धर्ममीत' संज्ञा प्रदान की गई। भारतीयवाङ्मय में, विशेषतः पुराणों में यवनों या म्लेच्छों को कहीं भी धार्मिक नहीं माना गया[2] अतः डेमेट्रियस को धर्ममीत' कहा गया होगा, यह भ्रष्ट कल्पना है। चतुर्थ, यदि डेमेट्रियस को भारतीय 'दत्तामित्र' नाम से सम्बोधित करते थे तो, उसके द्वितीय नाम 'धर्ममीत' की क्या आवश्यकता थी।

अतः डा० जायसवाल की युगपुराण में उल्लिखित डेमेट्रियससंम्बन्धी-कल्पनायें, निरर्थक, भ्रष्ट एवं इतिहासविरुद्ध हैं, जिसका इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं। 'यवन' शब्द का इतिहास अन्यत्र लिखा जायेगा।

---

१. महाभारत आदिपर्व में दत्तामित्र सौवीर या यवन का उल्लेख है जिसको अर्जुन ने जीता था, पाणीनीयगणपाठ (अष्टाध्यायी ४।२।१६) में दत्तामित्र और उसकी बसाई नगरी दत्तामित्रायणी का उल्लेख है, निश्चय ही यूनानी दत्तामित्र को डेमेट्रियस कहते थे, यह नाम अनेक व्यक्तियों ने रखा।

२. यवनाश्च सुविक्रान्ताः प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम्।
अनार्याश्चाप्यधर्माश्च भविष्यन्ति नराधमाः। (युगपुराण, पं० ६५ व ६६)
व्युच्छेदात्तस्य धर्मस्य निर्यायोपपद्यते।
ततो म्लेच्छा भवन्त्येते निर्घृणा धर्मवर्जिताः (महाभारत, अनु० १४६।२४)
अल्पप्रसादा ह्यनृता महाक्रोधा ह्यधार्मिकाः भविष्यन्तीह यवना···॥
(ब्रह्माण्ड पु० २।३१।७४।२००)

परीक्षित् से नन्दपर्यन्तकाल

पुराणों में मागधराजवंशों का क्रमिकवर्णन हुआ है, उनपर क्रमभंग का आरोप लगाना घोर धृष्टता है। आधुनिक लेखकों ने मागध बालकप्रद्योतवंश को अवन्ति का चण्डप्रद्योत बनाकर, मनमानी करके, पुराणगणना में अन्तर डालने की धृष्टता की हैं। डा० काशीप्रसाद जायसवाल, पार्जीटर, रैप्सन और जयचन्द्र विद्यालंकर ने ऐसी ही कल्पना की है। विद्यालंकार जी लिखते हैं—"पार्जीटर ने भी इस स्पष्ट गलती को सुधारकर प्रद्योतों के वृत्तान्त को 'पुराणपाठ' मे मगधवृत्तान्त से अलग रख दिया है। इसे सुलझाने पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती, यहां तक कि विषय निर्विवाद है।[१]" रैप्सन ने लिखा है—"पुराणों का मागध प्रद्योत और उज्जैन का प्रद्योत एक थे, इस विषय मे सन्देह नही हो सकता।"[२]

इस सम्बन्ध मे पं० भगवद्दत्त ने ६ प्रमाण दिये हैं, जिससे सिद्ध होता है कि मागध प्रद्योतवंश और आवन्त्य प्रद्योतवंश पृथक्-पृथक् थे।[3] इस विषय की विस्तृत समीक्षा 'कलियुगराजवृतान्त' प्रकरण मे की जाएगी, यहां तो केवल महाभारततिथि (३१०२ ई० पू०) की पुष्टिहेतु इसका संकेत मात्र किया गया है।

आधुनिक लेखकों की कल्पना को एक भ्रष्टपुराणपाठ से और बल मिला—

> आरभ्य भवतो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम्।
> एतद्वर्षसहस्रं तु शतं पंचदशोत्तरम्॥[४]

परन्तु इस श्लोकपाठ की भ्रष्टता (अशुद्धि) स्वयं पुराणों के प्रमाण से ही सिद्ध होती है। पुराणो में महाभारतयुद्ध के अनन्तर के २२ मागध राजाओं का राज्यकाल ठीक १००० वर्ष बताया है—

> द्वाविंशच्च नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथाः।
> पूर्णं वर्षसहस्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति॥[५]

---

१. भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृ० ५५३, जयचन्द्रविद्यालंकार।
२. कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग १ पृ० ३१०;
३. भारतवर्ष का बृहद् इतिहास भाग २, पृ० २३८-२३९;
४. भागवतपुराण (१२।२।२६),
५. ब्रह्माण्डपु० (२।३।७४।१२)।

इसके पश्चात् पाँच प्रद्योतमागधों ने १३८ वर्ष और दस शैशुनागराजाओं ने ३६० वर्ष राज्य किया। ये कुल १४९८ वर्ष हुए, इसके अनन्तर महापद्मनन्द का अभिषेक कलिसंवत् या १५४४ या १५१२ ई० पू० हुआ। और प्रतीप, परीक्षित् और नन्द से आन्ध्रसातवाहनोदयपूर्व तक क्रमशः २७००, २४०० और ८३६ वर्ष पुराणों में उल्लिखित हैं, अतः पुराणप्रमाण से भारतयुद्ध की पूर्वोक्त तिथि (३०८० वि० पू०) ही सत्य सिद्ध होती है। परीक्षित् से नन्दपूर्व तक १५०० वर्ष हुए, शुद्धपुराणपाठ के अनुसार—

> यावत्परीक्षितो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम्।
> एतद्वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चशतोत्तरम्॥[1]

नन्द से आंध्रतक का अन्तर ८३६ वर्ष बताया गया है—

> प्रमाणं वै तथा वक्तु महापद्मोत्तरं च यत्।
> अन्तरं च शतान्यष्टौ षट्त्रिंशच्च समाः स्मृताः॥[2]

ज्योतिषगणना से पुराणमत की पुष्टि—श्री बालकृष्ण दीक्षित ने शतपथ ब्राह्मण के आधार पर सिद्ध किया है कि कृत्तिकानक्षत्रसम्पात के द्वारा उक्त ग्रन्थ का समय ३०७४ शकपूर्व या ३२१८ शकपूर्व या ३०७३ वि० पू० निश्चित होता है। उन्होंने लिखा है—"उपर्युक्त वाक्य में 'कृत्तिकायें पूर्व में उगती हैं यह वर्तमानकालिक प्रयोग है। आजकल उत्तर में उगती हैं। शकपूर्व ३१०० वर्ष के पहिले दक्षिण मे उगती थीं। इससे सिद्ध होता है कि शतपथब्राह्मण के जिस भाग में ये वाक्य आये हैं उसका रचनाकाल शकपूर्व ३१०० वर्ष के आसपास होगा।"

शतपथब्राह्मण मे महाभारतकाल के अनेक पुरुषों के नाम उल्लिखित हैं—

> यथा—'तदु ह बह्लिकः प्रातिपीयः शुश्राव कौरव्यो राजा।'[5]
> 'अथ हस्माह स्वर्णजिन्नाग्नजितः। नग्नजिद्वा गान्धारः।'[6]

शतपथब्राह्मण मे चरकाचार्य (वैशम्पायन) का बहुधा उल्लेख है, जो व्यास का शिष्य और याज्ञवल्क्य वाजसनेय का गुरु था, वैशम्पायन ने महाभारत को

---

१. श्रीविष्णुपुराण (४।२४।१०४) गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित संस्करण;
२. ब्रह्माण्डपु० (२।३।७४।२२८),
३. श० ब्रा० (२।१।२।३),
४. भारतीय ज्योतिष, पृ० १८१;
५. श० ब्रा० (१२।९।३।३),
६. श० ब्रा० (८।१।४।१०)।

यज्ञ जनमेजय पारीक्षित् को कराया था । और भी अनेक महाभारतकालीन पुरुषों के नाम शतपथब्राह्मण में हैं, हो क्यों नहीं, जब व्यासप्रशिष्य याज्ञवल्क्य ही तो शतपथब्राह्मण के रचियता थे, अतः ज्योतिष के प्रमाण से कृत्तिका द्वारा भी महाभारतयुद्धतिथि ३०८० वि० पू० सिद्ध होती हैं ।

अर्वाचीन संवत्

युधिष्ठिरसंवत्—भारतोत्तरकाल में इस देश में अनेक संवत् प्रचलित हुए, जिनमें सर्वप्रथम युधिष्ठिरसंवत् था, जो युद्ध के पश्चात् ठीक युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के दिन से प्रारम्भ हुआ, इसका प्रसिद्ध उल्लेख वराहमिहिर ने किया है—

> आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वी युधिष्ठिरे नृपतौ ।
> षड्द्विकपंचद्वियुक्तः शककालस्तस्य राज्ञश्च ।

युद्ध के अन्तिम अर्थात् १८वें दिन बलराम तीर्थयात्रा करके लौटे—

> चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै ।
> पुष्येण संप्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः । (गदापर्व ५।६)

"गणितानुसार सायन और निरयन नक्षत्रों मे इतना अन्तर शकारम्भ के ५३०६ वर्ष पूर्व अर्थात् कलियुग का आरम्भ होने के २१२७ वर्ष पूर्व आता है ।"[1]

कलिसंवत् और युधिष्ठिरसंवत् में ३६ वर्ष का अन्तर था, क्योंकि युधिष्ठिर का शासनकाल ३६ वर्ष था, अतः वर्तमान गणित के अनुसार यह समय ३०८० वि० पू० आता है । अभी तक के प्रमाणों के अनुसार युद्ध और युधिष्ठिरसंवत् की यही तिथि है, परन्तु ज्योतिर्गणना से यह कुछ और प्राचीन हो जाती है ।[2]

कलिसंवत् पर पहिले ही विस्तार से विचार कर चुके हैं । प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार अलबेरूनी के प्राचीन भारत के अनेक संवतों का वर्णन किया है, तदनुसार संक्षेप में उनका परिचय लिखेंगे ।

कालयवनसंवत्—इसका संवत् द्वापरान्त में प्रचलित हुआ । संभवतः जब श्रीकृष्ण ने कालयवन या कशेरुमान् यवन का वध[3] किया था उसी दिन से यह

---

१. भारतीय ज्योतिष (पृ० १७०), बालकृष्ण दीक्षित ।

२. डा० पी० वी० वर्तक (पूना) के अनुसार महाभारतयुद्ध ५५६१ ई० पू० हुआ इन्होंने अपना यह मत इतिहासों के अनेक सम्मेलनों में दुहराया है ।

३. इन्द्रद्युम्नोहृतः कोपाद् यवनश्च कशेरुमान् (महाभारत वनपर्व)

संवत् चला होगा । इस यवन को किसी पश्चिमी देश से बुलाने के लिए जरासंध ने सौभाधिपति शाल्व को विमान द्वारा भेजा था कि वह कृष्ण को मार सके—

> अथ तस्य रणे जेता यवनाधिपतिर्नृपः ।
> स कालयवनो नाम अवध्यः केशवस्य ह ॥
> मन्यध्वं यदि वा युक्तां मया वाचं समेरिताम् ।
> ततो दूतं विसृजध्वं यवनेन्द्रपुरं प्रति ।
> श्रुत्वा सौभपतेर्वाक्यं सर्वे ते नृपसत्तमाः ।
> कुर्म इत्यब्रुवन् हृष्टा जरासंधं महाबलम् ॥
> यवनेन्द्रो यथा याति यथा कृष्णं विजेष्यति ।
> यथा वयं च तुष्यामस्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥[१]

इसी तथ्य का अनभिज्ञ अलबेरूनी लिखता है—The Hindus have an era Kalayavana, regarding which I have not been able to obtain full information, they place itsepoch in the end of the last Dwapara yuga—They here mentiond yavan severally oppressed both their country and their religion"[२] हरिवंशपुराण (२) अध्याय ५२=५८ पर्यन्त) में उपरोक्त कालयवन का विस्तार से वर्णन है । इसका वध श्रीकृष्ण के चातुर्य से भारतयुद्ध के प्रायः एक शती पूर्व हुआ, अतः कालयवनसंवत् युधिष्ठिरसंवत् से भी लगभग सौ वर्ष पूर्व प्रचलित हुआ था ।

श्री हर्षसंवत्—यह श्रीहर्ष भूमि उत्खनन द्वारा प्राचीन कोश की खोज करता था । अलबेरूनी इसको विक्रम से ४०० पूर्व हुआ लिखता है—Between Shri Harsha and Vikramaditya their is interval of 400 years.' पं० भगवद्दत्त ने कल्हणादि के प्रमाण से लिखा है कि शूद्रक विक्रम का नाम ही श्रीहर्ष था ।[3] यह मत प्रमाणाभाव से त्याज्य है—

> तत्रानेहस्युज्जयिन्यां श्रीमान्हर्षापराभिधः ।
> एकच्छत्रश्चक्रवर्ती विक्रमादित्य इत्यभूत् ।[४]

---

१. हरिवंश (२।५२।२५,३१,३२,४५),
२. Alberuni's India (p. 5),
३. वही, पृ० (१),
४. भा० बृ० इ० भाग-२ (पृ० २२५),

अतः हर्षसंवत् ४०० वि० पू० प्रचलित हुआ।[1]

विक्रमसंवत्—यह प्रसिद्ध विक्रमसंवत् है जो शकसंवत् से १३५ वर्ष पूर्व और ईस्वी सन् से ५७ वर्ष पूर्व प्रचलित हुआ। अलबेरूनी इस विक्रम का नाम भ्रान्ति से चन्द्रबीज लिखता है—In the book of Srudhava by Mahadeva, I find as his name Chandrabija, यहाँ भ्रम से चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य शकारि द्वितीय को ही 'चन्द्रबीज' कहा गया है जो शकसंवत् (१३५ विक्रम से) का प्रवर्तक था। विक्रमसंवत्प्रवर्तक विक्रमादित्य और था, जो शूद्रकवंश (जाति) था—इसके विषय में समुद्रगुप्त ने श्रीकृष्णचरित के आरम्भ में लिखा है—

> वत्सरं स्वं शकान् जित्वा प्रावर्तयत वैक्रमम् ॥[3]

इसी विक्रम के विषय में प्रभावकचरित में लिखा है—

> शकानां वंशमुच्छेद्य कालेन कियताऽपि ह।
> राजा श्रीविक्रमादित्यः सार्वभौमपमोऽभवत् ॥
> मेदिनीमनृणां कृत्वाऽचीकरद्वत्सरं निजम् ॥[4]

'शूद्रक' पद का रहस्य और तज्जन्य भ्रान्तिनिराकरण—'शूद्रक' पद अनेक राजाओं ने धारण किया। यह एक भ्रान्ति प्रतीत होती है कि यदि 'शूद्रक' पद 'शूद्र' का पर्यायवाची है तो ऐसे अपमानजनक शब्द को चक्रवर्ती सम्राटों ने क्यों धारण किया। इस रहस्य को न समझकर पं० भगवद्दत्त लिखते हैं—"श्री नन्दलाल दे का मत है कि क्षुद्रक ही शूद्रक थे। हमें इसके मानने में कठिनाई प्रतीत होती है। महाभारत आदिग्रन्थों में क्षुद्रक और मालव तथा शूद्र और आभीर साथ-साथ एक-एक समास में आते हैं। क्षुद्रक और आभीर का समास हमारे देखने में नहीं आया।"[5] इस अबोधगम्यता का कारण यह है कि पण्डितजी 'शूद्रक' शब्द को शूद्र का पर्याय समझते हैं। इस सम्बन्ध में श्री नन्दलाल दे का मत बिल्कुल सत्य है कि 'क्षुद्रक' ही शूद्रक थे।"[6] सत्यता यह है

---

१. राजतरंगिणी (२५१),
२. Alberuni's India (p. 6), वही।
३. कृष्णचरित (राजकविवर्णन, श्लोक ११)
४ प्रभावकचरित, कालकाचार्य (कथा ९०, ९२)
५. भा० बृ इ० भाग २ (पृ० १६०)
६. भौगोलिक कोश, 'शूद्रक' शब्द नन्दलाल दे कृत।

कि 'शूद्रक' शब्द 'शूद्र' का पर्याय नहीं है, यदि शूद्रक शब्द घृणित होता तो मालव के संम्राट इस पदवी को धारण नहीं करते। काशिका में (५।३।११४) भी लिखा है कि क्षुद्रकमालवगण ब्राह्मणराजन्यवर्जित आयुधजीवी थे। महाभारत इस सम्बन्ध में प्रमाण है कि वे मालव असुरों के वंशज थे जिनका राजा वृषसेन था। वे 'सावित्रीपुत्र' भी कहे जाते थे, उत्तरकालीनपरम्परा में क्षुद्रकमालव अपने को ब्राह्मण ही मानने लगे थे—यथा विक्रमादित्य शूद्रक के विषय में बताया गया है—

> द्विजमुख्यतमः कविर्बभूव प्रथितः शूद्रक इत्यगाधसत्त्वः।[1]
>
> पुरन्दरबलो विप्रः शूद्रकः शास्त्रशस्त्रवित्।[2]

अतः 'शूद्रक' को 'शूद्र' का पर्याय मानने की आवश्यकता नहीं है, इससे पं० भगवद्दत्त की कठिनाई दूर हो जाती है कि 'शूद्रक' और आभीर का समास हमारे देखने में नहीं आया। अतः आभीर ही शूद्र माने जाते थे, शूद्रक नहीं। फिर क्षुद्रकों को शूद्रक क्यों कहा गया। इसका कारण है भाषाविकार। क्षुद्रकमालवों के देश मालव में प्राकृत भाषा का अधिक प्रसार और प्रचार था, रामिल सौमिल कवियों ने शूद्रकचरित प्राकृतभाषा में ही लिखा था – स्वयं शूद्रकरचित मृच्छकटिक में प्राकृतभाषाप्रयोगों का बाहुल्य उपलब्ध होता है। अतः संस्कृत शब्द 'क्षुद्रक' को प्राकृत में 'शूद्रक' कहा गया। यह 'शूद्रक' व्यक्तिगत नाम नहीं है, जातिगत नाम है, इसलिए अनेक क्षुद्रकमालवनरेशों का विरुद (नाम) 'शूद्रक' हुआ। पण्डित राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री ने शंका व्यक्त की है कि क्या शूद्रक अनेक थे। निश्चय ही क्षुद्रक (शूद्रक) मालव जाति में 'शूद्रक' नाम के अनेक राजा हुए, जिस प्रकार अनेक हैहय, राघव, आवन्त्य या वसिष्ठ या भारद्वाज हुए। इसी प्रकार 'शूद्रक' जातिवाचक नाम था, इसलिए भ्रान्ति उत्पन्न होती है कि 'शूद्रक' एक था या अनेक, निश्चय ही क्षुद्रकों का प्रत्येक शासक क्षुद्रक या शूद्रक कहलाता था। नामसाम्य से अनेक शूद्रकनरेशों का चरित एक प्रतीत होता है। कल्हण भी इस भ्रमपाश में बद्ध हो गया।[4] अतः अनेक शूद्रकों (क्षुद्रकों) सम्राटों में दो शूद्रकसम्राट् विख्यात हुए, दोनों ने शकों या

---

१. मृच्छकटिक (प्रारम्भ)। २. श्रीकृष्णचरित (श्लोक ६)।

३. "किं तर्हि बहवः शूद्रका राजानः कवयो वा बभूवुरेकस्यैव चरितं नानारूपं दरीदृश्यत इति संशयं समाधातुं यथामति किञ्चिद् ब्रूमहे।"

(कृष्णचरित पृ० ४१)

४. शकान्विजित्य विक्रमादित्य इति स [illegible]। [illegible] विसंवादि कदर्थितम् (राजतरंगिणी)।

म्लेच्छों को जीत कर विक्रमशकसंवत् चलाया, शूद्रक और मालव एक ही जाति के थे अतः 'मालव' नाम क्षुद्रक की अपेक्षा अधिक प्रयुक्त हुआ है, शूद्रकसंवत् को ही मालवसंवत् कहा जाता था। इसी के संवत् को मालवसंवत् या कृतसंवत् कहते हैं। मन्दसौर के प्रसिद्ध शिलालेख मे इसी प्रथम श्रीशूद्रकसंवत् (मालवगण-कृतसंवत्) का प्रयोग हुआ है, मालवानां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये। त्रिनवत्यधिके-ब्दानामृतौ सेव्यघनस्वने। मंगलाचारविधिना प्रासादोऽयं निवेशितः। बहुना समतीतेन कालेनान्यैश्च पार्थिवैः। व्यशीर्यतैकदेशोऽस्य भवनस्य ततोऽधुना। वत्सरशतेषु पञ्चसु विंशत्यधिकेषु नवसु चाब्देषु। यातेषु अभिरम्यतपस्यमास-शुक्लद्वितीयायाम् ॥

मालवगणराज्य की स्थापना किसी मालवनाथ या क्षुद्रक या अवन्तिनाथ ने विक्रमादित्य से ३४३ वर्ष पूर्व की थी, न कि ४०० वर्षपूर्व जैसाकि अलबेरूनी से लिखा है। इस सम्बन्ध में यह परम्परा अधिक विश्वसनीय प्रतीत होती है, जिसका उल्लेख कर्नल विल्फर्ड ने किया है—"From the first year of Sudraka to the first year of Vikramadıtya.. ...there are 343 years and only fifteen Kings to fillup that Space"[1] इस परम्परा से ज्ञात होता है कि शूद्रकनामधारी १५ राजा हुए थे, जिनका अन्तर ३४३ वर्ष था, पन्द्रहवाँ राजा प्रसिद्ध विक्रमसम्वत्सरप्रवर्तक विक्रमादित्य था। प्रथम शूद्रक इससे ३४३ वर्ष पूर्व हुआ जिससे गणतन्त्र स्थापना की।[2] कुमारगुप्त के सम-कालिक बन्धुवर्मा का समय १५० वि० सं० में था, जब उसने उक्त भवन का निर्माण कराया, उसके ५२९ वर्ष व्यतीत होने पर ६७९ वि० सं० में इसका जीर्णोद्धार हुआ। अतः कृतसम्वत् या श्रीहर्षसम्वत् या मालवसम्वत् को विक्रम सम्वत मानना महती भ्रान्ति है जैसा कि रैप्सन जायसवाल आदि मानते हैं।

अतः शूद्रक-क्षुद्रक एवं विक्रमसम्वत्सम्बन्धी उपर्युक्तविवेचन से एतत्-सम्बन्धी भ्रम समाप्त हो जाना चाहिए। निम्नलिखित गुप्तकाल और शक-सम्बन्धीविवेचन से उक्त विषय का और स्पष्टीकरण होगा।

शकसम्वत् का प्रवर्तक राजा विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त से सम्बन्ध और गुप्तों का राज्यकाल—पं० भगवद्दत्त गुप्त राजाओं को ही विक्रमसम्वत् (५७ ई० पू०) का प्रवर्तक मानते हैं, उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ भारतवर्ष का

1. Asiatic' Researches, Vol IX. p. 210, 1809. A, D.;

२. शूद्रकों या क्षुद्रकों ने अनेक युद्ध जीते थे—

'एकाकिभि क्षुद्रकैर्जितम् असहायैरित्यर्थः (महाभाष्य १।१।२४).'

यह परम्परा शूद्रकों ने दीर्घकाल तक जारी रखी।

बृहद् इतिहास, में प्रचुर सामग्री एकत्र की है, उनका परिश्रम अभूतपूर्व, स्तुत्य एवं अभिनन्दनीय है, लेकिन वे इस धारणा के साथ कि 'सम्भवतः गुप्त ही विक्रम थे' इस अनिश्चय के साथ गुप्तों के सम्बन्ध में निश्चित निर्णय नहीं कर सके। उन्होंने लिखा "भारतीय इतिहास में गुप्तों का वंश विक्रमों का वंश है। समुद्रगुप्त को विक्रमांक चन्द्रगुप्त द्वितीय को विक्रमांक अथवा विक्रमादित्य और स्कन्दगुप्त को विक्रमादित्य कहते हैं। अतः प्रसिद्ध विक्रमसम्वत् का सम्बन्ध इन्हीं विक्रमों से जुड़ता है।"[1] कुछ विद्वान गुप्तों को सिकन्दर का समकालीन मानकर उनका समय ३२७ ई० पू० में रखते हैं यथा श्री कोटा वेंकटाचलम् ने अपनी पुस्तक 'दी एज आफ बुद्ध, मिलिन्द एण्ड किंग अंतियोक एण्ड युगपुराण' के पृष्ठ २ पर लिखते हैं—सिकन्दर का आक्रमण ई० पू० ३२६ में हुआ वह चन्द्रगुप्त गुप्तवंश का है, जिसका सम्बन्ध ईसा पूर्व ३२७-३२० वर्ष से है।" पुनः वे लिखते हैं गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त को सिकन्दर का समकालीन मगधनरेश मान लेना, हिन्दुओं, बौद्धो और जैनियो के प्राचीनकालीन पवित्र और धार्मिक साहित्य मे वर्णित सभी प्राचीनतिथियो से मेल खाता है।"

(वही पृष्ठ ३),

उपर्युक्त दोनों विद्वानों (भगवद्दत्त और वेंकटाचलम्) के मत सर्वथा अयुक्त और पुराणगणना के सर्वथा विपरीत हैं। लेकिन आजकल प्रायः सर्वमान्य प्रचलित मत उपर्युक्त दोनों मतों से भी असत्य और घोर भ्रामक है, जिसका प्रवर्तन फ्लीट के आधार पर आधुनिक इतिहासकारो ने किया है। एक प्रसिद्ध लेखक हेमचन्द्रराय चौधरी, चन्द्रगुप्त प्रथम का समय ३२० ई० मानते हैं।[2] फ्लीटादि गुप्तों का प्रारम्भ ३७५ विक्रम सम्वत् से मानते हैं। अब देखना है कि किन आधारों पर फ्लीटादि ने यह तिथि घड़ी। इसका मूल है प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार अलबेरूनी का यह प्रमाणवचन—"As regaıds the Gupta Kala, people say that the Guptas were wicked powerful people and that when they ceased to exist, this date was used as the epoch of an era. It Seems that Valabha was the last of them, because the epoch of the era of the Guptas follow like of the Vallabhera 241 years later than the Sakakala" स्पष्ट है।

---

१. भारतवर्ष का बृ० इ० भाग (पृ० १७१),

२. घटोत्कच के पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम इस वंश के प्रथम महाधिराज थे। वे सन् ३२० के आसपास सिंहासनारूढ़ हुए होंगे।" प्राचीन भारत का राज० इति०; (पृ० ३९९),

अलबेरूनी से गुप्तकाल के अन्त और बलभीभंग की एक ही तिथि लिखी है—३७५ वि० सम्वत् । अलबेरूनी के आधार पर इस कालको गुप्तकाल का आरम्भ कौन विज्ञपुरुष मानेगा । बलभभंगकाल को गुप्तकाल का आरम्भ मानना बुद्धि का दिवाला निकालना है ।

शकसम्वत्चतुष्टयी

इस सम्बन्ध में ध्यातव्य है कि प्राचीनभारत में न्यूनतम चार शकसंज्ञक सम्वत प्रचलित थे । दो शकसंवत् शकराज्यों के आरम्भ होने पर चले और दो शकसंवत् शकराज्यों के दो बार अन्त होने पर चले, इस शकाब्दचतुष्टयी पर यहाँ संक्षिप्त विचार करते हैं ।

प्रथमशकसम्वत्—प्राचीनतम ज्ञात शकसवत् ५५४ वि० पू० से प्रारम्भ हुआ था, जिसका सर्वप्रथम उल्लेख शूद्रकविक्रमसमकालिक प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिरकृत बृहत्संहिता (१३।३) में मिलता है—

> आसन् मघासु मुनयः शासति पृथिवींयुधिष्ठिरेनृपतौ ।
> षड्द्विपंचद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥

युधिष्ठिर का राज्यारम्भ ठीक ३०८० वि० पू० हुआ, इसमे वराहमिहिरोक्त २५२६ वर्ष घटाने पर ५५४ वर्ष होते हैं, अतः ५५४ वि० पू० से शकसम्वत् का प्रारम्भ हुआ ।

यद्यपि, इस प्रथम शकसम्वत् का प्रवर्तक कौन शकराज था, यह निश्चित एवं निर्णायक प्रमाण अभी तक अनुपलब्ध है, तथापि हमारा अनुमान है कि नहपान का पूर्वज और क्षहरातवंश का प्रतिष्ठाता शकराज आम्लाट ही होगा जिसका उल्लेख युगपुराण मे प्रथम शकसम्राट् के रूप में है—

> आम्लाटो लोहिताक्षेति पुष्पनाम गमिष्यति ।
> ततः स म्लेच्छ आम्लाटो रक्ताक्षो रक्तवस्त्रभृत् ।
>
> (युगपुराण, १३३, १३६)

युगपुराण से आभास होता है कि यह शकराजा कण्वों के अन्त और सातवाहनों के प्रारम्भकाल में हुआ ।

पुराणो मे १८ शकराजाओं का उल्लेख मिलता है । परन्तु प्राचीन बौद्ध ग्रन्थ मञ्जुश्रीमूलकल्प में ३० और १८ शकराजाओ का उल्लेख है—

---

१. Alberuni's India (p. 7)

शककन्यास्तथा त्रिंशत् मनुजेषा नियोक्ष...।
दशाष्ट भूमतयः ख्याताः सार्धंभूतिकमध्यमाः ।
(भ० भू० क०-श्लोक ६९५, ६९६)

पुराणोक्त १८ शकराजा उत्तरकालीन चष्टनवंश के थे, चष्टन के पिता का नाम भूतिक (भूमिक या घसमोतिक) था, जिसका शिलालेखों में उल्लेख मिलता है। चष्टनशको से पूर्व १२ क्षहरात शक राजा हुए, जिनमें प्रथम आम्लाट और अन्तिम नहपान था। चष्टनशकों का राज्यकाल पुराणों में ३८० वर्ष लिखा है। अन्तिम शकराज का हन्ता चन्द्रगुप्त साहसांक विक्रमादित्य था, शकवध के कारण ही चन्द्रगुप्त को साहसाक और विक्रमादित्य उपाधि मिली थी, इसी शकवध के उपलक्ष मे उसने १३५ विक्रम सम्वत् में अन्तिम शक-सम्वत चलाया, यह पूर्वपृष्ठो पर प्रमाणपूर्वक लिखा जा चुका है। अतः चष्टनशक का राज्यारम्भ २४५ वि० पू० और अन्त १३५ विक्रमसम्वत् में हुआ।

चष्टनशकों से पूर्व १२ क्षहरातशकों का राज्यकाल लगभग ३०० वर्ष था, गौतमीपुत्र शातकर्णी ने २६० वि० पू० के आसपास अन्तिम क्षहरात शक-सम्राट् नहपान का वध किया था।[1] अतः क्षहरातशकवंश के प्रवर्तक आम्लाट का समय ५५४ वि० पू० निश्चित होता है, जो चष्टन से लगभग ३०० वर्ष पूर्व हुआ।

द्वितीय शकसम्वत्—२४५ वि० पू० से आरम्भ—भूतिक और चष्टन सहित १८ शक राजाओं ने ३८० वर्ष राज्य किया—

शतानि त्रीणि अशीतिश्च ।
शका अष्टादशैव तु ।[2]

इस वश के अठारह राजाओं मे अधिकांश का उल्लेख शिलालेखों में मिलता है और इस शकराजसम्वत् ३१० का शिलालेख प्राप्त हो चुका है, अतः पार्जीटर की यह कल्पना पूर्णतः ध्वस्त हो जाती है कि 'शतानित्रीणि अशीतिश्च' का अर्थ '१८३' है।[3] भ्रामक एवं षड्यन्त्रपूर्ण कल्पनाओं के कारण पाश्चात्य लेखकों की गणना मे सामञ्जस्य नहीं बैठता, यह अन्यत्र भी स्पष्ट होगा।

---

१. खहरातवसनिरवसेसकरस (नासिकगुहालेख, पंक्ति ५,६)
२. पुराणपाठ, पृ० ४५,
३ पुराणपाठ. भूमिका (XXIV-XXV)

चष्टनशकराज्य का अन्त—अन्तिम शकराजा का वध करके चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने किया, यह प्राचीन भारत में सर्वविदितसर्वसामान्य तथ्य था, परन्तु गुप्तों के सम्बन्ध में भ्रामक कल्पना के कारण आज तक कोई सोच ही नहीं सका कि शकसम्वत् का प्रवर्तक चन्द्रगुप्त साहसांक था।

तृतीयशकसम्वत् विक्रमसम्वत्—इस 'शक' सम्वत् को ५७ वर्ष ईसापूर्व शूद्रकमालव नरेश शूद्रक विक्रमादित्य ने शकों पर अपनी विजय के उपलक्ष में चलाया था। इस पर विस्तृतविचार 'शूद्रकगर्दभिल' प्रकरण में किया जायेगा। परन्तु एक तथ्य ध्यातव्य है कि जैनवाङ्मय मे शकसंवत् और विक्रमसंवत् को बहुधा एक माना गया है।[1]

चतुर्थ, प्रसिद्ध शक (शालिवाहन) सम्वत्—यह अपने जन्मकाल १३५ वि० श० से आजतक सर्वाधिक प्रचलित सम्वत् था और इसको अब सरकार ने 'राष्ट्रीय सम्वत्' के रूप मे मान्यता दी है। परन्तु इसके प्रारम्भ के संबंध मे आज के इतिहासकारों को सर्वाधिक भ्रान्तियाँ हैं, इस असत्यता या भ्रान्ति का दिग्दर्शन श्री वासुदेव उपाध्याय के निम्न वाक्यो से होगा—"कुछ विद्वानों का मत है कि रुद्रादामन् (ई० स० १५० ?) के पितामह चष्टन शकवंश का प्रथम महाक्षत्रप हुआ और सम्भवत: उसीने इस गणना का प्रारम्भ किया।... यह माना जा सकता है कि कुषाण कनिष्क द्वारा ई० स० ७८ में गद्दी पर बैठने के कारण इस गणना का प्रारम्भ हुआ हो।.........फलीट तथा कैनेडी, कनिष्क को इसका संस्थापक नहीं मानते। फर्गुसन, ओलडेनवर्ग, बनर्जी तथा रायचौधरी का मत है कि कनिष्क ने ही सन् ७८ में शकसम्वत् का प्रारम्भ किया हो।"[2] कोई इस सम्वत् का सम्बन्ध नहपान से जोड़ता है, कोई कनिष्क से, कोई चष्टन से, तो कोई सातवाहनों से स्पष्ट है कि ये सभी मत निराधार कल्पना से अधिक कुछ नहीं हैं।

समवीत शककाल—परन्तु आधुनिक इतिहासकार सभी साक्ष्यों को त्यागकर अपनी हठवादिता पर अड़कर, चालुक्यनरेश पुलकेशी, द्वितीय के अयहोल शिलालेख के निम्न कथन के आधार पर, कनिष्क या चष्टन को शकराज्यारम्भ से, चतुर्थ शकसम्वत् का प्रवर्तक मानते है—

पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्॥[3]

---

१. भा० बृ० इ० भा० २, गुप्तकाल प्रारम्भ, पृ० ३३२-३३४;
२. प्रा० भा० अ०, पृ० २२०;
३. ए० इ०, भा० ६, पृ० १.

हमें यह सन्देह है कि उक्त शिलालेख के उक्त वाक्य 'समतीतासु' के स्थान पर समतीतानाम्' को परिवर्तित किया गया है, क्योंकि इतने प्राचीनकाल (५५३ शकसम्वत्) में इस सम्वत् के संबंध में शिलालेखकर्ता ऐसी भूल नहीं कर सकते थे। क्योंकि इस काल (५५३ शकसम्वत्) से भी २४० वर्ष पश्चात् शकसम्वत् ७९३ के अमोघवर्ष के संजान ताम्रपत्र लेख में इसको 'शकनृपका-लातीतसम्वत्सर ही कहा है—

"शकनृपकालातीतसंवत्सरशतेषु नवतृतयाधिकेषु ।"[1]

अतः पुलकेशी द्वितीय के शिलालेख का सही पाठ यह है—

"समासु समतीतानां शकानामपि भूभुजाम्"

षष्ठी विभक्ति (समतीतानां) को सप्तमी (समतीतासु) में बदलने के कारण यह महती भ्रान्ति हुई और जिन शकराजाओं का राज्यकाल २४५ वि० पू० प्रारम्भ हुआ, उनका आरम्भकाल उनके अन्तकाल १३५ वि० सं० में माना जाने लगा।

प्राचीन शिलालेखकों और भट्टोत्पलसदृश प्राचीन ज्योतिषियों एवं अल-बेरूनी को भी भ्रान्ति नहीं थी कि चतुर्थ शकसंवत् शकराज्य की पूर्णसमाप्ति पर चला। इस सम्बन्ध मे निम्न साक्ष्य द्रष्टव्य है—

(१) नन्दाद्रीन्दुगुणस्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः।

(२) शकान्ते शकावधौ काले।

(३) कलेर्गोऽगैकगुणः शकान्तेऽब्दाः।

(४) श्रीसत्यश्रवा ने आगे सुदृढ़ प्रमाणों से सिद्ध किया है कि 'शक-नृपकालातीतसंवत्सरः' का अर्थ यही है कि यह संवत्सर शकनृप के काल के पश्चात् चला।[2]"

इस सम्बन्ध मे प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों को कोई भ्रम नहीं था— "शका नाम म्लेच्छा राजानस्ते यस्मिन् काले विक्रमादित्यदेवेन व्यापादिताः स शकसम्बन्धीकालः लोके शक इत्युच्यते।"[3]

इस सम्बन्ध मे अलबेरूनी का मत उसके ग्रन्थ के पृष्ठ ६ पर द्रष्टव्य है— Vikramaditya from whom the era got its name is not identical

---

१. प्रा० भा० अ० अ० द्वि० ख० मूल पृ० १५०,

२. द्र० भा० बृ० भा० (१७४-१७७)

३. खण्डखाद्यक, वासनाभाष्य आमराज, पृ० २;

with that one who killed Saka, but only a namesake of his." अतः अलबेरूनी और उसके समय भारतीय विद्वानों को कोई संदेह नहीं था कि उपर्युक्त शकसंवत् 'विक्रमादित्य' ने चलाया था और यह विक्रमादित्य सिवाय गुप्त सम्राट् साहसांक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के अतिरिक्त और कोई हो ही नहीं सकता। जिसका 'शकसम्राट् के वध' से घनिष्ठसम्बन्ध प्राचीनवाङ्मय में 'अतिप्रसिद्ध है। अब यह देखना है कि शकसंवत् का प्रवर्तक कौन था, किस प्रकार प्रसिद्ध शालिवाहन शक का १३५ वि० सं० से प्रारम्भ हुआ। शकसंवत् के प्रारम्भ के विषय में आधुनिक पाश्चात्य और भारतीय लेखक 'अंधेनैव नीयमाना यथान्धाः' उक्ति को चरितार्थ करते हुए भटकते रहे हैं। कुछ लोगों ने इसका सम्वत् कुषाण सम्राट् कनिष्क से जोड़ा है। तो कुछ लोग इसका सम्बन्ध चष्टनादिशको से जोड़ते हैं। इस सम्बन्ध मे विभिन्न मत द्रष्टव्य हैं— कनिष्क की तिथि के सम्बन्ध के लिये—

(१) डा० फलीट के मतानुसार काडफिसेस वंश के पूर्व कनिष्क राज्य करता था। ईसापूर्व ५८ मे उसने विक्रमसंवत् की स्थापना की।[१]

(२) मार्शल, स्टेनकोनो, स्मिथ तथा अनेक दूसरे विद्वानों के अनुसार कनिष्क सन् १२५ ई० अथवा १४४ ई० मे सिंहसनारूढ़ हुआ।[२]

(३) अभी हाल मे ग्रिशमैन ने कनिष्क की तिथि १४४—१७२ ई० निर्धारित की है।[3]

(४) डा० आर० सी० मजूमदार का मत है कि कनिष्क ने सन् २४८ के त्रैकूटक कलचुरिचेदिसंवत् की स्थापना की।[४]

(५) फर्गुसन, ओल्डनवर्ग, थामस, बनर्जी, रैप्सन, जे० ई० वान लो हुइजेन डीलीऊ बैटनौफर तथा अन्य दूसरे विद्वानो के अनुसार कनिष्क ने ७८ ई० में शकसम्वत् की स्थापना की।"[५]

रैप्सन आदि शकसंवत् का सम्बन्ध नहपान महाक्षत्रप शकराज से जोड़ते हैं—प्रो० रैप्सन इस मत से सहमत हैं कि नहपान की जो तिथियाँ दी गई हैं, वे सन् ७८ ई० से आरम्भ होने वाले शकसवत् से सम्बन्धित हैं।[६]

तथाकथित कुछ विद्वान शकसंवत् का सम्बन्ध सातकर्णि (सातवाहन आन्ध्रो) से जोड़ते हैं—(१) गौतमीपुत्र सातकर्णि की तिथि के सम्बन्ध मे विद्वानो में

१-५. प्रा० भा० रा० इ० (रायचौधरी पृ० ३४४-३४६)
६. वही (पृ० ३५६).

बहुत मतभेद हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि उसके लिए जो उपाधियाँ 'शकारिर्नविक्रम', 'शकविक्रम'... अर्थात् शकों का विनाशकरनेवाला दी गई हैं, उनसे विदित होता है कि पौराणिककथाओं में आने वाला राजा विक्रमादित्य वही था, जिसने ईसापूर्व ५८ वाला विक्रमसंवत् चलाया।"[1]

कुछ लोग शालिवाहनशक के नाम पर सातवाहनों से शकसंवत् का सम्बन्ध जोड़ते हैं।

इस प्रकार शकसंवत् और विक्रमसम्वत्, आधुनिक इतिहासकारों को ऐसी कामधेनु मिल गई, जिससे सभी राजाओं की दुग्धरूपीतिथियाँ काढ़ते हैं। एक झूठ को मानने का जो परिणाम होता है, वह प्रत्यक्ष है कि सभी जानबूझकर भटक रहे हैं और सत्य को नहीं मानते; जो 'सत्य' प्राचीनग्रन्थों और परम्परा में कथित हैं, उसे मानने में कठिनाई आती है—मोहाद् गृहीत्वासद्ग्राहान् प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः। (गीता) इस प्रकार अज्ञान या मोहवश असम्मतों का प्रवर्तन और ग्रहण कर रखा है।

शकसंवत् के सम्बन्ध में सत्यमत क्या है, इस सम्बन्ध में अब प्राचीन ग्रन्थों के मूलवचन द्रष्टव्य हैं—

(१) शका नाम म्लेच्छा राजानस्ते यस्मिन् काले विक्रमादित्येन व्यापादिताः स शकसम्बन्धीकालः शक इत्युच्यते।[2]

(२) शकान्ते शकावधीकाले।[3]

(३) शकनृपकालातीतसंवत्सरः।

(सत्यश्रवाकृत शकासइनइण्डिया, पृ० ४४-४६)

(४) अरिपुरे च परकलत्रकामुकं कामिनीवेषगुप्तश्चन्द्रगुप्तः शकपतिमशातयत्।' (बाणभट्टकृत हर्षचरित षष्ठ उच्छवास पृ० ६९६)

(५) शकनृपरिपोरनन्तर कवयः कुत्र पवित्रसंकथाः।

(अभिनन्दकृत रामचरित)

ख्यातिं कामपि कालिदासकृतयो नीताः शकरातिना।

(अभिनन्दकृत रामचरित)

---

१. वही (पृ० ३६६)

२. खण्डकखाद्यवासनाभाष्य आमराजकृत, पृ० २, तथा बृहत्संहिता। (८।२० भट्टोत्पलटीका)

३. श्रीपति की मक्किभटकृतटीका, ज०इ०हि० मद्रास, भाग १६ पृ० २५६।

(६) स्त्रीवेशनिह्नुतश्चन्द्रगुप्तः शत्रोः स्कन्धावारमरिपुरं शकपतिवधायागमत् । (भोजकृत शृंगारप्रकाश)

(७) हत्वा भ्रातरमेव राज्यमहरद् देवीं च दीनस्ततो लक्षं ।
कोटिमलेखयन् किल कलौ दाता स गुप्तान्वयः ॥
(एपि० इण्डिया, भाग १८ पृ० २४८)

(८) विक्रमादित्यः साहसांकः शकान्तकः ।
(अमरकोश क्षीरस्वामीटीका २।८।२)

(९) ख्यातः किल कालिदासकविना श्रीविक्रमाङ्को नृपः ।
(सुभाषितावली)

(१०) भ्रात्रादिवधेनफलेन ज्ञायते यदयमुन्मत्तपदम्प्रचारी चन्द्रगुप्त इति (चरकसंहिता, वि० स्था० चक्रपाणिटीका ४।८) ।

(11) The epoch of the era of Saka or Sakakala falls 135 years later than that of Vikramaditya. They have mentioned Saka tyrannised over their Country between the river Sindh and ocean...The Hindus had much suffer from him, till at last they received help from the east, when Vikramaditya marched against him, put him to plight and killed him...Now this date become famous, as people rejoiced in the news of the death of the tyrant, and was used as the epoch of an era, especially by the astronmers They honour the conquerer by adding Shri to has name, so as to say shriVikramaditya."
(Alberuni's India p. 6)

(12) In the book "Srudhava" by Mahadeva, I find as his name Chandrabija" (चन्द्रबीज = चन्द्रबीर = चन्द्रगुप्त) वही पृ० ६

(१३) "जब रासल (समुद्रगुप्त) की मृत्यु हो गई तो उसका ज्येष्ठपुत्र रव्वाल (रामगुप्त) राजा बना । उस समय एक राजा की बड़ी बुद्धिमानी पुत्री (ध्रुवस्वामी) थी । बुद्धिमान् और विद्वान् लोगों ने कहा था कि जो पुरुष इस कन्या से विवाह करेगा.. । परन्तु बरकमारीज के अतिरिक्त कोई उस कन्या को पसन्द नहीं आया ।...जब उनके पिता रासल को निकाल देने वाले विद्रोही राजा ने इस लड़की की कहानी सुनी तो उसने कहा 'जो लोग ऐसा कर सकते हैं, क्या वे इस प्रतिष्ठा के अधिकारी हैं ? वह सेना लेकर आ गया और उसने रव्वाल को भगा दिया । रव्वाल अपने भाइयों और सामन्तों के साथ

एक पर्वत शिखिर पर चला गया जिस पर दृढ़ दुर्ग बना हुआ था।···जब दुर्ग छीनने वाला था तो रव्वाल ने संधिप्रस्ताव भेजा तो शत्रु ने कहा 'तुम लड़की मेरे पास भेज दो'···बरकमारीस ने सोचा मैं स्त्री का वेश पहनूं। प्रत्येक युवक अपने केशों में खंजर छिपा ले।···योजना सफल हुई शत्रु का एक भी सैनिक नहीं बचा···तदनन्तर ग्रीष्म में नंगे पैर नगर में घूमता बरकमारीस राजप्रसाद के द्वार पर पहुंचा···बरकमारीस ने (अपने ज्येष्ठ भ्राता) रव्वाल के पेट में चाकू घोंप दिया···वह राजसिंहासन पर बैठ गया। उस लड़की (ध्रुवस्वामिनी) से विवाह कर लिया। बरकमारीज और उसके राज की शक्ति बढ़ने लगी और सारा भारत उसके अधीन हो गया।" (भारत का इतिहास, प्रथम भा० पृ० ७६-७८, इलियट एवं डासन कृत—मुजमलुक तवारीख से उद्धृत)।

उपर्युक्त तेरह उद्धरण आमराज, भट्टोत्पल, शिलालेख, मकिभट भोज, क्षीर पाणि, सुभाषितावली, चक्रपाणि, अलबेरूनी और मुजमलुक तवारीख सभी एक ही तथ्य के बोलते हुए चित्र हैं कि जिस विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त साहसांक ने अपने ज्येष्ठ भ्राता का वध किया, शकराज (नृपति) का विनाश किया, ध्रुवस्वामिनी से विवाह किया, वही शकसंवत्प्रवर्तक विक्रमादित्य था। इसके अतिरिक्त और कोई व्यक्ति भारतीय इतिहास मे नही हुआ, जिसने ये सभी काम साथ-साथ किये हों, इसीलिए राष्ट्रकूट गोविन्द चतुर्थ ने भी उत्तरकाल (शकसवत् ७९३) मे साहसांक पदवी धारण की, परन्तु प्रथम साहसांक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के दोषों को ग्रहण नहीं किया—

> सामर्थ्ये सति निन्दिता प्रविहिता नैवाग्रजेक्रूरता।
> बंधुस्त्रीगमनादिभिः कुचरितैरावर्जितं नायशः।
> शौचाशौचपराङ्मुखं न च भिया पैशाच्यमङ्गीकृतं।
> त्यागेनासमसाहसैश्च भुवने यः साहसांकोऽभवत्॥[1]

उपर्युक्त विंशत्यधिक सभी प्राचीन देशी विदेशी विद्वान् प्रमत्त नहीं थे, जो लिखते कि शकराज के वध के अनंतर विक्रमादित्य ने १३५ वि० सं० में शक-संवत् चलाया। यह तथ्य ऊपर के उद्धरणों से स्वयं सिद्ध हो जाता है, हमारी किसी कल्पना की आवश्यकता नहीं है। अलबेरूनी से कोई आधुनिक भारत का विद्वान यह कहने नही गया था कि तुम लिख दो कि "शककाल के २४० वर्ष पश्चात् गुप्तों का अंत और वलभी भंग हुआ, तब वलभीसम्वत् चला।" अलबेरूनी ने स्पष्ट लिखा है कि ३७५ विक्रम संवत् में गुप्तराज्य का अंत हो गया था, तब कौन हतबुद्धि मानेगा कि इस समय (३७५ वि० में) गुप्तराज्य

---

1. एपि० इण्डिया, भाग ५ पृ० ३८;

की स्थापना हुई। भारतीयज्योतिषी एवं अलबेरूनी स्पष्ट लिखते है, १३५ वि० सं० में शकराज्य का अंत करने वाला विक्रमादित्य ही था, तब शकसंवत् का संबंध चष्टनादिकों या कनिष्क से जोड़ना विपरीत एवं मिथ्याबुद्धि का काम है।

पं० भगवद्दत्त गुप्तों का सम्बन्ध विक्रमसंवत् से जोड़ने का प्रयत्न करते रहे, परन्तु तथ्य को जानते हुए भी कि समुद्रगुप्त का राज्याभिषेक प्रसिद्ध विक्रमसंवत् (५७ ई० पू०) से ९३ वर्ष पश्चात् हुआ था, इस तथ्य को नहीं ग्रहण कर सके कि शकसम्वत् का प्रवर्तक समुद्रगुप्त का पुत्र चन्द्रगुप्त साहसांक था।[1]

अतः दो प्रधानगुप्तसम्राटों की तिथि निश्चित हो जाने पर शेष गुप्त-राजाओं की तिथियाँ सरलता से निश्चित हो सकती है। जिस प्रकार भारतयुद्ध की तिथि, (स्वायम्भुव से युधिष्ठिरपर्यन्त) सभी प्राचीन राजाओं की तिथि निर्णीत करने में परमसहायक हैं, उसी प्रकार चन्द्रगुप्त विक्रम (१३५ वि०) तिथि से युधिष्ठिर से हर्षपूर्वतक के राजाओं और घटनाओं की सभी तिथियाँ निश्चित हो जायेंगी। अब मालवगणस्थितिसंवत् और मन्दसौर के प्रसिद्ध भवन की तिथि भी सरलता से निकाली जा सकती है। समुद्रगुप्त का समय ९३ वि० सं० था, उसका राज्यकाल ४१ वर्ष, अर्थात् १३४ वि० सं० में समाप्त हुआ, कुछ मास के लिए उसका पुत्र रामगुप्त राजा बना। १३५ वि० सं० में रामगुप्त के कनिष्ठ भ्राता चन्द्रगुप्त ने शकवध और रामगुप्तवध करके उससे गद्दी छीन ली। उसने ३६ वर्ष राज्य किया, अतः उसके पुत्र कुमारगुप्त के समय १६१ वि० सं० में भवन बना और उसके ५२९ वर्ष बीतने पर ६९० वि० सं० में उसका जीर्णोद्धार हुआ। अतः एतदनुसार ३३२ वि० पू० से मालवगणसम्वत् का आरम्भ हुआ न कि ५७ ई० पू०।

---

१. पुरातन वंशावलियों में समुद्रपाल अर्थात् समुद्रगुप्त का राज्यकाल 'अवन्ति के विक्रमादित्य के ९३ वर्ष पश्चात् माना जाता है। इससे एक बात सर्वथा निश्चित होती है कि समुद्रगुप्त का राज्य विक्रम से ३८० वर्ष पश्चात् कभी नहीं था। फलीट ने अलबेरूनी के मत को बिगाड़कर यह कल्पना की है। अलबेरूनी का गुप्त-वलभी संवत् गुप्तों की समाप्ति पर आरम्भ होता है। अलबेरूनी के अनुसार गुप्तों के आरम्भ से चलने वाला गुप्तसंवत् और शक संवत् एक थे।" (भा० बृ० इ०, भाग १, पृ० १७२)

५

दीर्घजीवीयुगप्रवर्तक महापुरुष

प्राचीनमनुष्यों के दीर्घजीवन (दीर्घायु) और दीर्घराज्यकाल को बिना जाने और बिना माने प्राचीन सत्यइतिहास को नही जाना जा सकता, अतः यहाँ संक्षेप में सोदाहरण दीर्घजीवन पर प्रकाश डालते हैं।

दश विश्वसृज या दश ब्रह्मा

आधुनिकयुग मे प्राचीन भारतीय (प्राग्महाभारतीय) इतिहास को सम्यग् रूप मे न समझने का एक प्रधान कारण है प्राचीनमनुष्य के दीर्घजीवन पर अविश्वास। प्राचीन मनुष्य (विशेषतः देव और ऋषि[1]) योग एवं रसायन (अमृत) सेवन के द्वारा दीर्घायुपर्यन्त जीवित रहते थे। इनमे से आदिम दश विश्वसृजो या नव ब्रह्मा (नौ ब्रह्मा) या सप्तर्षि इतिहासपुराणो एवं वैदिकग्रन्थों में बहुधा उल्लिखित है—

> भृग्वाङ्गिरोमरीचीश्च पुलस्त्य पुलह क्रतुम्।
> दक्षमत्रिं वसिष्ठं च निर्ममे मानसान्सुतान्॥ (ब्रह्माण्ड १।२।९।१८)
> नव ब्राह्मण इत्येते पुराणे निश्चतं गताः॥
>
> (ब्रह्माण्ड १।२।९।१८, १९)

२१ प्रजापतियो की संज्ञा 'ब्रह्मा' थी, इनको स्वयम्भू भी कहा जाता था, ऐसे और भी अनेक ब्रह्मा थे, इनमे एक ब्रह्मा वरुण आदित्य था, जिसका परिचय इसी अध्याय में लिखा जायेगा।

उपर्युक्त नौ ब्रह्माओं के अतिरिक्त प्रजापति धर्म[2], प्रजापति रुचि[3] और

---

१. प्राचीन या आदिम युगों मे मनुष्य की तीन श्रेणियाँ थीं—
ततो वै मनुष्याश्च ऋषयश्च देवानां यज्ञवास्त्वभ्यायन (ऐ० ब्रा० ६।१);
त्रयः प्राजापत्या देवा मनुष्याः असुराः (बृ० उ० ५।२) प्रजापतिगण स्वयं ऋषि ही होते थे।

२. ततोऽसृजत्ततो ब्रह्मा धर्मं भूतसुखावहम्।

३. प्रजापतिं रुचिं चैव पूर्वेषामपि पूर्वजम्॥ (ब्रह्माण्ड० १।२।९।२०,

ब्रह्मसम प्रजापति स्वायम्भुव मनु[1] या बाइबिल के आदम—ये मिलाकर आदिम १२ प्रजापति या ब्रह्मा थे—

> इत्येते ब्रह्मण: पुत्रा प्रजाद्यौ द्वादशस्मृता: ।
> भृग्वादयस्तु ये तेषां द्वादश वंशा दिव्या देवगुणान्विता: ।
> द्वादशैते प्रसूयन्ते प्रजा: कल्पे पुनः पुनः ।। (ब्रह्माण्ड० १।२।९।२७)

इनके अतिरिक्त रुद्र (या नीललोहित) आदिम प्रजापतियों में से एक थे—

> अभिमानात्मकं रुद्रं निर्ममे नीललोहितम् । (ब्रह्माण्ड० १।२।९।२३)

क्योंकि ये आदिसृष्टा प्राणी थे, बुद्धि, जन्म, आयु में बड़े थे, अतः 'ब्रह्मा' कहे जाते थे । बुद्धि, महान्, ज्येष्ठ, ब्रह्मा, बृहत्, महत् आदि पद सभी पर्याय-वाची हैं—

> बृहद् ब्रह्म महच्चेति शब्दा पर्यायवाचका: ।
> एभि: समन्वितो राजन् गुणैर्विद्वान् बृहस्पति: ।।
> (महाभारत, शान्तिपर्व० ३३६।२)
>
> तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नम: । (अथर्ववेद १०।८।१)
> तस्मात् पुराबृहन् महान् अजनि । (काठक सं० ६।८)
> महाँ भूत्वा प्रजापति: । (श० ब्रा० ७।५।२।१)
> बृहत्या बृहन्निर्मितम् । (अथर्व० ८।९।४)
> महांस्तुसृष्टिं कुरुते नोद्यमान: सिसृक्षया । (वायु० ४।२७)
> महिनाजायतैकम् । (ऋ० १०।१२९।२)

इसी प्रकार सुभू, प्रभू, स्वयम्भू, प्रजापति, ब्रह्मा, पुरुष, आत्मभू नारायण, आदिदेव, परमेष्ठी, विश्वसृज, गरुत्मान्, ज्येष्ठ, महिष आदि पद वेदों और पुराणों में समानार्थक कहे गये हैं, जो सभी 'प्रजापति' के वाचक हैं ।

प्रजापतियो से आदिम प्रजाओ की सृष्टि हुई एवं वे प्रजाओं का पालन करते थे अतः प्रजापति कहलाते थे । विश्व (समस्त) प्रजा की सृष्टि इन्हीं प्रजापतियों से हुई, अतः वे विश्वसृज कहलाये—

> एतेन वै विश्वसृज इदं विश्वमसृजन्त तस्माद्विश्वसृज:
> विश्वमेनाननुप्रजायन्ते ।। (आप० श्रौतसूत्र २३।१४।१५)

अतः स्वयम्भू या ब्रह्मा एक ही नहीं था, जैसा कि भगवद्दत्त मानते हैं, ब्रह्मा अनेक थे । जहाँ कहीं पुराणों या वैदिकग्रन्थों में यह लिखा है कि अमुक आत्म

---

१. स वै स्वायम्भुव: पूर्वपुरुषो मनुरुच्यते । (१।२।९।३६)

ब्रह्मा, स्वयम्भू या प्रजापति ने ऋषियों से कहा, वहाँ यह कल्पना महान् भ्रम होगा कि वह आदिम स्वयम्भू ब्रह्मा ही था, यथा—

स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्रायप्राह ॥

(मुण्डक० १।१।१)

यहां पर ब्रह्मा वरुण आदित्य हैं क्योंकि भृगु या अथर्वा वरुण का ही ज्येष्ठ पुत्र था। इसी प्रकार निम्न विद्यावंशों में कौन-सा ब्रह्मा था, यह निश्चय करना कठिन है—

(१) ब्रह्मा स्मृत्वायुषोवेदं प्रजापतिमजिग्रहत् ।[1]

(२) प्रजापतिर्हि—अध्यायानां शतसहस्रेणाग्रे प्रोवाच ।[2]

(३) ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच ।[3]

(४) पुरा ब्रह्माऽसृजत् पंचविमानान्यसुरद्विषाम् ।[4]

(५) ब्रह्मणोक्त ग्रहगणितम् ।

जो विद्वान् मन्वन्तर को ३० करोड़ ६७ लाख २० सहस्र वर्ष का मानते हैं और यह मानते हैं कि अनेक ऋषियों ने लाखों-करोड़ों वर्ष[5] तपस्यायें कीं, हिरण्यकशिपु आदि ने तीन लाख वर्ष[6] राज्य किया, इत्यादि कथन कोरी गप्पें हैं।' इसी प्रकार युगपुराण के निम्न वचन प्रमाणहीन है कि कृतयुग में मनुष्य की आयु एक लाख वर्ष और त्रेता में दशसहस्रवर्ष होती थी—

शतवर्षसहस्राणि आयुस्तेषां कृतयुगे ।
दशवर्षसहस्राणि आयुस्त्रेतायुगे स्मृतम् ॥[7]

---

१. अष्टांगहृदय (१।३।४);

२. कामशास्त्र (१।१।५);

३. ऋक्तन्त्र (१।४);

४. समरांगणसूत्र, (पृ० ४६, भोजकृत);

५. पुरूरवा तया सह रममाणः षष्टिवर्षसहस्राणि (विष्णु० ४।६।४०)

६. पुराकृतयुगे राजन् हिरण्यकशिपुः प्रभुः ।
हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुदं वशी ।
तथा शतसहस्राणि ह्यधिकानि द्विसप्ततिः
अशीतिश्च सहस्राणि त्रैलोक्येश्वरोऽभवत् ॥ (वायु० ६७।८८-६१);

७. युगपुराण (पंक्ति १६, ४२);
शतं वर्षसहस्राणां निराहारोऽह्यवाक्शिराः । (ब्रह्माण्ड० २।३।३।१५)

इसी प्रकार बुद्धघोषकृत निदानकथाग्रन्थ में २५ बुद्धों की आयु लाख-लाख वर्ष या नब्बे सहस्र वर्ष बताई गई है (द्रष्टव्य निदानकथा—अनु० डा० महेश तिवारी), जैनशास्त्रों में भी तीर्थंकरों के आयुष्य का ऐसा ही वर्णन मिलता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीनग्रन्थों मे अनेक स्थानों पर सहस्र और शत पद निरर्थक भी हैं जहाँ आयु या राज्यकाल षष्टिसहस्र वर्ष बताया है वहाँ उसका अर्थ यह हो सकता है केवल साठ वर्ष अथवा द्वितीय पद्धति है उनको दिन मानना जैसा राम का राज्यकाल ११००० वर्ष था तो वास्तव में उन्होंने इतने दिनों राज्य किया, यह लगभग ३१ वर्ष होते हैं, दीर्घराज्यकालों पर भी विचार इसी अध्याय मे करेंगे।

पोंगापंथी पंडितों के अतिवादों के विपरीत, जो लोग दीर्घायु या दीर्घराज्य-काल मे विश्वास नही करते और अपने अनुमान या मनमानी कल्पना के अनुसार आयु या राज्यकाल का निर्णय कर लेते हैं, उनके अनुमान, अनुमानकोटि में नही, केवल धूर्त या भ्रष्ट कल्पनाएँ हैं अतः अप्रमाणिक हैं, यथा मैक्समूलर, पार्जीटर या रमेशचन्द्र मजूमदार आदि बिना किसी प्रमाण के राजाओं का राज्य-काल या ऋषिजीवन १८ वर्ष औसत मानते हैं—Pargiter worked out a detailed Synthesis and Sychronism of all the known dynasties. Taking Manu as c. 3100 B. c. (the date of the flood and Pariksit at about 1400 B. c.) a rough basic frame can be drawn which gives the reasonable age difference of 18 years per king.'[1]

इसी प्रकार डा० काशीप्रसाद जायसवाल, वासुदेवशरण अग्रवाल, स्व० चतुरसेन शास्त्री आदि ने तथाकथित औसतगणना द्वारा मनमाना कालनिर्णय किया है। यथा स्व० चतुरसेन शास्त्री स्वायम्भुव मनु की ४५ पीढ़ियों और ६ मनुओं का औसत २८ वर्ष मानकर सत्ययुग का काल ४५ × २८ = १२६० वर्ष, त्रेतायुग का १०९२ वर्ष और द्वापर का ३९२ वर्ष मानते थे।[2] और भी बहुत से लेखक इसी प्रकार औसत द्वारा आयु या राज्यकाल निकालते हैं, उनका मत किसी प्रकार भी प्रामाणिक नही माना जा सकता।

यह पहिले ही बता चुके हैं कि प्रजापति (ऋषिगण), और देवों की आयु अत्यन्त दीर्घ होती थी, सामान्यः प्रजापति ७००, या ७२० या एकसहस्रवर्ष

---

१. Date of Mahabharat Battle. p 61, S. B. Roy,

२. भारतीय संस्कृति का इतिहास—प्रारम्भिक अंश, ले० आचार्य चतुरसेन शास्त्री।

जीवित रहते थे और देवता ३०० सौ से ५०० वर्ष तक। कुछ अपवाद भी थे, जिनमें कश्यप जैसे प्रजापतिऋषि और इन्द्रतुल्यदेव अनेक सहस्रोंवर्ष तक जीवित रहे। इस दीर्घायुष्ट्व के रहस्य को न समझाकर पार्जीटर लिखता है—It is generally rishis who oppear on such occassion in defiance of chronology and rarely that kings appear[1] दीर्घयज्ञप्रसंग में जैमिनीय-ब्राह्मण (१।३) में कथन है कि प्रजापति ७०० वर्ष और देवों ने ३०० वर्ष में एक दीर्घसत्र को समाप्त किया।[2]

कल्पसूत्रकारों एवं दार्शनिकों में दीर्घसत्रयज्ञों के सम्बन्ध में विवाद होता था कि विश्वसृजों या प्रजापतियों के दीर्घसत्र कलियुग में कैसे सम्भव है जबकि इस समय मनुष्यो की दीर्घायु नही होती—

"सहस्रसंवत्सरं तमायुषामसंभवान्मनुष्येषु।"[3]

"सहस्रसंवत्सरं मनुष्याणामसम्भवात्।"[4]

कुछ आचार्यों के मत मे ये कुलसत्र[5] थे, अर्थात् एक ही कुल के वंशज क्रमशः यह यज्ञ करते रहते थे—पीढ़ी दर पीढ़ी, यथा आसुरिगोत्र के आचार्यों ने एकसहस्रवर्ष तक यज्ञ किया—

आसुरेः प्रथमं शिष्यं यमाहुश्चिरजीविनम्।
पंचस्रोतसि यः सत्रमास्ते वर्षसाहस्रिकम्॥[6]

कुछ लोग यज्ञ में सहस्रवर्ष का अर्थ सहस्रमास यासहस्र दिन लेते थे, परन्तु पूर्वयुगों मे प्रजापतियों की आयु अत्यन्त दीर्घ होती थी, अतः उन्होने वास्तविक सहस्र वर्षपर्यन्त यज्ञ किये थे, तभी यह यज्ञपरम्परा चली, ब्राह्मणवचनों के प्रमाण से यह तथ्य पुष्ट होता है।[7]

---

१. A. I. H. T. P. 41;

२. प्रजापतिसहस्रसंवत्सरमास्त।
स सप्तशतानिवर्षाणां समाप्येमामेवजितिमयजत्।
देवान्नब्रवीदेतानियूयं शतानि वर्षाणां समापयथेति॥ (जै० ब्रा० १।३)

३. जै० मी० सू० (६।७।११३),

४. का० श्रौ० (१।६।१७),

५. कुलसत्रमिति कार्ष्णाजिनिः (का० श्रौ० १।६।२२);

६. महा० (१२।२।८।१०),

७. जै० ब्रा० (१।३) तथा आप० श्रौ० का वचन द्रष्टव्य है—
'विश्वसृजः प्रथमाः सत्रमासत सहस्रसमं प्रसुतेन यन्तः।
ततो ह जज्ञे भुवनस्य गोपा हिरण्मयः शकुनिर्ब्रह्म नामेति॥ (२३।१८।१७)
ये प्रथम विश्वसृज् मरीचि, वसिष्ठादि ही थे।

यह विश्वजन, संप्तर्षि, २१ प्रजापति या नव ब्रह्मा—मरीचि, पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठादि तप और योग या जन्मसिद्धि से दीर्घजीवी थे, आदिम ऋषियों की आयु का कोई बन्धन नहीं था, वे सन्तान भी दीर्घायु पर्यन्त उत्पन्न करते रहे, यथा कश्यप ऋषि (प्रजापति) ने लगभग २००० वर्ष के दीर्घकाल के मध्य में देवासुरों एवं अन्य प्रजा को उत्पन्न किया।

स्वयम्भू=ब्रह्मा और स्वायम्भुव मनु की आयु—स्वयम्भू का इतिहास एक जटिल समस्या है। इतिहासपुराणों में अनेक प्रजापतियों को स्वयम्भू या ब्रह्मा कहा गया है और अनेकत्र ऋषियों को ब्रह्मा का मानसपुत्र कहा गया, जैसा कि त्रितादि के सम्बन्ध में लिख चुके हैं कि वे आङ्गिरस आप्त्य के पुत्र होने से 'आप्त्य' कहे जाते थे, परन्तु महाभारत (१२।३३६।२१) में उनको ब्रह्मा का मानसपुत्र कहा गया है, इस प्रकार के वर्णनों से स्वयम्भू ब्रह्मा के काल (समय) के सम्बन्ध में—भ्रम होना स्वाभाविक है। महाभारत, शान्तिपर्व (३४७।४०-४३) में ब्रह्मा स्वयं अपने सात जन्मों का वर्णन करते है—

> त्वत्तो मे मानसं जन्म प्रथमं द्विजपूजितम्।
> चाक्षुषं वै द्वितीय मे जन्म चासीत् पुरातनम्॥
> त्वत्प्रसादात् तु मे जन्म तृतीयं वाचिकं महत्।
> त्वत्तः श्रवणजं चापि चतुर्थं जन्म मे विभो॥
> नासिक्यं चापि मे जन्म त्वत्तः परमुच्यते।
> अण्डजं चापि मे जन्म त्वत्तः षष्ठं विनिर्मितम्॥
> इदं च सप्तमं जन्म पद्मजन्मेति वै प्रभो॥

अतः ब्रह्मा के न्यूनतम सात जन्म उपर्युक्त श्लोकों में वर्णित हैं—(१) मानस ब्रह्मा, (२) चाक्षुष ब्रह्मा, (३) वाचस्पत्य ब्रह्मा, (४) श्रावण ब्रह्मा, (५) नासिक्य ब्रह्मा, (६) हिरण्यगर्भ अण्डज ब्रह्मा और सप्तम (७) पद्मज कमलोद्भव ब्रह्मा।

कमलोद्भव ब्रह्मा—बाइबिल में इसी को मिट्टी (कर्दम=कीचड़) से उत्पन्न 'आदम' कहा है। अतः प्रथम मानव स्वयम्भू या आत्मभू (आदम) कीचड़-मिट्टी से कमल सदृश उत्पन्न हुआ।

Bible—"And the lord god formed man of the dust of the ground and breathed into his nostril the breath of life and man became a living soul. Holy Bible p. 6)

वर्तमान मानव का ज्ञात इतिहास सप्तम पद्मज ब्रह्मा से प्रारम्भ होता है। वर्तमानमानवसृष्टि से पूर्व न जाने कितनी बार मानवसृष्टि हुई होगी, इसे कौन

यानि, वेद के नासदीयसूक्त में कथन है—'अर्वाग् देवा:' जब देवता ही ब्रह्माण्ड (पृथ्वी) के उत्तरकाल में उत्पन्न हुए तब देवों से पूर्व के इतिहास को मनुष्य कैसे जान सकता है, फिर भी सात ब्रह्माओं की स्मृति इतिहासपुराणों में विद्यमान है, जिनसे सातबार मानवसृष्टि हुई। प्राणियों में ब्रह्मा सर्वप्रथम उत्पन्न हुये—

भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे (अथर्व० १८।२२।२१)
आकाशप्रभवो ब्रह्मा (रामायण २।११०।५)

ब्रह्मा=स्वयम्भू स्वयं आकाश में उत्पन्न हुए, अत: आदिमानव ब्रह्मा था, अत: मनुष्य आदिकाल से इसी रूप में था, जैसा आज है, इससे विकासवाद का पूर्ण खण्डन होता है। आत्मभू या स्वयम्भू का पुत्र होने से मनु को स्वायम्भुव मनु कहा जाता है। पं० भगवद्दत्त ब्रह्मा का समय भारतयुद्ध से ११००० वर्षपूर्व अथवा १४००० वि० पू० मानते थे—(१) 'ब्रह्माजी का काल भारतयुद्ध से न्यूनातिन्यून ११००० वर्ष पूर्व का है।"[१]

आदम या स्वायम्भुव की आयु बाइबिल मे ९३० वर्ष बताई गई है, जो सत्य प्रतीत होती है—"And all the days that Adam lived were nine hundred and thirty years (Holy Bible p. 9).

बाइबिल के आधार पर भविष्यपुराण मे 'आदम' को प्रथमपुरुष और हव्यवती (हौवा) को प्रथमस्त्री बताया गया है—

आदमो नाम पुरुषः पत्नी हव्यवती तथा।

अत: आदम स्वायम्भुव मनु था, स्वयं स्वयंभू नहीं। आदम का समय भी भविष्यपुराण में वैवस्वतमनु से १६००० वर्षपूर्व बताया गया है—

षोडशाब्दसहस्रे च शेषे तदा द्वापरे युगे।

यह गणना हमारी उपर्युक्त गणना से मेल खाती है कि स्वाम्यभुव मनु का समय विक्रम से लगभग तीस सहस्रवर्षपूर्व या वैवस्वतमनु से सोलहसहस्र वर्ष पूर्व था। मूल में स्वायम्भुवमन्वन्तर के ७१ परिवर्तयुग ही स्वायम्भुव मन्वन्तर कहे जाते थे—

१. भा० बृ० इ० भाग-२ (पृ० १८), वही भाग १ (पृ० २५७),
२. शरीरादसृजत्तस्य भार्यां समुत्पादितवाञ्छुभाम्। (हरिवंश १।१७।२२)
३. स वै स्वायंभुवः पूर्वपुरुषो मनुरुच्यते। लब्ध्वा तु पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् (ब्रह्माण्ड १।२।९।३६,३७)

स वै स्वायम्भुवस्तात पुरुषो मनुरुच्यते ।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ (हरिवंश० [illegible])
स वै स्वायम्भुवः पूर्वपुरुषो मनुरुच्यते ।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ (ब्रह्माण्ड० [illegible])

इन वर्षों को दिव्यवर्ष मानना और ७१ चतुर्युग मानना भ्रममात्र और कल्पनामात्र है ।

यह हम पूर्व संकेत कर चुके हैं कि आदिमब्रह्मा ही अनेक शास्त्रों का मूलप्रवक्ता था ।[1] वरुणादि को भी भ्रम से आदिब्रह्मा समझ लिया गया है, उत्तरकाल में विभिन्न युगों मे २१ प्रजापतियों एवं १४ सप्तर्षिगणों ने शनैः-शनैः प्रारम्भिकशास्त्रों की रचना की, उन्हें भ्रमवश आदिब्रह्मा के मत्थे मढ़ दिया है । उदाहरणार्थ छान्दोग्योपनिषद् (३।११।४) का यह विद्यावंश द्रष्टव्य है—"तदेतद् ब्रह्मा प्रजापतये प्रोवाच प्रजापतिर्मनवे, मनुः प्रजाभ्यः ।" यहाँ प्रजापति विवस्वान् की ओर संकेत है, मनु वैवस्वत मनु थे, जो पंचम परिवर्त में हुए । यहाँ ब्रह्मा स्वयं कश्यप का अभिधान संकेतित है, इसी परम्परा को गीता मे वासुदेव कृष्ण इस प्रकार कहते हैं—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥[2] (गीता ४।१)

उपर्युक्त श्लोक मे 'अहम्' (श्रीकृष्ण) स्वयं ब्रह्मा कश्यप ऋषि थे और विवस्वान् उनके पुत्र तथा उनके पुत्र मनु वैवस्वत तथा पुत्र इक्ष्वाकु आदि (प्रजा) ।

अतः ब्रह्मासम्बन्धीसमस्या अत्यन्त जटिल है । पं० भगवद्दत्त ने छान्दोग्य-प्रसंग मे ब्रह्मा स्वयम्भू को और प्रजापति, कश्यप को माना है, जो अलीक एवं अनुचित है, क्योंकि विवस्वान् स्वयं एक महान् प्रजापति थे, जिन्होंने अपने दोनों पुत्रों यम और मनु को शिक्षा दी ।

पं० भगवद्दत्त सभी प्रजापतियों को एक ब्रह्मा मानकर लिखते हैं—"ब्रह्मा पितृयुग और तत्पश्चात् देवयुग मे जीवित थे ।"[3] देवयुग के ब्रह्मा कश्यप

---

१. द्रष्टव्य भा० बृ० इ० भाग २ (अध्याय श्री ब्रह्माजी), यह कुछ शास्त्रों का प्रवक्ता अवश्य था, पुराण और हिब्रू ग्रन्थों से पुष्ट होता है ।

2. Son and father walked together...Son of Vivahvat, great yim (Avesta).

३. भा० बृ० इ० भाग २ (पृ० २७).

प्रजापति थे, स्वयम्भू ब्रह्मा नहीं।

बाइबिल में आदम (स्वयम्भू ब्रह्मा या स्वायम्भुव मनु) की आयु १३० वर्ष बताई है, तदनुसार भविष्यपुराण में लिखा है—

"त्रिंशोत्तरं नवशतं तस्यायुः परिकीर्तितम्।"

यदि आदम स्वायम्भुव मनु था तो उसकी यही (९३० वर्ष) आयु थी, देवासुर युद्ध में न स्वयम्भू जीवित था और न स्वायम्भुव मनु।

वरप्रदपितामहसम्बन्धी भ्रान्ति का निराकरण—इतिहासपुराणों में बहुधा चर्चा मिलती है कि पितामह ब्रह्मा ने अमुक असुर या राक्षस या राजा को तपस्या से प्रसन्न होकर वर दिया, यथा रामायण में पितामह, रावणादि को वर देते हैं—

पितामहस्तु सुप्रीतः सार्धं दैवैरुपस्थितः

एवमुक्त्वा तु तं राम दशग्रीवं पितामहः।

विभीषणमथोवाच वाक्यं लोकपितामहः।[1]

इसी प्रकार पितामह असुरों यथा हिरण्यकशिपु आदि को वर देते हैं—

चराचरगुरुः श्रीमान्वृतो देवगणैः सह।

ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत्।"[2]

इत्यादि प्रसंगों में पितामह असुरों के पिता कश्यप या पुलस्त्यादि को ही समझना चाहिए, क्योंकि राक्षसों के पितामह पुलस्त्य या पुलस्ति थे, (आदि पुलस्त्य नहीं, विश्रवा के पिता पुलस्त्यवंशीय ऋषि) और असुर दैत्यों के पिता या पितामह कश्यप थे, वे ही प्रायः देवदानवों को वरदान देते थे, यथा अदिति, दिति, कद्रू, विनता आदि को उन्होंने ही वर दिये थे—

दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम्।

तां कश्यपः प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया।

वरेणच्छन्दयामास सा च वव्रे वरं ततः॥

(हरिवंश १।३।१२३-१२४)

अतः ऐसे प्रसंगों पर पितामह ब्रह्मा स्वयम्भू नहीं तत्कालीन पूर्वज प्रजापति को समझना चाहिए और कुछ प्रसंगों में तो ब्रह्मा का अर्थ है विद्वत्तम (ब्रह्मज्ञानि) यथा रामायण में आदिकवि वाल्मीकि और महाभारत में पाराशर्य व्यास को उनकी रचनाओं में सन्तुष्ट ब्रह्मा आशीर्वाद देते हैं, यथा—

---

१. रामायण (७।१०।१३,२६,२७)

२. हरिवंश (३।४१।१०)।

आजगाम ततो ब्रह्मा लोककर्ता स्वयं प्रभुः ।
वाल्मीकये च ऋषये संदिदेशासनं ततः ।

(रामा० १।२।२४,२६)

तस्य तच्चिन्तितं ज्ञात्वा ऋषेर्द्वैपायनस्य च ।
तत्राजगाम भगवान् ब्रह्मा लोकगुरुः स्वयम् ॥

(महा० १।१।५६,५७)

उपर्युक्त प्रसंगों में ब्रह्मा किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं और आदिब्रह्मा स्वयम्भू का तो कतई नहीं। विद्वानों या ब्राह्मणों द्वारा उनकी कृति को मान्यता देना ही यहाँ 'ब्रह्मा' से अभिप्रेत है।

दश विश्वसृज, नवब्रह्मा या सप्तर्षियों की आयु—उपर्युक्त, जो विवेचन स्वयम्भू ब्रह्मा के सम्बन्ध है, लगभग वही—मरीचि, भृगु, पुलस्त्य, अंगिरा, पुलह, क्रतु, अत्रि, दक्ष और मनु के सम्बन्ध में समझना चाहिए, जो विश्वसृज, ब्रह्मा या सप्तर्षि इत्यादि विभिन्न नामों से अभिहित किये जाते हैं, ये भी वरद, ईश्वर, पितामह और ब्रह्मा कहे जाते थे, ये ही वेदमंत्रों के आदिस्रष्टा या द्रष्टा थे। इन सब महर्षियों या प्रजापतियों में प्रत्येक की आयु एक-एक सहस्र वर्ष से अधिक अवश्य थी। बाइबिल में आदिम प्रजापतियों की आयु ९०० से १००० वर्ष तक कथित है। क्योंकि इन्होंने सहस्रोंवर्षों तक तप या यज्ञ किये—

प्रजापतिः सहस्रसंवत्सरमास्त। (जै० ब्रा० १।३)
विश्वसृजः प्रथमाः सत्रमासत सहस्रसमम्···।"

(आ० श्रौ० २३।१४।१७)

उपर्युक्त दश प्रजापतियों में देवासुरयुग पर्यन्त कोई भी जीवित नहीं था, प्रजापतियुग २५०० वर्ष का था, इसी प्रजापतियुग में अधिकांश आदिम प्रजापति-दिवंगत हो चुके थे, मरीचि के किसी देवासुरसम्बन्धी घटना में दर्शन नहीं होते। देवासुरजनक कश्यप यदि साक्षात् मरीचि के पुत्र थे, तब पितापुत्र दोनों की आयु दश-सात सहस्र वर्ष माननी पड़ेगी और यदि देवासुरयुग से पूर्व की [illegible] एक वंश का नाम था तो कश्यप साक्षात् मरीचि के पुत्र न होकर वंशज ही हों, अतः मारीच कहलाते थे, तो इन दोनों की आयु कुछ न्यून हो सकती है, फिर भी इनकी आयु सहस्रोंवर्ष अवश्य थी।

यह भी सम्भव है कि उपर्युक्त दश विश्वसृज या प्रजापति विभिन्न युगों में हुए हों, यथा षष्ठ मनु प्रजापति चक्षु के पौत्रों का नाम अंगिरा और अत्रि

था, जो वेन के पिता और निषध एवं पृथु के पितामह थे,[1] देवयुग में इसी अंगिरा के वंशज बृहस्पति आदि आंगिरस ऋषि हुए। आदिम अग्नि के ज्येष्ठ-पुत्र थे स्वायम्भुव मनु के पुत्र उत्तानपाद। अतः आदिम सप्तर्षियों या प्रजापतियों का कालनिर्णय एक दुष्कर कर्म है।

ध्रुव—यह भी एक दीर्घजीवी और युगप्रवर्तक महापुरुष थे, हरिवंश-पुराणानुसार ध्रुव ने तीन सहस्रवर्षपर्यन्त तप किया—

ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि भारत।
तपस्तेपे महाराज प्रार्थयन् सुमहद् यशः॥ (१।२।१०)

ध्रुव ने निश्चय ही दीर्घकालतक राज्य किया होगा, इसकी अतिमात्रवृद्धि महिमा और यश के गीत असुरगुरु शुक्राचार्य ने गाये थे।[2]

परन्तु ध्रुव का भक्तिचरित प्रमाणिक पुराणपाठों से आकाशकुसुम और काल्पनिक वस्तु ही सिद्ध होता है।

ऋषभदेव—जैनों के आदितीर्थंकर प्रियव्रत के प्रपौत्र और नाभि के पुत्र थे, वे निश्चय ही अत्यन्त दीर्घजीवी पुरुष थे। जैनग्रन्थों में मरीचि ऋषि को तपोभ्रष्ट मुनि के रूप में चित्रित किया है, जिन्होंने ऋषभ के विरुद्ध विद्रोह किया। यह साम्प्रदायिक वर्णन है, परन्तु इससे यह सिद्ध होता है कि ऋषभ और मरीचि में धार्मिक मतभेद तो थे ही और वे समकालिक थे।

ऋषभ ने न केवल दीर्घकाल तक राज्य किया, बल्कि दीर्घकाल तक तपस्या भी की, भरत और बाहुबली इनके पुत्र थे।

कपिल (सांख्यप्रणेता)—अनेक कपिलों में—आदिविद्वान् महर्षि कपिल विरजा (प्रजापति) के प्रपौत्र एवं कर्दम के पुत्र थे, इनकी माता का नाम देव-हूति था। ये अत्यन्त दीर्घजीवी पुरुष थे, सगरकाल तक ही नहीं भारतयुद्ध से कुछ शती पूर्व आसुरि महायाज्ञिक को इन्होंने अपना प्रधान शिष्य बनाया। अतः इस दृष्टि से इनकी न्यूनतम आयु चौबीस सहस्रवर्ष निश्चित होती है, यदि इन्होंने सिद्धरूप में या निर्माणकाय बनाकर आसुरि को उपदेश दिया तो और बात है, जैसा कि पं० गोपीनाथ कविराज उन्हें केवल सिद्धपुरुष के रूप

---

1. सोऽभिषिक्तो महाराजो देवैरंगिरसस्सुतैः।
आंगिरसो महाराजः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्॥ (वायु० ६२।१३६)
2. तस्यातिमात्रमृद्धिं च महिमानं निरीक्ष्य च।
देवासुराणामाचार्यः श्लोकमप्युशना जगौ॥ (हरि० १।२।१२)

में मानते हैं।[१] पं० उदयवीर शास्त्री ने पं० गोपीनाथ कविराज के मत की बहुत ऊहापोह की है कि कपिल ने बिना शरीर के आसुरि को किस प्रकार उपदेश दिया होगा। यदि जन्मसिद्ध और सर्वश्रेष्ठ सिद्ध[२] कपिल 'निर्माणचित्त' नहीं बना सकते तो उदयवीर शास्त्री को समझना चाहिए कि योगसिद्धियाँ सब कल्पना और ढकोसला है जिनका स्वयं शास्त्रीजी ने विस्तार से वर्णन किया है, अन्यथा कपिल के 'निर्माणचित्त' को एक ऐतिहासिक तथ्य स्वीकार करना पड़ेगा। सरस्वती के विनाश के आधार पर[३] पं० उदयवीरशास्त्री कपिल का समय विक्रम से लगभग १८ या २० सहस्र वर्ष पूर्व मानते हैं, जैसा कि श्री अविनाशचन्द्रदास ने अपनी पुस्तक 'ऋग्वैदिक इण्डिया' में भौगोलिक रूप से प्रमाणित किया है, अतः स्वायम्भुव मनु, कर्दम और कपिल का समय अबसे न्यूनतम बीससहस्रवर्ष पूर्व था, जबकि सप्तसिन्धुप्रदेश में सरस्वतीनदी बहती थी।

यदि कपिल ने अपने भौतिक शरीर से ही आसुरि को सांख्य का उपदेश दिया जैसा कि उदयवीर शास्त्री मानते हैं तो उनकी आयु चौबीससहस्रवर्ष की माननी पड़ेगी, यदि निर्माणचित्त[४] या सिद्धरूप मे उपदेश दिया, तब भी सगरकाल तक कपिल जीवित रहे फिर भी आठ-नौ हजार वर्ष तो उनकी आयु, अवश्य थी। इतनी आयु, जन्मसिद्धयोगी, जो सर्वोत्तम योगी था, के लिए असम्भव नहीं है।

सोम—दक्ष के नाना अथवा दक्ष का मातामह सोम उसके जामाता सोम से पृथक् हो सकता है। और श्वसुर सोम[५] निश्चय दीर्घजीवी व्यक्ति थे। दक्ष की २७ नक्षत्रनाम्नी रोहिणी आदि कन्यायें सोम की पत्नी थी, पुनः सोम की

---

१. Before he had plunged into निर्वाण, कपिल furnished himself with a सिद्धदेह and appeared before आसुरि to impart to him the Secret of सांख्यविद्या (सांख्यदर्शन का इतिहास पृ० २८ पर उद्धृत उदयवीर शास्त्री)

२. सिद्धानां कपिलो मुनिः (गी० १०।२६),

३. श० ब्रा० (१।४।१।१०-१७),

४. "आदिविद्वान् निर्माणचित्तमधिष्ठाय कारुण्याद् भगवान् परमर्षिरासुरये तन्त्रं प्रोवाच।" (व्यासभाष्य),

५. कथं प्राचेतसत्वं स पुनर्लेभे महातपाः।
दौहित्रस्य सोमस्य कथं श्वसुरतां गतः (हरिवंश १।२।२३)

पुत्री मारिषा से दश प्रचेताओं ने दक्ष को उत्पन्न किया। अतः दक्ष सोम के श्वसुर और नाना (मातामह) दोनों ही थे। सोम के पिता, यदि आदिम अत्रि थे, तो सोम की आयु चारसहस्र वर्ष से कम नहीं थी, क्योंकि आदिम अत्रि उत्तानपाद के पालक थे[1] और सोम के पुत्र बुध वैवस्वत मनु के समकालिक थे। उत्तानपाद से बुध या मनु पर्यन्त, पुराणों में ४८ पीढ़ियाँ कथित हैं, परन्तु पुराणों में ये प्रधान पुरुष[2] ही कथित हैं, न्यूनतम ७१ पीढ़ियाँ थीं, जैसा कि मन्वन्तर में ७१ मानुषयुगों की गणना से सिद्ध है। सम्भावना है कि सोमपिता अत्रि आदिम अत्रि नहीं थे, उनके वंशज थे, क्योंकि प्रत्येक ऋषिनाम प्रायः गोत्रनाम से ही प्रथित होता था, अतः सोमपिता अत्रि आदिम नहीं थे। तो भी सोम की आयु सहस्राधिक वर्ष अवश्य होगी।

कश्यप—यदि मारीच (मरीचिपुत्र या वंशज) कश्यप को साक्षात् मरीचि का पुत्र माना जाय तो प्रजापतियुग से देवयुग तक ही नहीं मानुषयुगों-कृतयुगान्त पर्यन्त जीवित रहने वाले महर्षि प्रजापति कश्यप की आयु आठ सहस्रवर्ष से कम नहीं होगी। यदि मरीचि के वंशज भी मारीच कहे जाते थे, तब भी कश्यप की आयु पाँचसहस्र वर्ष अवश्य थी। बाइबिल का केनान और महालील (मारीच), ईरानियों का आदिपुरुष केओमर्ज (कश्यप मारीच)[3] यही कश्यप हो सकता है—दृष्टव्य बाइबिल—And all the days of cainan were nine hundred and ten years and he died (Holy Bible p. 9). "And all the days of Mahalel were eight hundred ninty and five years (वही पृष्ठ) सम्भावना है कि मारीच और कश्यप गोत्रनाम थे, क्योंकि स्वायम्भुवमन्वन्तर के कुछ शती पश्चात् होने वाले स्वारोचिष मन्वन्तर के सप्तर्षियों में एक काश्यप ऋषि भी थे, जो देवासुरपिता कश्यप से सहस्रोंवर्ष पूर्व हुए। काश्यप को ही कश्यप भी कहा जाता था। कश्यप का काश्यप ऋषि से उत्तरकालीन होना सिद्ध करता है कि एक गोत्रनाम था और कश्यप ही एक मात्र मारीच या एकमात्र कश्यप नही थे, अतः मारीच (मरीचिपुत्र) कश्यप अनेक थे, अर्थात् मारीच या कश्यप एक गोत्रनाम था। प्रजापतियुग के उत्तरकाल में कश्यप एक सर्वाधिक महत्तम प्रजापति थे, जिन्हें प्रायः ब्रह्मा कहा जाता था,

---

१. उत्तानपादं जग्राह पुत्रमत्रिः प्रजापतिः। (हरि० १।२।७)

२. नाम्नां बहुत्वाच्च साम्याच्च युगे युगे (ब्रह्माण्ड०)
एतेषां वक्ष्यामि वै तवानयं प्रमाणतः। बहुत्वात्परिसंख्यातुं पुत्रपौत्रम-नन्तकम्। (ब्रह्माण्ड० १।२।१३।१५०)।

३. A History of Persia Vol I p. 133)

इनसे देव, असुर, नाग, गन्धर्व और सुपर्ण-संज्ञक जनजन आदियाँ उत्पन्न हुईं जिन्होंने समस्त भूमण्डल पर दीर्घकालपर्यन्त शासन किया, इन्हीं के एक पुत्र विवस्वान् आदित्य के पुत्र वैवस्वत मनु के वंशजों ने सम्पूर्ण भारतवर्ष पर चिरकाल तक शासन किया, वस्तुतः भारतवर्ष का इतिहास वैवस्वतमानववंश का इतिहास है।

नारद—देवर्षि नारद पूर्वजन्म में परमेष्ठी प्रजापति के पुत्र थे, पुनः वे दक्ष के पुत्र हुए अथवा कश्यप के पुत्र हुए, अतः नारद दक्षपुत्रों के भ्राता थे।[१] नारदजन्म एक जटिल समस्या है, उसी प्रकार उनका दीर्घायु भी एक परम जटिल प्रहेलिका है। दक्षकश्यप से श्रीकृष्णपर्यन्त[२] (प्रजापतियुग से द्वापरान्त) जीवित रहने वाले देवर्षि नारद की आयु दशसहस्रवर्ष से अधिक निर्णीत होती है। इन्हीं देवर्षि नारद ने राजा सृंजय को षोडशराजोपाख्यान[३] सुनाया था। इससे पूर्व देवर्षि ने मानव हरिश्चन्द्र को उपदेश दिया था।[४] नारद का भागिनेय पर्वत (हिमालय) भी दीर्घजीवी ऋषि था। इसी पर्वत की पुत्री पार्वती महादेव की द्वितीय पत्नी थी। नारद के उपदेश से पर्वत (राजा) परिव्राजक ऋषि बन गया था।[५]

महादेव शिव—दक्ष की दशपुत्रियों का विवाह धर्मप्रजापति से हुआ, उनमें से वसु नामी पत्नी से साध्यगण, ध्रुव और एकादश रुद्र उत्पन्न हुए। इनमें महादेव शिवरुद्र प्रधान थे, कालिदास के समय मे शिव अलक्ष्यजन्मा[६] माने जाते थे, इनके माता-पिता का नाम विस्मृत सा हो गया था। कालिदाससदृश महाकवि दक्षपुत्र पर्वतराज को नगाधिराज हिमालय (पत्थर का पहाड़) समझते थे, जो कि नारद का भागिनेय और दक्ष पार्वति[७] (द्वितीय दक्ष) का पिता था। यह पुराणो मे कश्यपपुत्र भी कहे गये हैं।

इनकी दीर्घायु इतिहासपुराणों से प्रमाणित हैं।

---

१. यं कश्यपः सुतवरं परमेष्ठी व्यजीजनत्।
दक्षस्य दुहितरि दक्षशापभयान्मुनिः (हरि० १।३।६)

२. विनाशशंसी कंसस्य नारदोमथुरां ययौ। (हरि० २।१।१)

३. शान्तिपर्व (३०-३१)

४. हरिश्चन्द्रो हवैधसः तस्य ह पर्वतनारदौ गृह ऊषतुः (ऐ० ब्रा० ८।१)

५. नारदो मातुलश्चैव भागिनेयश्च पर्वतः (महा० १२।३०।६)

६. कुमारसम्भवआरम्भ

७. ब्र० ब्रा० (२।३।४।१-६)।

स्कन्द सनत्कुमार—इन्हीं को कार्तिकेय कहा जाता है, ये भी नीललोहित (शिव) के ज्येष्ठ पुत्र थे—

अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः ।
स्कन्दः सनत्कुमारश्च सृष्टः पादेन तेजसः ॥

(हरि० १।१३।४३)

छान्दोग्योपनिषद् में भी सनत्कुमार को ही स्कन्द कहा गया है—'तं स्कन्द इत्याचक्षते (छा० उ०); इनके ही चार भ्राताओं को सनत्, सनातन सनन्दन, सनत्कुमार या शाख, विशाख, नैगम और सनत्कुमार कहते हैं। इन्होंने पंचम तारकाख्य देवासुर संग्राम[1] में देवसेनाओं का सेनापत्य किया था। नारद को सनत्कुमार ने ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया। ये सब देवयुग से पूर्व की घटनायें हैं, जबकि इन्द्रादि का जन्म नहीं हुआ था। इतिहासपुराणों में सनत्कुमार का दीर्घायुष्य प्रमाणित है। गीता में इनको सप्तर्षियों से पूर्व का ऋषि माना है।[2]

वरुण आदित्य—मुण्डकोपनिषद्[3] मे वरुण को 'ब्रह्मा कहा गया है, जिन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा (भृगु) को ब्रह्मविद्या प्रदान की। आचार्य-चतुरसेन शास्त्री ने बाइबिल के प्रमाण से लिखा है कि प्रजापति वरुण ने ही पृथ्वी को दो भागों में विभक्त किया।[4] प्रकारान्तर से म० म० पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी ने भी यही लिखा है कि सिन्धु नदी के उत्तर का सम्राट वरुण और दक्षिणी भाग (भारतवर्ष) का सम्राट इन्द्र था।[5] इतिहासपुराणों और पारसी धर्मग्रन्थ जेन्दावेस्ता से भी उपर्युक्त मत की पुष्टि होती है कि पाताल या समुद्र का अधिपति वरुण था—अपां तु वरुणं राज्ये' (हरि० १।४।२), अदितिपुत्र आदित्यों या देवों में प्रथम या ज्येष्ठ था, इसीलिए पारसी इसको असुरमहत् (अहुरमज्दा) कहते थे, वह पश्चिमीदेशों—ईरान (पातालादि) का प्रथम शासक था, यूरोप, अफ्रीका और अरब देशों तक इसका साम्राज्य फैला

---

१. संग्रामः पंचमश्चैव सुघोरस्तारकामयः । (वायुपुराण)

२. महर्षयः सप्तपूर्वे चत्वारो मनवस्तथा (गीता १०।६);

३. मु० (१।१।१),

४. The next act. of the Dicty was to make a division (ordial), This operation divided the waters into Two parts as well as into two States (Genesis I).

५. भारतीय संस्कृति और वैज्ञानिकविज्ञान

कुमार। वरुण के पौत्र मयासुर या विश्वकर्मा ने अमेरिका में मयराज्य की स्थापना की। वर्तमान अरब ही वरुण की प्रजा – प्राचीन गन्धर्व थे। आज भी अरब अपना पूर्वज यादसांपति या दाऊ या ताऊ को मानते हैं। अथर्ववेद या छन्दोवेद (जेन्दावेस्ता) का प्रवर्तक भी वरुण था। वरुण और उनके पुत्र भृगु दैत्यराज हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष के पुरोहित थे। वरुण राज्यशासन के साथ-साथ महान् पौरोहित्यकर्म भी करते थे, इनकी राजधानी सूषानगरी के अवशेष ईरान में मिले हैं। वरुण ने यम से पूर्व पातालदेशों में दीर्घकाल तक राज्य किया था।

विष्णु—आदित्यों में विष्णु थे कनिष्ठ, परन्तु थे परमतेजस्वी। इनकी आयु परमदीर्घ प्रतीत होती है। विष्णु के साथ ही इनके वैमातृज भ्राता कश्यपात्मज वैनतेय गरुड़ भी दीर्घजीवी थे। पुराणों में गरुड़ का अस्तित्व पाण्डवों और श्रीकृष्णपर्यन्त प्रदर्शित किया गया है, परन्तु यह प्रमाणित तथ्य नहीं है।

मय विश्वकर्मा—शुक्र का पौत्र और त्वष्टा का पुत्र मयासुर दीर्घजीवी था। परन्तु देवासुरयुगीन मय और पाण्डवकालीन मय एक नहीं हो सकते, जैसा कि पं० भगवद्दत्त उन्हें एक मानते थे।[1] मय एक आलिगम या वंशगत नाम था, एक मय दाशरथि के समकालीन रावण का श्वसुर था, जो दशरथकालीन देवासुर संग्राम में मारा गया।[2] रामायणकालीन मय की पत्नी हेमा और पुत्री मंदोदरी थी, यह प्रसिद्ध ही है। अतः मय अनेक थे, परन्तु आदिम मय दीर्घजीवी अवश्य था, जिसने मिस्र, अमेरिका आदि में भवन (पिरामिड आदि) बनाये। यह विवस्वान् का शिष्य और श्वसुर था।

अगस्त्य—ऋग्वेद (१।१७०।१) में अगस्त्य और इन्द्र का संवाद है—अगस्त्य इन्द्राय हविर्निरूप्य मरुद्भ्यः संप्रदित्सांचकार स इन्द्र एत्य परिदेवयांचक्रे।[3] अगस्त्य ने नहुष को शाप दिया था। अगस्त्य मित्रावरुण का पुत्र था। इसको दाशरथिरामपर्यन्त जीवित बताया गया है। परन्तु यह भी गोत्र नाम था, तथापि देवयुगीन अगस्त्य दीर्घजीवी पुरुष होगा।

अश्विनीकुमार—ये विवस्वान् के पुत्र देवभिषक् और अन्तरिक्षचारी देव थे, इन्होंने च्यवनभार्गव को चिरयौवन दिया, ये सुदीर्घकालपर्यन्त जीवित रहे।

---

१. इ० भा० वृ० इ० भाग १ (पृ० १४६),
२. रामायण (३।२१),
३. निरुक्त (१।३।५),

दीर्घजीवी सप्तर्षि— वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, अत्रि, जमदग्नि, कश्यप और भरद्वाज वैवस्वतमन्वन्तर के सप्तर्षि माने गये हैं, इनमें कश्यप साक्षात् न होकर उनका पुत्र वत्सार,[1] सप्तर्षियों के अन्तर्गत था न कि स्वयं देवासुरपिता प्रजापति कश्यप, अत: कश्यप के स्थान पर 'काश्यप' पाठ होना चाहिये ।

दत्तात्रेय—हैहय अर्जुन को वर देने वाले अत्रिवंशीय दत्तात्रेय विष्णु के चतुर्थ अवतार माने जाते थे, ये दशम त्रेतायुग[2] (परिवर्त) में हुए, हैहय अर्जुन का विनाश उन्नीसवें त्रेता में हुआ, अत: दत्तात्रेय भी दीर्घतमा मामतेय के तुल्य दशयुगपर्यन्त (मानवयुग नहीं, दिव्य दशयुग) अर्थात् ३६०० वर्ष जीवित रहे ।

हनुमदादि—पुराणों मे हनुमान्, विभीषण, कृप, अश्वत्थामा आदि को चिरंजीवी कहा गया है, निश्चय ही हनुमदादि पुरुष दीर्घकाल तक जीवित रहे। महाभारत वनपर्व में हिमालयपर्वत पर भीमसेन की पवनात्मज हनुमान् से भेंट हुई, अतः हनुमान् द्वापरान्तपर्यन्त अवश्य विद्यमान थे अर्थात् २५०० वर्ष जीवित रहे । अन्य विभीषणादि की आयु का हमें ज्ञान नहीं है ।

परशुराम—जामदग्न्य परशुराम का जन्म हरिश्चन्द्रकालीन विश्वामित्र से एक दो पीढी पश्चात् हुआ सभवत अष्टादश परिवर्तयुग में अर्थात् ७५०० वि० पू० और उन्नीसवें युग (७२०० वि०पू०) मे इन्होंने हैहयअर्जुन का वध किया। दाशरथि राम (द्वापरादि) एवं पाण्डवों के समय तक परशुराम का अस्तित्व ज्ञात होता है, अत: परशुराम न्यूनतम चार हजार वर्ष तक जीवित रहे, जो परमाश्चर्यजनक घटना प्रतीत होती है । परशुराम एक ही थे, अनेक की कल्पना व्यर्थ है ।

दीर्घजीवी व्यासगण

इनमें से निम्न सात व्यासों का किंचित् इतिहास ज्ञात है, जिससे प्रतीत होता है कि वे अतिदीर्घजीवी थे—(१) उशना, (२) बृहस्पति, (३) विवस्वान्, (४) वैवस्वतयम, (५) इन्द्र, (६) वसिष्ठ और (७) अपान्तरतमा ।

उशना—देवासुराचार्य शुक्राचार्य आयु मे देवगुरु बृहस्पति से बड़े थे - इनका जन्म हिरण्यकशिपु के समय में ही हो गया था और बलि और बाण के समय सप्तम युग तक जीवित रहे, अतः इनकी आयु ७ युग (दिव्ययुग) अर्थात्

---

१. वत्सारश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ ।
वत्सारान्निध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्च स महायशाः ॥ (वायुपुराण),

२. त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह । (वही)

२५०० न्यूनतम अवश्य थी। ये तृतीय व्यास थे। ये भृगुवंशीय ब्राह्मणों के शासक बनाये गये—

भृगूणामधिपं चैव काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत् ।[1]

बृहस्पति—देवगुरु[2] आङ्गिरस का जन्म प्रजापतियुग के अन्त और देवयुग के प्रारम्भ में हो चुका था। अंगिरा के वंशजों और बृहस्पति के पूर्वजों ने आदिराजा पृथु वैन्य का अभिषेक किया था।[3] बृहस्पति की आयु उशना से किंचित् ही न्यून थी। ये भी सप्तम-अष्टम परिवर्तयुग पर्यन्त जीवित रहे, इनकी आयु दो सहस्र वर्षों से अधिक होगी, सम्भव है कि बृहस्पति की आयु वक्ष्यमाण सप्तम व्यास इन्द्र की आयु के ही तुल्य हो, जो लगभग दशयुग (३६०० वर्ष) पर्यन्त जीवित रहा।

विवस्वान्—मुख्यतः विवस्वान् की प्रजा ही आदित्य कहलाती थी। इनके वंशज भारत के प्रमुख शासक बने—(१) देवा आदित्याः। विवस्वानादित्यस्तस्येमाः प्रजाः।[4] विवस्वान् पंचमत्रेतायुग (परिवर्त) के व्यास थे, यद्यपि इनका जन्म इससे पूर्व द्वितीय युग में हो चुका था। अतः इनकी आयु देवराज इन्द्र से कुछ ही न्यून होगी, लगभग २०० वर्ष कम। इनके प्रमुख पुत्र—यम, मनु और अश्विनीकुमार थे, जो सभी परमदीर्घजीवी और देवपुरुष एवं प्रजापति हुए।

अवेस्ता में जहाँ वैवस्वत यम का राज्यकाल १२०० वर्ष लिखा है, उधर बाइबिल में वैवस्वतमनु नूह (Nooh) की आयु आदि का विवरण द्रष्टव्य है—

(१) मनु की आयु जब ५०० वर्ष की थी, तब उसके तीन पुत्र उत्पन्न हुए—"And Nooh was five hundred years old and Nooh begot Sham Ham and Jopheth".

बाइबिल का वर्णन पुराण से सर्वथा भिन्न है, जहाँ मनु के इलासहित दशपुत्र (इक्ष्वाकु इत्यादि) कथित हैं। प्रतीत होता है कि भ्रान्ति से अत्रिपुत्र सोम का बाइबिल में मनुपुत्र साम (Sham) के नाम से उल्लेख है। हाम—

---

१. वायु (७०।४),
२. बृहस्पतिर्देवानां पुरोहित आसीद्, उशना काव्योऽसुराणाम् ।
(जै० ब्रा० ३।१२५)
३. सोऽभिषिक्तो महाराजो देवैरंगिरससुतैः । (वायु ६२।१३६);
४. श० ब्रा० (३।१।३।५),

हेम हो सकता है अनुवंशज और तथाकथित तृतीय पुत्र—जोफेट (Jopheth) 'यवाति' हो सकता है।

(२) पुत्र उत्पत्ति के सौ वर्ष पश्चात् 'जलप्रलय' आई तब मनु की आयु ६०० वर्ष थी—'And Nooh was six hundred years old when the Flood of waters was upon the earth (Holy Bible, p. 10).

(३) वैवस्वतमनु (नूह) की आयु और प्रलय का समय - जलप्रलय की अवधि के सम्बन्ध में बाइबिल का वृत्त सत्य प्रतीत होता है, जो वर्तमान पुराणों में अनुपलब्ध है—"In the six hundredth years of Nooh's life the second month, the Seventh day of the month, the sameday they were all mountains of great deep broken up.

(Bible p. 11)

(4) And the waters prevailed upon the earth one hundred and fifty days. (p. 11)

(४) आयु—मनु की पूर्ण आयु ६५० वर्ष थी—"And all the days of Nooh were nine hundred and fifty years. And he died (p. 13). इस प्रकार प्रतीत होता है वैवस्वत मनु का जन्म सम्भवत तृतीययुग (१३००० वि० पू०) मे हुआ और वह षष्ठयुग पर्यन्त लगभग एक सहस्रवर्ष (१२००० वि० पू०) जीवित रहे।

वैवस्वतयम—यम का पितृव्य (चाचा) इन्द्र आयु में उनसे छोटा था, यम षष्ठ युग के व्यास थे और इन्द्र सप्तम युग के व्यास हुए, अतः यम इन्द्र से न्यूनतम ३६० वर्ष बड़ा था। वैवस्वतयम की दीर्घआयु के सम्बन्ध मे पारसी धर्मग्रन्थ अवेस्ता का निम्न उद्धरण प्रकाश डालता है—"जरथुस्त्र ने अहुरमज्द से पूछा, 'मेरे पहिले आपने किसको धर्म का उपदेश दिया। अहुरमज्द (वरुण) ने उत्तर दिया—"मैंने विवस्वन्त के लड़के यम को धर्मोपदेश दिया"। तब मैंने उसको पृथ्वी का राजा बनाया"'। इस प्रकार यम को राज्य करते हुए ३०० वर्ष व्यतीत हो गये। इतने दिनों में मनुष्यों और पशुओ की सख्या इतनी बढ़ गई कि वहाँ जगह की कमी पड़ी। तब यिम ने पृथ्वी का आकार पहिले से एक तिहाई बढ़ा दिया। इस प्रकार ३००-३०० वर्ष उसने चार बार राज्य किया। इस बारह सौ वर्षों मे पृथ्वी का आकार तो पहिले से दूना हो गया।" (फर्गद २) इस काल के पश्चात् पृथ्वी पर हिमप्रलय आई, अतः सिद्ध होता है कि यम, प्रलय से पूर्व ही १२०० वर्ष राज्य कर चुका था। प्रलय के मध्य में 'हर चालीसवें साल एक मिथुन सन्तान उत्पन्न होती थी' अतः प्रलय भी दीर्घ-

कालीन थी, प्रलय के पश्चात् भी यम बहुत दिनों तक जीवित रहा। अतः उसकी आयु २००० वर्ष से अधिक ही थी।

इन्द्र—यह वेदों का उद्धर्ता सप्तम व्यास था, अतः इसका जन्म सप्तमयुग में (१२००० वि० पू०) हुआ। इसने १०१ वर्ष का ब्रह्मचर्य पालन किया[1] और आयुर्वेद के प्रवर्तक भरद्वाज को ४०० वर्ष की आयु[2] प्रदान की इससे समझा जा सकता कि स्वयं इन्द्र की कितनी दीर्घायु हो सकती है; प्रतर्दन, मान्धाता और हरिश्चन्द्रपर्यन्त इन्द्र का अस्तित्व ज्ञात होता है। प्रतर्दन ययाति द्वितीय का दौहित्र और माधवी-दिवोदास का पुत्र था, इसतथ्य को जानते हुए भी पं० भगवद्दत्त[3] और सूरमचन्द्र[4] प्रतर्दन को दाशरथि राम के समकालीन मानते हैं, प्रतर्दन, राम से न्यूनतम ३००० वर्ष पूर्व हुआ। पं० भगवद्दत्त की यह कल्पना (धारणा) रामायण के भ्रामकपाठ के आधार पर है।[5] इन्द्रसमकालीन (देवयुगीन) प्रतर्दन रामसमकालिक कैसा हो सकता है, यह पण्डितद्वयी ने बिलकुल नहीं सोचा। मान्धाता, पन्द्रहवें युग में हुआ, राजा हरिश्चन्द्र[6] और दो युग पश्चाद् अर्थात् सत्रहवें युग में हुए, अतः सप्तम से अष्टादशयुग तक जीवित रहने वाले इन्द्र की आयु दशयुग (३६०० वर्ष) से अधिक थी।

वसिष्ठ—अष्टमव्यास—पुराणों में वैवस्वतमनु से बृहद्बल (महाभारतयुग) पर्यन्त जिस मैत्रावरुणि वसिष्ठ का वर्णन किया है, वह एक ही प्रतीत होता है परन्तु यह सत्य नहीं, वसिष्ठ या वासिष्ठ अनेक हुये है, वह गोत्रनाम था, फिर भी आद्य मैत्रावरुणि वशिष्ठ दीर्घजीवी थे।

अपान्तरतमा—सारस्वत, वाभ्यायन, प्राचीनगर्भ अपान्तरतमा नाम के नवम व्यास ने अपने पितृव्यआदि आङ्गिरस ऋषियों को वार्तघ्नदेवासुरसंग्राम के पश्चात् वेद पढ़ाया था, वही कलियुग मे पाराशर्य व्यास हुए, ऐसा महाभारत

---

१. छा० उ० (८।७);

२. इन्द्र उपव्रज्योवाच—भरद्वाज। यत्ते चतुर्थमायुर्दद्याम् किमनेन कुर्या इति। (तै० ब्रा० ३।१०।११।४५)

३. भा० वृ० इ० भाग १

४. आयुर्वेद का इति०

५. रामायण, उत्तरकाण्ड

६. हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित को स्थविर इन्द्र ने अरण्य में आकर उपदेश दिया—

'सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच। (ऐ० ब्रा० ८।१८)

का मत है, इनके एक शिष्य पराशर थे, इससे सिद्ध होता है कि वे ऐक्ष्वाक राजा कल्माषपाद पर्यन्त जीवित रहे।

मार्कण्डेय—मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय घोरशिरा अत्यन्त दीर्घजीवी ऋषि थे, इन्होंने जलप्रलय का दृश्य देखा था और इससे पूर्व देवासुरों के दर्शन किये तथा द्वापरान्त में इन्होंने युधिष्ठिर पाण्डव को मार्कण्डेयपुराण सुनाया। दशम-युग में मार्कण्डेय दत्तात्रेय के सहयोगी थे—

> त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह।
> नष्टे धर्मे चतुर्थश्च मार्कण्डेयपुरस्सरः॥ (वायु०)
>
> बहुसंवत्सरजीवी च मार्कण्डेयो महातपाः।
> दीर्घायुश्च कौन्तेय स्वच्छन्दमरणं तथा॥ (वनपर्व १८१)

लोमश—यह भी उपर्युक्त मार्कण्डेय के समान बहुसंवत्सरजीवी थे जो देवासुरयुग से पाण्डवकालतक जीवित रहे।[1]

दीर्घतमा मामतेय = गौतम—इनकी आयु एक सहस्र वर्ष थी, जैसा कि ऋग्वेद (१।१५८।६) और शांखायन आरण्यक (२।१७) से प्रमाणित होता है कि वे दश मानुषयुग (=१००० वर्ष) जीवित रहे।[2]

भरद्वाज और दुर्वासासम्बन्धी भ्रान्ति—पं० भगवद्दत्त इन दोनों को देवासुर युग से महाभारतकालतक जीवित मानते हैं जो एक महती भ्रान्ति है। इन्द्र ने जब भरद्वाज को बड़ी कठिनाई से और उपकार करके ४०० वर्ष की आयु दी, तब वह भरद्वाज प्रतर्दन से युधिष्ठिरपर्यन्त ५००० वर्ष कैसे जीवित रह सकता है। निश्चय भरद्वाज एक गोत्रनाम था, द्रोण आदिम भरद्वाज का नहीं, किसी भरद्वाजगोत्रीय ब्राह्मण का पुत्र था। इसी प्रकार दत्तात्रेय के भ्राता दुर्वासा को कुन्ती के साथ व्यभिचार करने वाला दुर्वासा नहीं माना जा सकता, इन दोनों में भी ५००० वर्ष का अन्तर था। ५००० की आयु में भरद्वाज या दुर्वासा का स्त्री या सन्तान की इच्छा करना बुद्धिगम्य नहीं है वस्तुतः यह पं० भगवद्दत्त को बिना सोचे-समझे भ्रान्ति हुई है।[3] भरद्वाज और दुर्वासा अनेक थे।

मुचुकुन्दसम्बन्धी पौराणिक भ्रान्ति—प्रायः अनेक पुराणों में मान्धाता के पुत्र मुचुकुन्दसम्बन्धी भ्रान्ति मिलती है कि कालयवन को गिरिगुहा में भस्म

---

१. द्रष्टव्य वनपर्व (६२।५);

२. दीर्घतमा दश पुरुषायुषाणि जिजीव (शां० आर० २।१७)

३. भा० बृ० इ० भा० (पृ० १४८),

करने वाला, श्रीकृष्ण को दर्शन देनेवाला, वही देवासुरयुगीन मुचुकुन्द था। वस्तुतः यह भ्रान्ति नामसाम्य के कारण हुई है। हरिवंशपुराण में इस भ्रान्ति-जनक प्रसंग[1] का उल्लेख है और इसी पुराण से इस भ्रान्ति का निराकरण भी होता है। तथाकथित मुचुकुन्द वासुदेव श्रीकृष्ण का पूर्वज यदुवंशी मुचुकुन्द था यह यदु ऐक्ष्वाक राजा हर्यश्व का पुत्र था—'मधुमत्यां सुतो जज्ञे यदुर्नाम महायशाः।'[2]

मधु यादव था, दैत्य नहीं—भ्रम से पुराणों में इसे दानवेन्द्र लिखा है, जो नामसाम्यकृतभ्रान्ति है। उसकी पुत्री मधुमती और ऐक्ष्वाक हर्यश्वपुत्र यदु के पाँच पुत्र हुये—

> मुचुकुन्दं महाबाहुं पद्मवर्णं तथैव च।
> माधवं सारसं चैव हरितं चैव पार्थिवम्॥[3]

माधव का पुत्र सत्वत और उसका पुत्र भीम था जो राम दाशरथि के समकालीन था[4] माधववंश में ही लवण हुआ।

उपर्युक्त माधवभ्राता मुचुकुन्द ही श्रीकृष्ण को दर्शन देने वाला मुचुकुन्द था, जिनकी आयु द्वापरकालतुल्य = २००० वर्ष थी, वह मान्धातृपुत्र मुचुकुन्द नहीं। निसंदेह मुचुकुन्द दीर्घजीवी था, परन्तु उतना नहीं, जितना पौराणिक-भ्रान्ति से प्रतीत होता है।

महाभारतकालीन दीर्घजीवीपुरुष

महाभारतकाल में अनेक पुरुष दीर्घजीवी हुए जिनकी आयु सौ से अधिक वर्ष या तीनसौवर्षपर्यन्त अवश्य थी, अतः उनकी आयु का यहाँ संक्षेप में निर्देश करेंगे।

पंचशिख पाराशर्य—यह पराशरगोत्रीय सुप्रसिद्ध सांख्याचार्य दार्शनिक थे, जिनका धर्मध्वज (अपरनाम जनदेव) से वार्तालाप हुआ था। पाणिनिसूत्रोल्लिखित भिक्षुसूत्रों के रचयिता भी सम्भवतः ये ही थे। इनको महाभारत (१२।२२०।११०) में चिरजीवी (दीर्घजीवी) और वर्षसहस्रयाजी कहा गया है—

---

१. हरि० (२।५७)
२. हरि० (२।३७।४४);
३. हरि० (२।३८।२)
४. हरि० (२।३८।३१)

आसुरेः प्रथमं शिष्यं यमाहुश्चिरजीविनम् ।
पञ्चस्रोतसि यः सत्रमास्ते वर्षसहस्रिकम् ॥[1]

भिक्षु पंचशिख, सम्भवतः पाण्डवों के समय तक जीवित थे ।

पाराशर्य व्यास—उपर्युक्त प्रसंग से सिद्ध होता है कि पाराशर्य व्यास शक्तिपुत्र पाराशर के साक्षात्पुत्र नहीं तद्गोत्रीय पुरुष थे, तभी तो उनके पूर्ववर्ती भिक्षु पंचशिख को पाराशर्य कहा गया है। यदि शक्तिपुत्र पराशर को ही व्यास का पिता माना जाय तो सौदास कल्माषपाद ऐक्ष्वाक से शन्तनुपर्यन्त लगभग ३००० वर्ष होते हैं, इतनी दीर्घआयु में पराशर द्वारा मत्स्यगन्धा से संग करना और पुत्र उत्पन्न करना बुद्धिगम्य नहीं, अन्यथा भी सिद्ध है कि व्यास से पूर्व अनेक पाराशर ब्राह्मण हो चुके थे यथा पंचशिख पाराशर्य और व्यास के गुरु जातूकर्ण्य पाराशर्य, इससे समझा जा सकता है व्यास के पिता आदिपराशर नहीं, उत्तरकालीन तद्गोत्रीय पाराशर या पाराशर्य कोई अन्य ऋषि थे।

पाराशर्य व्यास की आयु एक युग (= ३६० वर्ष) के तुल्य अवश्य थी, क्योंकि भीष्म के तुल्यवया व्यासजी परीक्षित् जनमेजय के पश्चात् सम्भवतः अधिसीमकृष्णपर्यन्त जीवित रहे, अतः उनकी आयु ३०० वर्ष से अधिक ही थी। प्रतीप से परीक्षित् तक ३०० वर्ष का समय व्यतीत हुआ। व्यासजी पारीक्षित् जनमेजय कालोपरान्त भी जीवित रहे।

उग्रसेन और वसुदेव और वासुदेव कृष्ण—इतिहासपुराणों में श्रीकृष्ण की आयु १२५ या १३५ वर्ष कथित है, श्रीकृष्ण की मृत्यु के समय उनके पिता वसुदेव और मातामह राजा उग्रसेन जीवित थे, अतः उन दोनों (वसुदेव और उग्रसेन) की आयु २०० वर्ष के लगभग थी।

पाण्डवों की आयु—पं० भगवद्दत्त ने लिखा है "महाभारत के एक कोश (हस्तलिखितप्रति) के अनुसार युधिष्ठिर का आयु १०८ कहा गया है।"[2] सभी पाण्डवों में एक-एक वर्ष का अन्तर था अतः भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव क्रमशः १०७, १०६, १०५, १०४ वर्ष में दिवंगत हुए। श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से १७ या १८ वर्ष बड़े थे, भारतयुद्ध के समय इनकी आयु इस प्रकार थी—

---

१. मैथिलो जनको नाम धर्मध्वज इति श्रुतः (महाभा० १२।३२५।४) तथा [illegible]० (विष्णु० ४।६) एवं महा० (१२।३२०).

२. वै० वा० इ० भाग १, पृ० २६२,

श्रीकृष्ण	=	११० वर्ष + १६ वर्ष = १२६ वर्ष में देहान्त
युधिष्ठिर	=	७२ ,, ,, = १०८ ,,
भीम	=	७१ ,, ,, = १०७ ,,
अर्जुन	=	७० ,, ,, = १०६ ,,
नकुल	=	६९ ,, ,, = १०५ ,,
सहदेव	=	६८ ,, ,, = १०४ ,,

द्रोणाचार्य की आयु—महाभारत में स्पष्टतः उल्लिखित है कि उनकी आयु ८५ वर्ष थी।[1] पं० भगवद्दत्त 'अशीतिपंचक' का अर्थ ४०० वर्ष करते हैं जो अन्यथा उपपन्न नहीं होता। द्रोण द्रुपद के समवयस्क और सतीर्थ्य थे, उनका कनिष्ठ पुत्र धृष्टद्युम्न द्रौपदी से बहुत छोटा था, अतः द्रुपद की आयु युद्ध के समय १०० से ऊपर नहीं हो सकती, पुनः कृपाचार्य और द्रोणपत्नी कृपी का पालन शन्तनु ने ही किया था, जो दोनों ही भीष्म से कम आयु के थे, भीष्म की आयु डेढ़ सौ वर्ष से अधिक नहीं थी, तब द्रोण की आयु ४०० वर्ष कैसे हो सकती है, अतः 'वयसा अशीतिपंचकः' का अर्थ ८५ वर्ष ही उपयुक्त एवं उपपन्न होता है। द्रोणाचार्य अपने शिष्यों—पाण्डवादि से पन्द्रह-सोलह वर्ष अधिक बड़े थे, जो एक गुरु के उपयुक्त आयु है, शिक्षा देते समय द्रोण की आयु पैंतीस-चालीस के मध्य में थी।

द्रोण के समान द्रुपद भी इतनी ही आयु के थे।

नागार्जुन—आन्ध्रसातवाहनयुग में आचार्य नागार्जुन की आयु ५२९ वर्ष थी। तिब्बती आचार्य लामा तारानाथ के अनुसार वाट्टर्स से नागार्जुन की आयु ५२९ या ५७१ वर्ष थी, वह २०० वर्ष मध्यप्रदेश मे, २०० वर्ष दक्षिण में १२९ वर्ष श्रीपर्वत पर रहा। नागार्जुन आंध्रसातवाहन युग, ६८४ वि० पू० में जन्मा और १५५ वि० पू० कनिष्क के राज्यकाल के अन्तर्गत दिवंगत हुआ।[2]

पुरातन राजाओं का दीर्घराज्यकाल

अवेस्ता के आधार पर ऊपर लिखा जा चुका है कि वैवस्वत मनु ने जल-प्रलय से पूर्व १२०० वर्ष राज्य किया, बाइबिल के अनुसार स्वायम्भुवमनु

---

१. आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपंचकः ।
संख्ये पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥" (महाभारत, द्रोणपर्व)

२. द्र० वाट्टर्स भाग २, पृ० २०२;

([illegible]) ने [illegible] वर्ष राज्य किया, कुछ ने इससे भी अधिक वर्ष राज्य किया। बाइबिल में नूह (वैवस्वत मनु) का राज्यकाल ५०० वर्ष लिखा है, रऊ और नहूर का राज्यकाल क्रमशः २३७ वर्ष और १६० वर्ष लिखा है। इनमें रऊ पुरूरवा और नहूर नहुष प्रतीत होता है, अतः पुरूरवा का राज्यकाल २३७ वर्ष और नहुष का राज्यकाल १६० वर्ष था।

पुराणों में कुछ राजाओं का राज्यकाल सहस्रोंवर्ष बताया गया है, इस सम्बन्ध में हम पूर्व विवेचन कर चुके हैं कि पुराणों में दिव्यवर्ष के घटाटोप में दिनों को वर्ष बना दिया अथवा सामान्यवर्षों को दिव्यवर्ष समझकर उनमें ३६० का गुणा कर दिया, फल एक ही है, किसी प्रकार समझ लिया जाय। अतः प्रसिद्ध कुछ राजाओं का राज्यकाल इस प्रकार था—

अलर्क—षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च।
नालर्कादपरो राजा मेदिनीं बुभुजे युवा॥ (भागवत ९।१७।७)

हैहय अर्जुन—पञ्चाशीति सहस्राणि वर्षाणां नै नराधिपः॥
(हरि० ७।३३।२३)

दाशरथि राम—दश वर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति॥ (रामा० [illegible])

भरत दौष्यन्ति—समास्त्रिणवसाहस्रीर्दिक्षु चक्रमवर्तयत् (भाग० ९।२०।३२) अन्य राजाओं का राज्यकाल पुराणों मे इस प्रकार उल्लिखित है—

इक्ष्वाकु = ३६००० वर्ष; सगर = ३०००० वर्ष

तदनुसार उपर्युक्त राजाओं का राज्यकाल इस प्रकार था—

(१) अलर्क	६६०००	वर्ष	(दिन)	=	१८५ वर्ष
(२) अर्जुन (हैहय)	८५०००	,,	,,	=	२३६ वर्ष
(३) दाशरथि राम	११०००	,,	,,	=	३१ वर्ष
(४) भरत दौष्यन्ति	२७०००	,,	,,	=	७५ वर्ष
(५) इक्ष्वाकु	३६०००	,,	,,	=	१०० वर्ष
(६) सगर	३००००	,,	,,	=	८३ वर्ष

मान्धाता जातक (सं० २५८) में चक्रवर्ती मान्धाता का जीवनकाल इस प्रकार लिखा है—

बालक्रीड़ा	=	८४ वर्ष (सहस्रवर्ष)	निरर्थकसहस्रपद
यौवराज्य	=	८४ वर्ष (,,)	,, ,,
राज्यकाल	=	८४ वर्ष (,,)	,, ,,
कुल	=	२५२ वर्ष	

भारतीयइतिहासकाल में अनेक राजाओं का दीर्घराज्यकाल इस प्रकार रहा, यथा—

प्रद्योत पालक	=	६० वर्ष
सोमाधि बार्हद्रथ	=	५८ वर्ष
श्रुतश्रवा	=	६४ वर्ष
सुव्रत	=	५६ वर्ष
महापद्मनन्द	=	१८० वर्ष
बृहद्रथ मौर्य	=	७० वर्ष
समुद्रगुप्त	=	५१ या ५२ वर्ष

शूद्रक-विक्रम—शूद्रक (शुद्रक) (विक्रम मृच्छकटिक का लेखक) विक्रम संवत्प्रवर्तक ने सौ वर्ष १० दिन की आयु प्राप्त की थी और दीर्घकाल (लगभग ८० वर्ष) राज्य किया था—

लब्ध्वा चायुः शताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः ॥

अतः इतिहास में औसत राज्यकाल निकालना या अटकलपच्चू से औसत राज्यकाल १८ वर्ष कह देना, इतिहास नहीं कहानी से भी निकृष्टतर, व्यर्थ—अर्थहीनकल्पनामात्र है।